## डा० कुलदीप की पुस्तकें

- भाग्य चक्र (नाटक)
- हेर फेर (नाटक)
- हम एक हैं (एकांकी संग्रह)
- प्रेरणा के दीप (जीवनियाँ)
- धरती के बोल (राष्ट्रीय गीत)
- मृगनयनी— एक अध्ययन
- यशोधरा—एक अध्ययन
- आचार्य चाणक्य—दर्शन
- ललित विक्रम अनुशीलन
- झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई—एक विवेचन
- यशपाल और उनका 'झूठा—सच'
- कवि नरेन्द्र शर्मा और "द्रौपदी"
- प्रसाद और उनकी तितली
- तारों की छाँह में (कहानी संग्रह)
- कुलदीप के गीत (कविता संग्रह)

# लोक-गीतों का विकासात्मक अध्ययन

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० कुलदीप, एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
सेण्ट जॉन्स डिग्री कालेज, आगरा।

प्रगति प्रकाशन
आगरा-3

१

९

७

२

प्रकाशक :

रामगोपाल परदेसी

संचालक :

प्रगति प्रकाशन

बैतुल बिल्डिग,

आगरा–३

दूरवाणी : 61461

संस्करण :

प्रथम

मूल्य 55–00

मुद्रक : दी कौरोनेशन प्रेस, आगरा-३

# समर्पण !

जिसकी लोरियों में सोया और

जिसकी प्रभातियों में जागा

'अपनी उस पूज्य'

स्वर्गीय माँ की

स्मृति को

सर्मापत

# विषय सूची

# प्राथमिकी

लोकगीत जन-मानस के वे स्वाभाविक उद्‌गार है जो न जाने कब से हमारे समाज मे सिहरन उत्पन्न करते चले आ रहे है। लोकगीतो मे माटी की स्वाभाविक सुगन्धि हैं। इनके माध्यम से हम मानव के आदिम रूप से परिचित होते हुए उसके विकास, उसके परिवर्त्तनो और प्रयत्नो को समझते है। ससार भर के लोकगीतो मे एक ही आत्मा है। समय, स्थान और व्यक्तियो के परिवर्त्तनो के कारण उनका बाह्य रूप चाहे समान न रहा हो किन्तु अन्तर मे समरसता ही है। प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, टीस, सिहरन, तड़पन, कसक, मादकता, उल्लास और राग-विराग की स्थिति मानस मात्र मे एक सी होने से लोकगीत विश्वभर की भावनाओ का प्रतिनिनिधित्व करने की सामर्थ्य रखते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे मैंने लोकगीतो के विकास का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनकी व्यापकता और उपयोगिता प्रमाणित करने का प्रयास किया है। यह विषय इतना विस्तृत और विशाल है कि एक ग्रन्थ मे इसे पूर्ण नहीं किया जा सकता। मैंने इस ग्रन्थ मे लोकगीतो के उद्‌गम और महत्व को विस्तार से बतलाते हुए ब्रज मण्डल और विशेष रूप से आगरा के लोकगीतो का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। शीघ्र ही अन्य क्षेत्रो के शास्त्रीय अध्ययन भी प्रथक खण्डो मे प्रकाशित किये जायेंगे।

संसार के मानचित्र मे आगरा अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ की ऐतिहासिक इमारतें संसार भर के लोगो को आकर्षित करती रहती हैं। यहाँ का राजनीतिक इतिहास विभिन्न साम्राज्यो की उथल-पुथल दिखाने वाला है। यहाँ के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन मे अतीत और वर्तमान का सुन्दर समन्वय हुआ है। यहाँ का साहित्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से बनता, सवरता और निखरता चला आ रहा है। यहाँ का जन-जीवन भारतीय नागरिक की सभी प्रकार की गति-विधियो को प्रकट करता रहा है। यहाँ लोक-गीतो का प्रारम्भ बहुत पहिले से ही हो चुका था और समय तथा परिस्थितियो के अनुसार उनमें परिवर्तन भी होते रहे हैं।

आगरा के विषय मे जितना भी शोध-कार्य किया जाय वह थोड़ा ही है। यहाँ तो हर स्थान पर इतिहास बोलता है, संस्कृति झलक दिखाती है, संगीत मुखरित होता है और गीत गूँजते रहते हैं। लोकगीतो पर अपने देश मे प्रशंसनीय कार्य हुआ

और हो रहा है। प० रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, डा० सत्येन्द्र, डा० श्याम परमार और डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इस दिशा मे जो कार्य किये है वे आगे कार्य करने वालो के लिए पृष्ठ-भूमि तो है ही साथ मे प्रेरणा, विश्वास और साहस प्रदान करने वाले भी है। मैंने इन्ही विद्वानो की रचनाओ से प्रेरणा प्राप्त कर आगरा जिले के लोकगीतो पर शोध-कार्य करने का साहस किया। प्रस्तुत प्रबन्ध मे आगरा जिले की सभी तहसीलो तथा नगर मे घर-घर गाये जाने वाले विविध प्रकार के गीतो का अध्ययन किया गया है। इन गीतो के साहित्यिक और भाषा-वैज्ञानिक पक्षो का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यहाँ की सभी जातियो, विभिन्न मताव-लम्बियो तथा धार्मिक प्रवृतियो के नागरिको मे प्रचलित लोकगीतो का सग्रह कर यहाँ के लोकजीवन को समझने का प्रयास भी किया है। सक्षेप मे यह कहना चाहिये कि मैंने आगरा जिले की धडकनो, तडपनो, मुस्कानो, खिलखिलाहटो और थिरकनो को लोकगीतो के माध्यम से देखने-दिखाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ-लेखन के कार्य मे मुझे, अनेक मित्रो, सहयोगियो, वयोवृद्ध सज्जनो, माताओ-बहिनो आदि से तो सहयोग मिला ही है किन्तु मथुरा के श्री मोहन स्वरूप भाटिया का मैं विशेप रूप से आभारी हूँ जिन्होने मुझे लोकगीत सग्रह करने के साधन दिये और उनके सग्रह-कार्य मे सहयोग दिया।

अन्त मे मै गुरुवर डा० हरिहर नाथ टण्डन, अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, सेण्ट जान्स कॉलेज, आगरा के स्नेह, उनकी प्रेरणा और उनके निर्देशन के लिये अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने मुझे हर समय बहुमूल्य सत्परामर्श दे कर यह कार्य सम्पन्न कराया। स्नातक कक्षा से अब तक उन्ही का वरद् हस्थ मेरे ऊपर रहा है, जिसका मुझे गर्व है। इस पुस्तक के प्रकाशक श्री रामगोपाल परदेसी का भी अभारी हूँ जिन्होने तत्परता पूर्वक इस ग्रथ को प्रकाशित किया।

—कुलदीप

गणतन्त्र दिवस
२६ जनवरी १९७२

बी-५१, लाजपत कुज
आगरा—२

## प्रथम अध्याय

# (1) लोक-जीवन और लोक-गीत

हमारा देश वहुत वडा देश है। इसमे अनेक भाषाए अनेक वेशभूषाएँ, अनेक धर्म, अनेक जातियाँ और अनेक मत-मतान्तर है। हम तैंतीस करोड देवताओं के उपासक हैं। हर दस मील पर हमारी भाषा के उच्चारण मे परिवर्तन होता जाता है, हर नगर अपनी अलग विशेषता रखता है, हर गाँव की अलग स्थिति है, हर परिवार की अलग-अलग समस्याये है, हर व्यक्ति की अलग मनोदशा है किन्तु इन सव अलगावो के होते हुए भी सवकी आत्मा एक है। भाषा का भेद होते हुए भी गीतो भरा भारतीय मानव हृदय, तथा उसके सुख-दु.ख की अनुभूति, उसकी स्थिति-परिस्थति, उसकी आशा निराशा, उसकी कुण्ठा और विवशता एक जैसी ही है। देश भर के गीतो मे एक रसता का ऐसा सूत्र पिरो दिया गया है कि वाहर से वे अलग-अलग होते हुए भी अन्दर से एक हैं। सभी के अर्थो मे समानता हैं। एकता की यह परिपाटी हर प्रदेश के गीतो मे अनेक प्रकार से प्रकट होती रहती है। युद्ध, शाति, खेती, व्यवसाय, प्रेम, घृणा, मस्ती, परवशता और उन्मुक्तता इस धरती पर सव कही दिखाई देंगी। यही स्थितियाँ-परिस्थितियाँ देश भर के लोक गीतो मे सिसकती, कसकती, मुस्कुराती, खिलखिलाती, नाचती-गाती दिखायी देती हैं। ये गीत कभी समाप्त नही होगे। जव तक यह धरती है, जव तक यह नीला आकाश है, जव तक यह प्रकृति की सुन्दरता अपने नये-नये परिधान से और अधिक सुन्दर होती रहेगी, ये गीत गूँजते ही रहेगे। धरती की धड़कन. आकाश की निस्सीमता, वादलो की रंगीन घटायें, चांद-सूरज की चमक जव गीत वन कर गूँज उठती है तव मानव अपने चिरजीवी भावो को पढने का प्रयास करता है। ये चिरंजीवी भाव ही लोक-गीत वन कर भोले-भाले ग्रामीणो, ग्राम-वन्धुओ और ग्राम-माताओ-वहिनो के कण्ठो से निकल पडते हैं—गगा की पवित्र धारा की भाँति।

गीतो के संसार मे सभी तो रहते हैं। जो जितना स्वतत्र और मस्त होगा उसके गीत उतनी उन्मुक्तता और भावुकता लिये होगे। कोल, भील, कजड, कोली, कुम्हार, चमार, धोवी, महतर आदि ने गीतो की दुनियाँ मे जो सुन्दर पुष्प खिलाये हैं वे वडे-वडे महाकवियो के साहित्यिक काव्योद्यानो से कम सुरभि और सौन्दर्य वाले

नही। अनेक छंदो मे बंधी कविता, शास्त्रीय संगीत मे वन्दिनी रागिनी इन गीतो की मानसी गगा के सामने लजा जाये तो आश्चर्य नही।

लोक-गीतो ने प्रेरणा के मूल-स्रोत से अपने को कभी अलग नही किया। जीवन की अग्रगामी शक्तियो ने लोक-प्रतिभा को सदा ही आगे बढाने का कार्य किया है। ये लोकगीत युग-युग की सीमाओ को पार करते हुए, अनेक बाधाओ को हटाते हुए, विभिन्न उलझनो मे सुलझते हुए, सामाजिक शक्तियो की विकास-गाथा को विभिन्न जनपदीय भाषाओ मे व्यक्त करते हुए चले जा रहे है, अपने ही ताल-स्वरो पर गूँजते, प्रतिध्वनित होते, थिरकते, नाचते और गुदगुदाते।

लोक-गीतो के काव्यत्व को तो लेखनी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है किन्तु जब ये गीत ग्रामीण महिलाओ के कठ से निकलते है तो इनका सौन्दर्य, माधुर्य और उन्माद कुछ और ही हो जाता है। उसे व्यक्त करना असम्भव ही है। इन गीतो का अधिकाश रस तो इन महिलाओ के कंठो मे होता है। इस रस को प्राप्त करने के लिये तो टेप रिकार्डर की ही आवश्यकता होगी। लेखनी इस सरस रस के मिठास को कभी व्यक्त नही कर सकती। तीज त्यौहारो, जन्मोत्सव, विवाह आदि के अवसर पर जब गृह-देवियो का समूह उन्मुक्त हो उन्माद के साथ विभिन्न गीतो को गाने लगता है तो सुनने वाले आनन्द मे मग्न हुए बिना नही रह सकते।

लोक-गीतो की मूल बोली या भाषा का पता लगाना सरल नही है। ये गीत किसी एक व्यक्ति की धरोहर नही होते। ये तो समाज मे स्वत. ही उत्पन्न होते है और स्वत: ही जन समाज मे एक पीढी से दूसरी और तीसरी-चौथी पीढी तक थिरकते-गूँजते चले जाते है। ये गीत भाषा के प्रवाह मे तैरते चले जाते है। मनुष्य के कठ ही उनमे घाट बन जाते है जहा वे टकराते, ठहरते और फिर बहते चले जाते है। कंठ रूपी घाटो की कुछ न कुछ विशेषता भी इनमे आती चली जाती है। कठो का प्रभाव इनमे धीरे-धीरे ऐसा परिवर्तन करता जाता है कि ये अपना मूल रूप ही खो बैठते है। ये जहाँ भी गाये जाते है वहाँ के शब्दो और उच्चारणो को अपनाते चलते है। ऐसा होने से यह नही पता चलता है कि कौन-सा गीत कहाँ, किस परि-स्थिति मे उत्पन्न हुआ। केवल इतना ही पता चल सकता है कि कौन-सा गीत कहाँ-कहाँ गाया जाता है और आसपास के क्षेत्रो मे उसके कैसे-कैसे रूपान्तर दिखाई देते हैं।

महिलाओ के गीतो के विषय मे तो और अधिक कठिनाई होती है। कन्याएँ अपने विवाह के कारण अन्य स्थानो को चली जाती है। वहाँ वे अपने साथ अपने क्षेत्र के गीत भी ले जाती है। ससुराल मे बहू को कम से कम पाँच गीत स्त्रियो के बीच बैठकर सुनाने पड़ते हैं और फिर यदि बहू का कठ अच्छा हुआ तो फिर उसे

अनेक उत्सवो मे गवाया जाता है। ऐसा होने से वहू के मायके में गाये जाने वाले अनेक गीत उसकी ससुराल मे भी प्रचलित हो जाते है। इन गीतो पर ससुराल की बोली और उच्चारण का भी प्रभाव पडता है। धीरे-धीरे इनकी लय और शब्दावलि मे भी परिवर्त्तन हो जाता है। यही कारण है कि अनेक जिलो के कुछ लोक-गीत लगभग एक से ही मिलते हैं। भाषा या वोलियो के आधार पर गीतो को विभाजित करना भी वडा कठिन है। किसी जिले मे एक से अधिक वोलियाँ वोली जाती है। ऐसे जिले दो भाषाओ वाले क्षेत्रो की सीमाओ पर ही अधिक होते है जैसे इटावा मे व्रजभाषा और कन्नौजी का मिश्रण दिखायी देता है जौनपुर मे अवधी और भोजपुरी का मिश्रण है। यही कारण है कि कुछ गीतो मे तीन-चार बोलियो तक के शब्द पाये जाते है।

लोक-गीतो के संग्रह से किसी भी देश, उसके समाज और उसके साहित्य को अत्यधिक लाभ होता है। लोक-गीत किसी भी देश की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और विचारशीलता को प्रकट करने वाले होते है। उनके संग्रह से कुछ मुख्य लाभ निम्नलिखित है:—

कठस्थ साहित्य लिपि-बद्ध होकर सुरक्षित रखा जा सकता है इससे महिलाओ तथा पुरुषो के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलती है। जिन ग्रामीणो को हमारा शिक्षित समाज मूर्ख, फूहड और हीन समझता है उनके मन-मस्तिष्क मे कैसे मधुर, सरस और कोमल भाव भरे रहते है इसका ज्ञान हमे लोकगीतो के अध्ययन से भली-भाँति हो जाता है।

इन गीतो की जानकारी से आज के कवियो को भी पर्याप्त लाभ हो सकता है। आज बुद्धिवाद के चक्कर मे पडकर जो अनेक कवि वेतुकी कवितायें करते रहते है उन्हे इन भावनापूर्ण गीतो से अपने भावपक्ष को परिष्कृत करने का अवसर मिल सकेगा।

लोक-गीतो द्वारा हम अपने देश और समाज के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजों, रहन-सहन, तीज-त्यौहारो आदि का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इस परिचय के आधार पर हम अपने वर्त्तमान जीवन मे आवश्यक सुधार भी कर सकते हैं।

लोक-गीतो से हम प्राचीन इतिहास, घटनाओ, धार्मिक प्रवृत्तियो और तत्कालीन मनोभावो का भी परिचय प्राप्त कर सकते है।

लोक-गीतो द्वारा भाई-वहिन के पवित्र स्नेह-बन्धन, माँ-बाप के लाड-प्यार, पति-पत्नी के पुनीत सम्बन्ध, परिवारो के मेल-मिलाप, गार्हस्थ्य-जीवन की समस्याओ आदि की जानकारी प्राप्त कर हम अपने वर्त्तमान समय मे उत्पन्न होने वाली

विषमताओ को दूर कर सकते हैं। सास-बहू के झगडे, ननद-भौजाई के वैमनस्य, पति-पत्नी के मन-मुटाव आदि से सम्बन्धित लोक-गीत पढ कर हम उनसे बचने के उपाय सोच सकते है।

लोक-गीतो के सग्रह से हमे अपने साहित्य को समृद्ध करने का अवसर मिलता है। हम अपनी वर्तमान भाषा मे अपने पुराने विस्मृत मुहावरो, कहावतो, पहेलियो और शब्दो को सम्मिलित कर सकते है।

लोक-गीतो के सग्रह से हम गाँवो को शहरो के निकट लाने मे सफल हो सकते है। नगर और गाव के बीच की खाई इन लोक-गीतो के माध्यम से पाटी जा सकती है। आज हमारे देश को भावनात्मक एकता की अत्यधिक आवश्यकता है। हमे अपने राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ रखने के लिये अपने साहित्य और अपनी संस्कृति के अन्दर आये भेद-भाव को भी हटा देना चाहिए। लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति और लोक-जीवन को मुक्त-हृदय से अपनाकर ही हम स्वयं के लिये सच्चे बन सकते है। लोक के साथ अपना सम्बन्ध जोड कर ही हमारे जीवन के रुके उल्लास-स्रोत फूट निकलेंगे। हमे धरती के साथ सब प्रकार से अपना सम्बन्ध स्थापित कर अपने राष्ट्रीय जीवन की एकता लानी चाहिये। पश्चिमी सभ्यता, सस्कृति, शिक्षा और विचार-धारा ने हमारा सम्बन्ध अपनी धरती से बहुत कुछ तोड-सा दिया है। नगरो की मिलो, यहाँ के कारखानो, व्यापारी मडियो, स्कूलो, कालिजो, विश्व-विद्यालयो, सरकारी कार्यालयो, फिल्मो, राक-एन-राल, टुइस्ट, रम्बा-सम्बा, चा-चा चा, बीटल सगीत आदि ने हमें हमारी धरती से अलग कर दिया है। हम अपनी प्राकृतिक सुषमा, स्वाभाविक मुस्कान और वास्तविक खिलखिलाहट भूल से गए हैं। धरती और आकाश के बीच सैकडो वर्षों से हमारी धरती के जो गीत इधर-उधर भटक रहे है उन्हे समेटना चाहिये। उनमे हमारे मन की सच्ची धडकन अब भी बची हुई है। उन्हे त्याग कर, उन्हें विस्मृत कर, उनसे उदासीन हो कर हम अपने आप को त्याग देंगे, स्वय को विस्मृत कर देंगे, स्वयं से ही उदासीन हो जायेंगे। इनके संग्रह से हमारी सभ्यता, सस्कृति और वास्तविकता स्थायी रह सकेगी।

## लोक—

'लोक' क्या है ? इस शब्द की व्युत्पत्ति कैसे और कब हुई ? इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत अब तक प्राप्त नही हो सका है। भारतीय और यूरोपीय भाषाविद भी इस की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे किसी एक निष्कर्ष तक नही पहुँच सके हैं। ऋग्वेद मे 'देहि लोकम्' का प्रयोग हुआ है। यहाँ लोकम्' का प्रयोग 'स्थान के लिये हुआ है वेदो मे लोक दो प्रकार के माने हैं—पार्थिव और दिव्य। किंतु 'ब्राह्मण-ग्रन्थ', 'बृहदारण्यक उपनिषद्' एवं 'वाजसनेही संहिता' आदि मे लोक के सम्बन्ध मे ऐसा कोई भेद नही दिखायी देता।

भारत मे आर्य जाति के आगमन पर यहाँ के मूल निवासियो से उनका जो सघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप 'वेद' और 'वेदेतर' स्थिति आयी। 'लोक' को अब वेदेतर (वेद-विरोधी) माना जाने लगा। किन्तु कालान्तर मे 'लोक' अपनी सकुचित स्थिति से निकल आया और उसकी भावना वैदिक तथा अवैदिक दोनो का स्पर्श करने लगी। अब तो 'लोक' परम्परा का सरक्षक, सहेजने वाला और अनुभूति की सवेदना-पूर्ण सतत सवाहक माना जाने लगा। जीवन के सभी उपकरणो का समावेश उसमे हो गया है। हमारी सस्कृति 'लोक' से अलग नही। उसका उद्गम लोक से ही हुआ है। गीता मे लोक-शास्त्र तथा लौकिक आचारो की महत्ता स्वीकार की गयी है। बौद्ध धर्म मे 'लोक' को प्रमुखता दी गयी है। अशोक के शिला-लेखो मे 'लोक' के कल्याण के आदेश है। प्राकृत और अपभ्रंश मे प्रयुक्त 'लोकजना' और 'लोकप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमो का महत्व प्रकट करते है। यजुर्वेद मे लोक (समाज) की एक विराट कल्पना मिलती है। वह पुरुष रूप ब्रह्म है उसके सहस्रो मुख, नेत्र, हाथ तथा पाँव है—सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्षः सहस्रपात्।[1]

वास्तव मे साधारण जन-समाज ही 'लोक' कहलाता है। इस शब्द मे वर्ग-भेद रहित, विस्तृत और प्राचीन परम्पराओ की श्रेष्ठ राशि के साथ आधुनिक सभ्यता-सस्कृति का कल्याणमय विकास निहित है। इस शब्द मे नागरिक और ग्रामीण दोनो ही सस्कृतियो का समन्वय है। आधुनिक साहित्य की नयी प्रवृत्तियो मे 'लोक' का प्रयोग जब गीत, वार्ता, कथा, सगीत आदि के साथ होता है तो इससे अर्थ लिया जाता है उस विशेषता का जिसमे पूर्व-सञ्चित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हो। जिस लोक-साहित्य को कुछ समय तक अनगढ, गँवारू, निम्न स्तरीय और अनुपयोगी समझा जाता था वह अब नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाला माना जाने लगा है। भारत का किसान, यहाँ के गाँव, यहाँ की ग्रामीण महिलाये भारतीय लोक को वास्तविक जीवन-शक्तियाँ है।

हिन्दी का "लोक" शब्द ऐंग्लो-सेक्सन शब्द 'फोक' जैसा ही है। फोक (FOLK) शब्द की उत्पत्ति FOLC से हुई है। जर्मन मे इसे VOLK लिखा जाता है। अंग्रेजी मे इस 'फोक' का प्रयोग अपढ, असस्कृत और मूढ समाज के लिये ही होता रहा है किन्तु अब इसका प्रयोग सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी लोगो के लिये भी होने लगा है। 'फोक' शब्द हिन्दी के 'लोक' का पर्यायवाची कहा जा सकता है। 'जन' या 'ग्राम' फोक के अर्थ मे आते हैं किन्तु वास्तव मे 'फोक' इनसे भिन्न है। 'जन' प्राचीन शब्द है जिसका अर्थ 'मानव-समाज' होता है। इस आधार पर फोक' और 'जन' एक ही अर्थ लिये है। किन्तु प्रयोग और परम्परा के आधार पर

---

१ ऋ० १०।९० ; यजु० ३१.

# विषय सूची

शास्त्र', 'लोक-विज्ञान', 'लोक-परम्परा', 'लोक-प्रतिभा', 'लोक-प्रभाव', लोकपथ', 'लोक-विधान', 'लोक-सग्रह', 'लोक-जयन' (लोकायन) की ओर संकेत करते हुए 'लोकायन' शब्द को अधिक उपयुक्त माना है।

इतना सब कुछ होने पर भी 'लोक-वार्त्ता' शब्द अधिक प्रचलित और मान्य है। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने 'लोक-वार्त्ता' त्रैमासिक निकाल कर इस शब्द को और अधिक प्रचलित कर दिया। अतः 'फोकलोर' का पर्याय अब 'लोक-वार्त्ता' ही उचित जान पडता है।

'लोक-वार्त्ता' का अध्ययन १९ वी शताब्दी मे पश्चिमी विद्वानो ने प्रमुख रूप मे किया। भारत के प्राचीन वाङ्मय की ओर ध्यान देते हुए जब पचतत्र, हितोपदेश, नीति-कथाओ आदि की तुलना अन्य देशो की कथाओ और किंवदन्तियो से की गयी तो इसमे और अधिक शोध करने की इच्छा उनके मन मे जागृत हुई। भाषा-विज्ञान, समाज-विज्ञान, नीति-शास्त्र आदि पढने और समझने के लिये भारत के प्राचीन जीवन, उसकी परंपराओ, उसके रीति-रिवाजो, उसकी कथा-कहानियो आदि को पढने की आवश्यकता प्रतीत हुई। सन् १८५८ मे विल्हेम हेरिचरी और सन् १९०८ मे जी० एल० गोमे[1] ने 'लोक-वार्त्ता' को स्वतत्र रूप से अध्ययन करने का आग्रह किया। सन् १९२० मे आर० आर० मरेट की पुस्तक "सायकोलाजी एण्ड फोकलोर' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे श्री मरेट ने लिखा कि 'लोक-वार्त्ता' निर्जीव विज्ञान नही उसका अध्ययन बाह्य रूप से करने के साथ-साथ उसके आन्तरिक पक्ष को भी ध्यान से देखना चाहिये।

'लोक-वार्त्ता' के जन्म की कोई तिथि या समय निर्धारित करना असम्भव है। उसका जन्म न जाने कब से और न जाने कैसे होगया। उसे सर्वकालीन, सर्वदेशीय और सर्वसम्मत कहना उचित होगा। 'लोक-वार्त्ता' वास्तव मे 'लोक-मात्र' का विषय है। 'अमेरिकन फोकलोर' नामक पुस्तक की भूमिका की बोटकिन का कथन है:—

फोकलोर इज नौट समथिंग फार अवे एण्ड लोग एगो, बट रियल एण्ड लिविंग एमग अस।

('लोक-वार्त्ता कोई बहुत दूर की और अत्यधिक प्राचीन वस्तु नही, वह तो हमारे ही बीच की वास्तविक और जीवित वस्तु है।')

हियर दि पास्ट हेज् समथिंग टू से टू द प्रेजेंट एण्ड वर्थलेस वर्ल्ड टू ए वर्ल्ड देट लाइक्स टू रीड एबाउट इटसैल्फ, कनमरनिंग अवर बेसिक ओरल एण्ड डेमोक्रेटिक कल्चर एज दि रूट आफ आर्ट्स एण्ड एज ए साइड-लाइट ऑन हिस्ट्री।'

---

१. फोकलोर इज हिस्टोरीकिल साइन्स, जी० गोमे।

(यहाँ अतीत को वर्तमान से कुछ कहना है और पुस्तक रहित समाज को उस समाज से जो अपने विषय मे पढना चाहता है, जिसका सम्बन्ध हमारी मौखिक और लोकतत्रीय सस्कृति की मूल कलाओ के प्रारम्भिक रूपो और इतिहास के एकागी प्रकाश से है।)

लेनिन ने 'लोक-वार्ता' के विषय मे लिखा है.—

'फोकलोर इज मैटीरियल एवाउट दि होप्स एण्ड ईयरनिंग्स आफ दि पीपुल',

(लोक-वार्ता जनता की आशाओ और स्नेह-सम्बन्धो की सामग्री है।)

गांधीजी ने भी लोक-वार्ता के सम्बन्ध मे लिखा है कि लोक-वार्ता जनता का साहित्य है। वह उस लुप्त होती हुई सामग्री से सम्बन्धित है जो अभी तक नष्ट नही हो पायी है।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'पृथ्वी पुत्र' मे लिखा है—'लोक-वार्ता एक जीवित शास्त्र है—लोक का जितना जीवन है उतना ही लोक-वार्ता का विस्तार है। लोक मे वसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान मे उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रो मे लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोक-वार्त्ता का सम्बन्ध भी उन्ही के साथ है।'

'फोकलोर इज़ ए कम्पोज़िट वर्ड मीनिंग़ द नालेज आफ द कामन प्यूपिल। द वर्ड वाज कम्पोज्डिट इन १८४६ वाई एन इनकान्स्पिकुअस, साइड-व्हिस्कर्ड जैन्टिलमैन, मि० डब्लू० जे० थामस, एण्ड 'फोक' वाज़ अन्डरस्टुड टू मीन द अन लैटर्ड।[1]

लोक-वार्त्ता के विपय अनेक हो सकते है। बर्न ने लोक-वार्त्ता के तीन समूह किये है— १ विश्वास और आचरण, २ रीति-रिवाज, ३ कहानियां, गीत और कहावते। डा० सत्येन्द्र ने लोक-वार्त्ता के विषयो को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया है:—

१. विश्वास और आचरण-अभ्यास—

इनका सम्बन्ध है पृथ्वी और आकाश से, वनस्पति जगत् से, पशु जगत् से, मानव से, मनुष्य-निर्मित वस्तुओ से, आत्मा तथा दूसरे जीवन से, परा-मानवी व्यक्तियो

---

१. इन्ट्रोडक्शन टू इगलिश फोकलोर-वायलेट अल्फोर्ड

से, शकुनो, अपशकुनो, भविष्यवाणियो, आकाश वाणियो से, जादू टोनो से, रोगो तथा स्थानो की कला से ।

## २. रीति-रिवाज

सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाये, व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय धन्धे तथा उद्योग, तिथियाँ, व्रत तथा त्यौहार खेल-कूद तथा मनोरजन ।

## ३. कहानियाँ गीत तथा कहावतें—

कहानियाँ (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती है ।

(आ) जो मनोरजन के लिये होती हैं ।

गीत—सभी प्रकार की, कहावते तथा पहेलियाँ, पद्यवद्ध कहावते तथा स्थानीय कहावतें ।

## लोक-साहित्य की उपेक्षा—

लोक साहित्य की अब तक जो उपेक्षा की जा रही है उसका मुख्य कारण यह रहा है कि सामान्य जनता को अशिक्षित और असभ्य कह कर उच्च स्तर के लोगो ने अपने आभिजात्य गर्व का परिचय दिया है और सामान्य लोगो की भावनाओं एव आकाँक्षाओ से कोई विशेष सहानुभूति नही रखी । सामान्य लोगो के लोकाचार उनकी लोक संस्कृति और उनके लोक-साहित्य को यह कह कर ठुकराया है कि उसमे सुरुचि और सौष्ठव नही । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—जनता तो हमारे उदीयमान राष्ट्र की महती देवता है । हमारे सब आयोजनो के मूल मे और सब विचारो के केन्द्र मे जनता प्रतिष्ठित है । यह सत्य जनपदीय अध्ययन का मेरुदन्ड है । जनता के जीवन के साथ हमारी सहानुभूति और आस्था जितनी दृढ होगी उतना ही अधिक हम जनपदीय अध्ययन की आवश्यकता को समझ पावेगे । प्रत्येक जनपद का एक पृथ्वी-पुत्र है, उसके लिये हमारे मन मे श्रद्धा होनी चाहिये । हम उसे अपढ़, गँवार और अज्ञान रूप मे जब देखने की धृष्टता करते हैं तो हम गाँव के जीवन से भरे हुये अर्थ को खो देते हैं । जिस आँख से हमारे पूर्वजो ने ग्रामो और जनपदो को देखा था, उसी श्रद्धा की आँख से हमे फिर देखना है और उनके नेत्रो मे दर्शनो की जो शक्ति थी उसे फिर से प्राप्त करना है ।[1]

---

१ व्रज लोक सस्कृति, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ ३१ ।

अपने देश और सस्कृति की समृद्धि के लिये हमे लोक-सस्कृति के पोषक और वाहक आदिम जातियो के लोगो और किसानो तथा मजदूरो से आत्मीयता और सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। कविता का आनन्द केवल टकसाली कवियो मे ही नही मिलता है जिन्हे हम गँवार, अपढ और असभ्य कह कर तिरस्कार की दृष्टि से देखते है उनकी वाणी मे बडी-बड़ी साहित्यिक कविताओ से भी अधिक माधुर्य और भावुकता मिल जाती है। ब्रज के रसिया कलगी-दुर्रा वालो के ख्याल, राजपूत होली, बुन्देलखण्डी फागे और मिर्जापुरी कजरी आदि जिन्हे सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि भाव और भाषा का आनन्द उन्हे कितना मिला है। अग्रेजी वालो ने अपने 'बैलड्स' BALLADS का जितना आदर किया है उतना हिन्दी वालो ने अपने ग्रामीण तथा साधारण जन समुदाय के रोजमर्रा के गीतो का आदर नही किया। खेतो और खलियानो मे गाये जाने वाले गीत हमने गवारो के लिये छोड दिये है, गाँवो की चौपालो मे गायी जाने वाली लावनियाँ हम अपनी नागरिक उच्चता के कारण सुनना नही चाहते। ऋतुओ के परिवर्तन की, मुहावरो की, तानो की, शकुन की, उपचारो की, पहेलियो की, नित्य काम मे आने वाली बोलियाँ मानो भाषा के ब्राह्मणत्व मे शूद्रत्व है, जो दूर रखा गया है। हमारी खोज मुहाफिजखानो मे होती है, खेतो और खलियानो मे नही, चौपालो और अभाइयो मे नही।

हमे चाहिये कि जिन शब्दो को हमने 'गँवारू' कह कर अपने साहित्य मे नही आने दिया है उन्हे अपने साहित्य मे आदर सहित खपाये और उनका उपयोग करे। लोकगीत कहावते, आख्यायिकाये हमारे साहित्य के महत्त्वपूर्ण अग है। हम उन्हे विस्मृत किये दे रहे है। हमे लोकजीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित कर भाषा और साहित्य को सर्व साधारण के समीप लाना चाहिये। हमारा साहित्य एक छोटे समुदाय का साहित्य रहकर जीवित और उन्नत नही हो सकता डा० सत्येन्द्र का कथन है—'इस प्रकार साहित्य मे भी हमे आभिजात्य दृष्टि व्याप्त मिलती है। साहित्यकार ने साहित्य मे ग्राम्यत्व नाम का दोष स्पष्ट स्वीकार किया है। इस प्रकार उद्योगपूर्वक साहित्य को वृहद् और यथार्थ जीवन से अलग रखा गया, किन्तु मनुष्य की अभिव्यक्ति तो प्रत्येक क्षेत्र मे होती है। ग्राम्यत्व भी एक अभिव्यक्ति है, भले ही वह किसी की दृष्टि मे किसी कारण दोष हो। गाँव मे भी साहित्य रचा गया। वह तथाकथित साहित्य मे सम्मिलित नही किया गया। साहित्यकार की आभिजात्य दृष्टि ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा; उसका तिरस्कार किया। इस प्रकार साहित्यकार ने भी उसके दो रूप स्वीकार किये—एक ग्राम्य रचना दूसरी साहित्यिक रचना। उदाहरण के लिये रामायण साहित्यिक रचना है और रामायण पर लिखे गये जिकडी के भजन साहित्यिक नही माने जाते क्योंकि वे तुलसीदासजी की भाँति विशेष ग्रन्थो का अध्ययन और मनन करके नही लिखे गये। लेकिन तुलसीदास

की रामायण मे हम वह सहज स्वाभाविक रूप नही पाते जो झिकडी के भजनो मे हम पाते हैं। ग्रामीण कवि ने कोई शास्त्र नही पढा. अपनी उमंग और भावो को अपने उद्गार के रूप मे श्लील या अश्लील भाषा मे और उसी के अनुकूल छंदो मे उसने प्रकट कर दिया। वह ग्राम साहित्य उन्होने किसी ग्रन्थ मे नही पढा, किसी पाठशाला मे नही सीखा। अपने बाप-दादा से सुनकर ही उसे जाना और उसी रूप मे सुरक्षित रखा।[1]

## लोकगीत और कला-गीत

लोकगीत वैसे तो कला-गीतो से भिन्न होते है किन्तु वास्तव मे देखा जाय तो इनकी आत्मा एक ही होती है। कही-कही लोक-गीत कला-गीत के और कला-गीत लोक-गीत के बहुत निकट आते, एक-दूसरे का स्पर्श करते प्रतीत होते हैं। वैसे कला-गीत साहित्य के अग माने जाते है और लोकगीत जनश्रुति मे सम्बन्धित किन्तु केवल इसी कारण उन्हे एक-दूसरे से प्रथक करना उचित नही। अधिकाश सन्त-साहित्य अनुभूति पर ही आधारित है। फिर उसे कला की श्रेणी मे क्यो रख लिया गया? होना तो वह चाहिये कि लोकगीतो को तो कलागीतो के अन्तर्गत मान लिया जाये किन्तु कलागीतो को लोकगीतो के अन्तर्गत नही। वैसे प्रत्येक लोक गीत भी कलागीत नही माना जा सकता किन्तु अधिकाश लोकगीत अपने उच्च भावो, अपनी मौलिक कल्पना और सरल शैली के कारण कलागीतो की श्रेणी मे अवश्य ही रखे जाने चाहिये। यह अवश्य है कि लोकगीतो मे व्यक्ति का महत्व नही होता, उनमे समूह प्रमुख होता है। उनमे व्यक्ति का अभाव और जाति अथवा वर्ग अथवा समाज की विशेषताओ के लक्षण देखे जा सकते है। केवल इसी आधार पर कला-गीतो और लोकगीतो मे भिन्नता मानी जा सकती है। कलागीत मात्राओ, अन्त्यानुप्रासो और छंदो आदि पर अधिक ध्यान देते हैं किन्तु लोकगीतो मे भाव, लय और मुग्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। लोकगीतो की प्रमुख विशेषताये है— १ उनकी अकृत्रिमता, २. सामूहिक भाव-भूमि, ३. परम्परात्मकता, ४. रूढिवादिता और ५. संगीतात्मकता।

जान एफ० एम्ब्री नामक एक लेखक ने 'जापानीज पीजेण्ट सांगज़' नामक पुस्तक मे लोक-गीत के निम्नलिखित प्रकार लिखे हैं—

१. नाम रहित, २. सर्व-प्रसिद्ध, ३ सामाजिक जीवन के परिचायक, ४. उपदेशप्रद।

---

१. ब्रज-लोक संस्कृति, डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ ४८

भारतीय लोकगीतो मे अन्य देशो के लोकगीतो की अपेक्षा एक प्रथक विशेषता यह है कि इनमे रसाभास विशिष्ट रूप से होता है। यही कारण है कि ये लोकगीत भारत के शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले समाज को भी आकर्षित कर लेते हैं। इनकी सरलता मुग्ध करने की क्षमता रखती है।

भारतीय लोकगीतो के प्रारम्भ के विषय मे वैसे तो कुछ निश्चित रूप से कहा नही जा सकता किन्तु अनुमान से विदित होता है कि मानव समाज के संगठित होते रहने से लोकगीत पनपे और परम्परा की थाती बनते गये। ऋगवेद मे 'गाथित' शब्द आया है। इसका प्रयोग गाने वाले के लिये हुआ है। विवाह के समय के गीतो के लिये 'रैमी' अथवा 'नराशंसी' शब्दों के प्रयोग हुए है। ऐतरेय ब्राह्मण मे 'ऋक्' और 'गाथा' शब्द मिलते हैं। 'ऋक्' दैवी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है और 'गाथा' मानवी अर्थ मे। 'गाथा' लोकगीतो के अधिक समीप है। 'मैत्रायणी महिता,' 'पारस्कर गृह्यसूत्र', आश्वलायन गृहयसूत्र,' 'वाल्मीकि रामायण,' 'जातक कथाओ,' 'श्रीमद्भागवत' आदि ग्रन्थो मे गाथाओ के रूप किसी न किसी प्रकार से मिलते ही हैं। श्री हर्ष के नैषध चरित्र' और तुलसी के 'मानस' मे स्त्रियो के गीतो के उल्लेख मिलते हैं। तुलसी के रामलला नहछू' मे तो लोकगीतो का पूरा आनन्द मिलजाता है।

मध्यभारत के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने गीत-संग्रह की बड़ी योजना बनाते समय लोकगीतो की एक लम्बी सूची तैयार की थी। यह सूची लोकगीतो की समस्त विशेषताओ को अलग-अलग परख कर प्रस्तुत की गयी प्रतीत होती है। उन्होने लोकगीतो को चार खण्डो मे विभाजित किया है—
१ संस्कार विषयक, २. माहवारी गीत, ३. सामाजिक तथा ऐतिहासिक, ४. विविध

इन चार खण्डो मे अलग-अलग विभिन्न अवसरो पर गाये जाने वाले गीतो को रखा गया है। यह सूची निम्नलिखित है—

१. संस्कार विषयक—(१) सोहर, (२) चरुआ के गीत, (३) चौक के गीत, (४) माघ के गीत, (५) करधनी बाँधने के गीत, (६) मुण्डन, (७) जनेऊ, (८) मामा के यहाँ प्रथम बार जाने के गीत, (९) बारात मे प्रथम बार जाने के गीत, घोडी, (१०) टीका, (११) विवाह, (१२) द्विरागमन, (१३) तिरागमन अर्थात् रोने के गीत, (१४) समधियो के आने के गीत, (१५) गोदान, देव स्थापन पुराण बैठने, कूप, खनन, गृहारम्भ के गीत, (१६) तीर्थ-यात्रा और गमन-आगमन के गीत, (१७) अन्नप्राशन के गीत, (१८) पलने के गीत, (१९) अगरनी[1]—गर्भवती स्त्री विषयक

---

१. आगरा में इसे साद्-गीत भी कहते हैं।

गीत, (२०) माता कढने के गीत—मेट, (२१) जेवनार, (२२) पत्तल बाँधना व खोलना, (२३) भरनी या ढाँक के गीत (साँप काटने पर) (२४) मेले के गीत (२५) जन्म-गाँठ के गीत, (२६) छत्री स्थापना के गीत।

२. माहवारी गीत—(१) बारहमासा, (२) नौरता-नौरात्र-चैत्र-आश्विन, (३) रामनौमी, (४) आखातीज, (५) दशहरा, (६) देवशयनी, देवउठान, (७) सावन-हिंडोला (८) साँझी, (झेंझी-हड़ी के गीत), (९) झाँझी, (१०) बोजा-मिट्टी के गीत—टेसू, (११) कृष्ण जन्माष्टमी, (१२) करवा चौथ, (१३) महालक्ष्मी, (१४) बछवा छठ, (१५) मोरछठ, (१६) नौदुर्गा, (१७) गनगौर, (१८) कार्तिक और माघ-स्नान के गीत, (१९) होली, (२०) अहोरी आठें—कार्तिक के गीत, (२१) कजरिया तीज, श्रावण, (२२) भुजरिया।

३ सामाजिक-ऐतिहासिक—(१ चन्द्रावल, (२) वेला सना, (३) ढोला-मारू, (४) हरदौल, (५) बाबू के गीत, (६) कारस देव के गीत, (७) कुँवर के गीत, (८) हीरामन, (९) नगरा, (१०) मन्नादेव, (११) पडत मेहतर, (१२) जाहरपीर, (१३) अलख, (१४) हीलो के गूजरो के गीत, (१५) कन्हैया, (१६) सलगा-सदावृक्ष (१७) गोरा-बादल (१८) बुलाकीदास, (१९) घासीराम पटैल, (२०, बापूजी के गीत, (२१) राजा केवट, (२२) ओखाजी, (२३) तेजाजी, (२४) गोरा जी, (२५) भैरूजी।

४ विविध— (१) खेती का कहावतें, (२) ऊख की फसल समाप्त होने के गीत, (३) बारी पूजने के गीत, (४) जात व चक्की के गीत, (५) लावनी, (६) रसिया, ख्याल (८) छून्दरा, (९) दोहे-साखी, (१०) सोरठे, (११) सवैये, (१२) भजन, (१३) कवित्त, (१४) मिन्धू, (१५) धौल।

लोकगीत और ग्रामगीत —'फोक साग वह कोई भी गीत या वीर-गीत है जो लोक मे उत्पन्न होकर परम्परा द्वारा दूसरो को सौंपा जाय, या कोई गीत जो इसके अनुरूप लिखा जाय।'[1]

कुछ लोग लोकगीत और ग्रामगीत एक ही मानते हैं। पडित रामचन्द्र शुक्ल तक लोकगीत को ग्रामगीत ही कहते थे। राजस्थानी लोक-साहित्य के विद्वान श्री सूर्यकरण पारीक ने लोकगीत को ग्रामगीत न मानते हुए अपनी पुस्तक 'राजस्थानी लोकगीत' मे लिखा कि ऐसा करने से लोकगीतो को ग्राम की सकुचित सीमा में बाँध

---

१ चैम्बर्स ट्वन्टीयथ सेन्च्युरी डिक्शनरी।

देना होगा। इसमे लोकगीत की व्यापकता समाप्त हो जायगी। ग्राम और नगर के भेद तो आधुनिक काल मे ही अधिक बढ़े हैं। वास्तव मे ये गीत न तो ग्रामो नेबनाये है और न नगरो ने, इन्हे बनाया है सर्वसाधारण ने— 'लोक' ने। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'लोक' शब्द का अर्थ बताया है नगरो और ग्रामो मे रहने वाली जनता, जिसका आधार पोथियाँ नही है।

हिन्दी मे सन् १६४० के बाद ही 'लोकगीत' शब्द का प्रचलन हुआ है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने १६२४ और १६२७ के बीच जब गीतो का संकलन किया तो वे इन्हे 'ग्रामगीत' ही कहते थे। वैसे उस समय तक मराठी और गुजराती मे 'लोकगीत' शब्द प्रचलित हो चुका था। श्री झवेरचन्द मेघाणी के प्रयत्नो से लोक-साहित्य पर विद्वानो की दृष्टि पड चुकी थी। सन् १६३० में रणजीतराज मेहता ने 'लोक-साहित्य' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इतना होने पर भी हिन्दी में अभी इस 'लोक' शब्द का प्रयोग नही हुआ था। सन् १६३६ तक देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'ग्रामगीत' शब्द का ही प्रयोग किया। त्रिपाठी जी ने अपनी 'कविता-कौमुदी' ( पाँचवाँ भाग ) मे ग्रामगीत का ही प्रयोग किया है। उन्होने 'फोक-सांग' का हिन्दी अनुवाद 'ग्रामगीत' ही किया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने, रूरल साग' 'फोक-लिटरेचर' शब्दो का प्रयोग किया। इनका अनुवाद त्रिपाठी जी ने 'ग्रामगीत' और 'ग्राम-साहित्य' ही किया। त्रिपाठी जी ने लाला लाजपतराय द्वारा प्रयुक्त 'फोक-लोर' शब्द का अनुवाद भी 'ग्रामगीत' ही किया। कृष्णदेव उपाध्याय ने 'फोक-साग' को 'ग्रामगीत' और 'बैलड' को 'लोकगीत' माना है। वे ग्रामगीत को गेय मानते है और लोकगीत को इतिवृत्तात्मक तथा प्रबन्धात्मक। कमलाबाई देशपान्डे ने 'लोकगीत' शब्द को ही उपयुक्त माना है। उन्होने 'लोकगीत' 'जनपदगीत' और 'ग्रामगीत' तीनो का एक ही अर्थ मान कर भी 'लोकगीत को प्रमुखता दी है। राहुल जी ने अपनी पुस्तक का नाम रखा 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत'। 'गीतें' शब्द बहुवचन है तो अवश्य किन्तु हिन्दी मे 'गीत' का प्रयोग बहुवचन मे भी होता है। मराठी में अवश्य बहुवचन के लिये ''गीतें' शब्द का प्रयोग होता है। डा० सत्येन्द्र ने 'बजलोक-साहित्य का अध्ययन 'फाक सांग' के लिये 'ग्रामगीत' और 'फोकलोर' के लिये 'गीतकथा' का प्रयोग किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'ग्रामगीत' का पक्ष लेते हुआ कहा है कि ये गीत ग्रामो मे जन्मे, नगर वाले इन्हे ग्रामो से ले गये। 'लोक' शब्द मे ग्राम और नगर दोनों आ जाते हैं अत. 'लोकगीत' कहने से इन पर नगरो का भी अधिकार हो जायेगा। त्रिपाठी जी ने तो इन गीतो के लिये यहाँ तक कह दिया है कि 'ग्रामगीत' किसी पुरुष या स्त्री-विशेष की नही है, बल्कि स्वयं प्रकृति के गान हैं।

प्रोफेसर किटरिज[1] और जेम्स रिम का मत है कि लोकगीतो का निर्माण जन-समूह द्वारा होता है। नृतत्व-शास्त्र एव समाज-विज्ञान के सिद्धान्तो से भी यह मत प्रकट होता है। आदिम मानव-समाज का अध्ययन करने वाले विद्वानो ने यह माना है कि मानव ने अपने मूल भावो की अभिव्यक्ति सदैव सामूहिक गीतो मे की है।

'ढोला-मारूरा दूहा' मे लोकगीत को 'बैलड' का पर्यायवाची बताया गया है। 'राजस्थान के लोकगीत' नामक पुस्तक मे लोकगीतो को आदिम मनुष्यो के गीत बताते हुए उन्हे सच्चा काव्य माना है। शुक्ल जी ने कविता की परिभाषा करते हुए लिखा है कि सृष्टि के नाना रूपो के साथ मनुष्य की भीतरी रागात्मिका प्रवृत्ति का सामजस्य ही कविता का लक्ष्य है। शुक्ल जी की इस व्याख्या से तो फिर लोकगीत 'काव्य' कहा जा सकता है और इस प्रकार वह 'लोकगीत' की श्रेणी मे रखा जा सकता है।

उपर्युक्त विचारो के विश्लेषण से हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि 'ग्रामगीत' की अपेक्षा 'लोकगीत' की सीमा अधिक विस्तृत और व्यापक है। 'लोक-गीत' के अन्तर्गत ग्राम और नगर दोनो ही आ जाते हैं। ग्रामगीत केवल ग्रामो मे ही जन्म लेते हैं किन्तु लोकगीत कही भी जन्म ले सकते है—ग्रामो मे, नगरो मे अथवा ग्रामो-नगरो मे सयुक्त रूप से। लोकगीत साहित्य का ही गीत-प्रधान अग है। ग्रामगीत लोकगीत के पूरक हैं। सभी ग्रामगीतो को हम लोकगीत कह सकते हैं किन्तु सभी लोक-गीतो को ग्रामगीत नही कहा जा सकता। 'लोकगीत' 'जनगीत' भी नही कहा जा सकता। जनगीत भी विशिष्ट वर्ग को प्रकट करता है, समग्र लोक को नहीं। 'जन' का प्रयोग उस वर्ग विशेष के लिये ही मुख्यतः होता है जिसका सम्बन्ध औद्योगिक क्राति से उत्पन्न सामाजिक व्यवस्था से है। यह शब्द विशेष रूप से साम्यवादियो के प्रयोग का है। लोक-साहित्य तो जनता द्वारा जनता के लिये रचा जाता है किन्तु 'जन-साहित्य' किसी व्यक्ति द्वारा जनता के लिये रचा जाता है। जन-साहित्य लिखित होता है मौखिक नही किन्तु लोक-साहित्य मूलत मौखिक ही होता है। यही बातें 'जन-गीत' और 'लोक-गीत' मे देखी जा सकती है 'जन-गीत भी कालान्तर मे 'लोक-गीत' का रूप ले सकता है जब 'जन-गीत' अपनी लय, भावना और सरलता के कारण अपने वास्तविक या परिवर्तित रूप मे सदैव प्रयुक्त होता रहे तो वह 'जन-गीत' भी लोकगीत बन जाता है। कोई व्यक्ति विशेष यदि कुछ ऐसे गीत लिख दे जो जन-मानस मे स्पन्दन करते रहे, जो समाज मे समय-समय पर गाये जाते रहे, जो मेले-उत्सवो आदि मे समवेत स्वर मे बहुधा गाये जाते रहे और जो स्वतः ही लोगो के मन मे प्रविष्ट हो कण्ठो से प्रस्फुटित होते रहे तो वे कालान्तर मे 'लोकगीत' बन जाते

---

१. इंगलिश एण्ड स्टाटिश बैलेड्स—जी० एल० किटरिज।

हैं। 'ईगुरी की फागे' और सुखैया की होली' अब लोकगीतो की श्रेणी मे इसीलिये आने लगी हैं क्योकि उनमे जन-मानस मे प्रविष्ट होने की क्षमता है, उनका समय-समय पर गाया जाना, उनका घर-घर मे गूंजना आदि स्वाभाविक रूप से हो रहा है। इस सम्बन्ध मे वायलेट अल्फोर्ड का कथन भी दृष्टव्य है :—

वी मस्ट रियलाइज टू दैट फोक्लोर इज् नाट एन एक्जेक्ट साइंस। वाट इज विलीव्ड वाई वन जेनेरेशन इज् थ्रोन एसाइड वाई द नेक्स्ट ओनली टू मेक ए कम वेक अण्डर डिफ्रेण्ट कन्डीशन वस मोर........................द लोर आफ द फौक फ्लकचुएट्स विद द राइज् एण्ड फाल आफ ह्यूमैन म्यूटेशन।[1]

लोकगीतो मे समूहगत भावो की अभिव्यक्ति होती है। गीत को मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम माना जाता हैं। इसमे धुन के रूप मे संगीत का समावेश रहता है। जव गीत व्यक्ति विशेष द्वारा लिखा या गाया जाने के वाद सामूहिक तत्वो के अनुरूप ढलता, वदलता और सुधरता-विगडता चलने लगना है तो यह लोकगीत का रूप ले लेता है।

लोक-सगीत

'फाकलोर' ए रादर आकवर्ड ट्रान्सलेशन आफ जर्मन वर्ड वोक-स्लाइड, मैन्ट नेवर्दलस ए वर्ड व्हिच स्टेण्ड्स फार ए वेरी डेफिनिट फैक्ट इन द रिअल्म आफ् म्यूजिक।[2]

लोकगीत के साथ लोक-मगीत को भी समझ लेना आवश्यक है। अंग्रेजी शब्द 'फोक-साग' हिन्दी का लोकगीत) संगीत के क्षेत्र मे सच्चाई और दृढ़ता के नाते अपना विशिष्ट महत्व रखता है। लोक-संगीत का प्रभाव लोकगीत से ही पड सकता है। समूहगत भावो को सार्थक शब्दों और धुनो मे एक साथ बाँध कर नैसर्गिक रूप से विकसित किया जा सकता है कभी-कभी धुनो के साथ निरर्थक शब्द का भी प्रयोग होगा दिखायी देता है। किन्तु ये निरर्थक शब्द धुनो को वनाये रखने मे सहायक होते है। यह निरर्थक शब्दावलि आदिक की सूचक है। 'किट-किट-घन,' तुडुन-तुडुत-तुत तू' 'ओ ओ ऽ ऽ ऽ हो ऽ ऽ ऽ,' 'जी ऽ ऽ ऽ जी ऽ ऽ 'आदि निरर्थक शब्द-ध्वनियाँ हैं किंतु इनका प्रयोग आज भी होता चला आ रहा है। इन ध्वनियों की आवश्यकता इसलिये पडती है क्योकि लोक-गीत लिखित तो थे नही, उन्हे याद

---

१. इन्ट्रोडक्शन टू इंगलिश फोकलोर—वायलेट अल्फोर्ड।

२. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (६)।

कर सहेजना पडता था। अत' उसके लिए निरर्थक शब्द-ध्वनियो ने बडी सहायता की। 'लरला, लरला,' 'आँ आँ आँ आँ' आदि ध्वनियो के सहारे लोकगीतो की तर्जे याद रखी जा सकी। लोक-सगीत ने लोकगीत के प्राण को बनाये रखा है। लोक-सगीत के बिना लोकगीत नीरस और फीके रह जाते।

संगीत के स्वर मानव के स्वाभाविक हर्ष, विषाद, उत्कण्ठा, उल्लास आदि को प्रगट करने वाले रहे है। जब राग-रागिनियो, ताल-स्वरो का बोध भी नही हुआ था तब भी आदिम जाति के लोग अपने उल्लास-विषाद को प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार की ध्वनियाँ किया करते थे। यही ध्वनियाँ धीरे-धीरे ताल-स्वरो मे बँधती चली गयी। इनमे से निरर्थक शब्द भी अलग होते चले गए। आदिम जाति के लोग न जाने कितने वर्षो तक अपने साथ निरर्थक-सार्थक ध्वनियां लिए अपने पशुओ और परिवारो के साथ घूमते रहे। ये घुमक्कड लोग कही-कही ठहर कर खेती भी करने लगे। इन्होने अपने रहने को झोपडियाँ डाल ली और पशुओ की सहायता से खेती करने लगे। धीरे-धीरे गाँव बनते गए। मनुष्य का घुमक्कडपन समाप्त सा हुआ और गाँव अपनी प्रथक दुनियाँ आबाद किए लहलहाने-मुस्कराने लगे। यहाँ गीत और सगीत जमकर निखरे। कालान्तर मे ये ग्राम-गीत और ग्राम-सगीत बने। ज्यो-ज्यो मनुष्य मे ज्ञान की वृद्धि होती गई, उसकी सभ्यता और सस्कृति निश्चित रूप मे परिवर्तित होती गयी। वह गीत तथा सगीत को यथोचित रूप देने लगा। व्यवस्थित सामाजिक स्थितियो ने ही गाथाओ को जन्म दिया। ऋग्वेद मे गाथाओ का उल्लेख है। ये गाथाये गीतो के रूप मे ही है। ब्राह्मण ग्रन्थो, महाभारत तथा अन्य ग्रन्थो मे गाथाओ को गाने की परम्परा दिखाई देती है। सामवेद के गायन धार्मिक ही हैं किन्तु वे लोक-जीवन की मनोवृत्तियो के सूचक भी है। हमे प्राचीनकाल की सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन से विदित होता है कि विभिन्न अवसरो पर नृत्य-संगीत के कार्यक्रम अवश्य ही होते थे। अत: यह तो सर्वथा सत्य ही है कि लोकगीत और लोक-संगीत आदिकाल से ही हमारे बीच मे चले आ रहे है।

## लोकगीतों की विशेषतायें—

भारत की भाँति ही अन्य देशो मे भी लोकगीतो और लोक-संगीत की यही परम्परा रही है। भिन्न-भिन्न देशो के लोग अपने त्यौहारो-उत्सवो मे अब भी नाचते गाते, उछलने-कूदते रहते हैं। इनकी अपनी-अपनी भाषाये, अपनी-अपनी धुने, अपने अपने उच्चारण और अपने-अपने ढंग है। ये अपने पूर्वजो से उनकी विशेषताये लिये हुए स्वाभाविक रूप मे अपनी लोक-प्रवृति प्रकट करते है। इनमे एक सामान्य स्वच्छन्दता भी दिखाई देती है। कुछ विद्वानो का मत है कि संसार भर के लोकगीतो की धुने किसी-न-किसी रूप मे एक दूसरे से मिलती है। इनके निरर्थक शब्द तो बहुधा एक से ही होते है। कुछ लोग इस बात से सहमत नही। उनका

मत है कि लोकगीत अपने-अपने क्षेत्रो की विशेषताओ से युक्त होते हैं। यद्यपि उनमे हर्ष-विषाद, उल्लास-नैराश्य आदि के भाव एक से पाए जाते है किन्तु अपने स्वभाव मे वे भिन्न होते है। दुनिया के कुछ देशो के लोकगीतो की विशेषतायें बताते हुए एक पाश्चात्य लेखक का कथन है कि—फ्राँस के गीत या तो सुन्दर (स्वादु) होते है या नाटकीय, जर्मनी के गीत बोझिल एवं हृदय-स्पर्शी, सामान्य यूरोपीय गीत गेय, गुनगुनाने योग्य, पुष्ट एवं असम्बद्ध, रूसी गोत उदास और अनगढ स्पेनी मन्द और स्वप्निल तथा हिंदू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी-नीग्रो गीत विलक्षण, सुन्दर एव गहरे धार्मिक होते है।

## लोकनृत्य और लोकगीत—

गीत लय-प्रधान होता है और नृत्य ताल-प्रधान। नृत्य की सफलता सही ताल पर है और गीत की सही लय पर। लोक-गीतो का सम्बन्ध लोक नृत्यो से स्वाभाविक ही है। कभी गीत के साथ नृत्य तो कभी नृत्य के साथ गीत। गीत मे शब्दो द्वारा भावो की अभिव्यक्ति होती है। वैसे तो लोक-गीत और लोक-नृत्य अपने अलग-अलग गुण रखते है किन्तु इनका आन्तरिक रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनो के एक साथ होने से रस की वृद्धि होती है।

पश्चिमी सगीत का नृत्य से अधिक मम्बन्ध है। पश्चिम के 'सिम्फोनिक' सगीत का अधिकाश मूल वास्तव मे नृत्य और सगीत के समन्वय पर ही आधारित है। प्रोफेसर चाइल्ड ने अपनी पुस्तक "इगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर वैलेडस्" मे लोकगीत की उत्पत्ति सगीत और नृत्य के समन्वय से नही मानी है। गीतों से सम्बन्धित कुछ अंग्रेजी शब्द नृत्य से ही सम्बन्धित दिखाई देते हैं। अंग्रेजी का शब्द 'बैलेड' फ्रेंच शब्द 'बैलेर' से उत्पन्न हुआ है। 'बैलेर' (BALLARE) का अर्थ है नृत्य। इससे स्पष्ट होता है कि 'बैलेड' की उत्पत्ति सामूहिक नृत्यों से ही हुई है और इसके साथ संगीत तो फिर है ही। अस्तु, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि लोकगीत, लोक-संगीत और लोक-नृत्य तीनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

## कुछ दृष्टिकोण—

प० रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतो और ग्राम-गीतो मे भेद बताते हुए लिखा है—

"लोकगीत से मैं ग्राम-गीत को अधिक सार्थक समझता हू। ग्राम शब्द मे जो पवित्रता है वह 'लोक' मे नही। शहर मे भी जो गीत उपलब्ध होते हैं, वे भी गाम ही के हैं। उनकी भाषा और उनमे वर्णित विषय दोनो ही ग्राम के होते हैं। शहर वालो ने तो अभी कुछ किया ही नही। जो कुछ उनका है वह छप चुका

है और छपना ही रहता है। ...... .... " कुछ लोगो ने 'ग्राम्य' लिखा है, वह गलत है। ग्राम्य का अर्थ गँवारू हो जाता है। गुजराती मे 'लोक' शब्द का व्यापक अर्थ चल निकला है, हिन्दी मे अभी यह कुछ अपरिचित सा है। और जो सम्पत्ति आपको ग्रामो मे से मिल रही है, उसका यश उसी को मिलना भी चाहिए। इससे उसको क्यो वंचित करना चाहिए ?"[1]

इस सम्बन्ध मे और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने लिखा था—

ग्राम-गीत शब्द का हिन्दी मे आदि प्रवर्तक मैं हूँ। मुझसे पहले यह शब्द हिन्दी मे इस अर्थ मे कभी प्रयुक्त नही हुआ था। उस समय भी लोक शब्द था और गुजराती मे लोकगीत शब्द भी चल निकला था। पर मुझे जो मिठास ग्राम शब्द मे मिलती है, वह लोक मे नही। लोक सीमा-रहित है। उसमे नगर भी शामिल है, पर ग्राम की एक स्वतन्त्र सीमा है, उसकी स्वतन्त्र मर्यादा है। उसकी एक निश्चित व्याख्या है। उसका कोई पर्यायवाची नही। गीत उसके रत्न है, हम उसका कण्ठ-हार उससे क्यो छीनें और उसकी कीर्ति का नया हिस्सेदार क्यो खडा करें, जिसने उसे गँवार समझ रखा है और बना भी रहा है। लोक मे प्रचलित सारे मुहावरे और कहावते अभी तक गाँव की फैक्ट्री मे ढल कर आ रही है। अभी तक मुझे तो नगर मे भाषा का एक भी आभूषण नही मिला। इससे मे ग्राम का गौरव ग्राम ही के लिए सुरक्षित रखने के पक्ष मे हू।

"अंग्रेजी के 'फोक' मे भी नागरिकता का भाव नही है। अतएव सब तरफ से ग्राम ही के साथ रहूँगा। ग्राम मे मेरा जन्म हुआ है, ग्राम की सभ्यता मे पला-पुसा हू। इससे ग्राम तो मुझे स्वभाव ही से प्रिय है। सम्भव है, इससे पक्षपात का दोष मुझ पर आयद हो, पर निष्पक्ष होकर भी ग्राम के पक्ष की दलीलो की उपेक्षा नही कर सकता।[2]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि प० माखनलाल चतुर्वेदी ने लोकगीतो का महत्व बताते हुए कहा है—

'सफेदपोशी के पक्षपात ने हिन्दी को गाँवो की बोली बनने से रोकना आरम्भ किया। यही कारण है कि कुलवधुओ के ग्रामगीतो की ध्वनि हमारी साहित्यिक बनावट मे दूर पड गई। गाँवो की चौपालो पर गाई जाने वाली लावनियाँ हमारे आदेशो की घनिकता मे हमे हलकी जान पड़ती हैं। खेतो और खलियानो मे

---

१ देवेन्द्र सत्यार्थी को श्री रामनरेश त्रिपाठी का पत्र २२-४-४० (हिन्दी मन्दिर प्रयाग मे)।

२ देवेन्द्र सत्यार्थी के नाम श्री रामनरेश त्रिपाठी का पत्र (१२-६-४०)

गाए जाने वाले गीत हमने गँवारो के लिए छोड दिए है। सन्तो की बेजोड और व्याकरण-विकृत बोलिया हमने कुछ चुन ली है, बहुत छोड दी है। वर्षा की, बसन्त की, ऋतुओ के अदल-बदल की, मुहावरो की, तानो की, शकुन की, उपचारो की पहेलियो की, नित्य काम मे आने वाली बोलिया, मानो भाषा के ब्राह्मणत्व मे शूद्रत्व है जो दूर रखा गया है। हमारी खोज मुहाफिजखानो मे होती है, खेतो और खलिहानो मे नही।'[1]

राजस्थानी लोकगीतो की खोज करने वाले और उन्हे यथोचित सम्मान दिलाने वाले श्री सूर्यकरण पारीक का कथन है—

"हमारी ऐसी धारणा है कि लोक-साहित्य की उपज के लिए भारतवर्ष से बढ़कर उर्वर दूसरा पृथ्वीतल पर शायद ही कोई रहा हो। इस देश के हरेक प्रांत मे हमारी प्रादेशिक बोलियो मे हजारों गीत अब भी प्रचलित मिलते है। परन्तु हमारी यह अमर सम्पत्ति दिनो-दिन क्षीण होती जा रही है, और आश्चर्य नही, वह सब एक दिन लुप्त हो जाय। पर फिर भी इस जमाने मे परिश्रमी अन्वेषको को हजारो की तादाद मे उत्तम गीत मिल सकते है। गुजराती, मराठी, बगला आदि भाषाओ मे इस ओर पर्याप्त ध्यान रहा है, और उन भाषाओ की गीत-सम्पत्ति अच्छी है।

"............साहित्य के अन्यान्य विभागो मे राजस्थान भारत के इतर प्रान्तो से चाहे कितना ही भिन्न हो, पर भाषा और लोकगीतो के क्षेत्र मे हमें स्पष्टत एक ऐसा व्यापक ऐक्य-क्षेत्र फैला हुआ मालूम होता है, जो उधर भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक समरूप से प्रसारित है। गुजराती, राजस्थानी, मध्यप्रान्तीय, बिहारी गीतो मे विलक्षण साम्य है।"[2]

श्री भगवतीलाल भट्ट का कथन है :—

"सैकडो वर्ष से प्रचलित मौखिक साहित्य अभी तक वृद्धो और वृद्धाओ की ज़बान पर अंकित है.......... ....अभी तक हमारा इतिहास सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टि से अधूरा है............. केवल वर्तमान की विभीषिका से उत्पन्न यान्त्रिक जीवन के ऊहापोहो से नई विश्वसस्कृति का कल्याण-मार्ग प्रशस्त नही हो सकता।"[3]

---

१. श्री माखनलाल चतुर्वेदी (हिन्दी साहिय सम्मेलन के ३१ वें अधिवेशन हरिद्वार १९४३) के अध्यक्षीय भाषण से।)

२. राजस्थानी लोकगीत—सूर्यकरण पारीक (प्र०—हि० सा० स०)

३. श्री भगवतीलाल भट्ट—शोध-पत्रिका (दिसम्बर १९५१) की सम्पादकीय टिप्पणी से।

लोकगीतो के मतवाले श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है :—

'गत एक शताब्दी मे भारतीय लोकगीतो पर अंग्रेजी भाषा मे अबाध गति से जो महत्वपूर्ण कार्य होता रहा है, वह विश्व की लोकवार्त्ता को एक अनूठी देन है। यह उल्लेखनीय है कि इस दिशा मे भारतीयो के सम्पर्क मे आने वाले विदेशी विद्वानो ने ही पहल की। बाद मे बहुत से भारतीय विद्वानो ने भी इस कार्य मे योगदान दिया। ··· ········

'भारतीय लोकगीत-आन्दोलन के समग्र विस्तृत क्षेत्र पर दृष्टि रखना आवश्यक है, जिसका उद्गम नृतत्वशास्त्र के क्षेत्र मे हुआ। भारतीय लोक-कविता भारत की भावी कविता को अवश्य ही प्रभावित करेगी, क्योंकि इसमे भारतीय आत्मा की सच्ची मौलिकता और जनता की सामूहिक प्रतिभा की व्यापक जागृत भावना निहित है। यही वह दृष्टिकोण है जिससे राष्ट्रीय जागरण की किसी भी योजना मे भारतीय लोकगीतो पर किया गया कार्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, भले ही यह कार्य विदेशी माध्यम द्वारा ही किया गया था। भारत को उन मनीषियो पर गर्व करना चाहिये जिन्होने सर्वप्रथम लोक-कविता की शक्ति की खोज की और इस प्रकार स्थायी अन्तर-राष्ट्रीय महत्व के लिपिबद्ध संग्रह की नीव रखी।"[1]

"भारतीय भाषाओं मे लोकगीत-सम्बन्धी पुस्तको से ज्ञात होता है कि भारतीय लोकगीत आन्दोलन की जडे इस धरती मे बहुत गहरी चली गई है।"[2]

लोकगीतो के इन खोजकर्त्ताओ, संग्रहकर्त्ताओ, टीकाकारों, प्रचारकों, व्याख्याकारो और जानकारो के अतिरिक्त हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री गिरिजाकुमार माथुर के विचार भी लोकगीतो के सम्बन्ध मे जान लेना उपयोगी होगा। उनका कथन है :—

लोकगीत जीवन की सामूहिक चेतना का फल होते हैं और वे जनता के सामाजिक प्रयोजन से निःसृत होते है। लोकगीतो को समझने से जनता की संस्कृति और परम्परा को समझा जा सकता है।"

लोकगीतो द्वारा जन-जीवन के समस्त पक्षो के दर्शन हमे होते हैं और उनके दर्पण मे हम विशिष्ट जन-समुदाय की भावनाओ को देख सकते है। हर जाति या जन-समाज के अपने गीत होते हैं जिनमे उस समाज की जीवनानुभूति की अभिव्यंजना पाई जाती है। ग्राम-जीवन के संघर्ष की महान गाथा के प्रतीक लोकगीत ही होते है।

---

१. श्री देवेन्द्र सत्यार्थी—मीट माई पीपल (चेतना प्रकाशन, हैदराबाद) पृष्ठ २६७।
२ वही, पृष्ठ २६२।

ये समस्त जीवन की अभिव्यंजना के गेय माध्यम कहे जा सकते है। इनमे गांव का जन-जीवन गाता है, रोता है, हँसता है, खिल्ली उडाता है, मुँह चिढाता है, व्यग्य कसता है, प्रेम करता है, स्वच्छन्द विहार करता है, रूप-दर्शन पर रीझता और कटाक्ष करता है, ऋतु-पर्वो पर आनन्द मनाता है, अपने दुखो की शिकायत करता है, स्थानीय महाजन, मुखिया, जमीदार. लगान, कर, बेगार, रोग, सूखा, बाढ, टिड्डी आदि कष्टो पर दाँत पीसता और हाथ मलता है, घर-खेत-खलिहान पर हर कार्य को गीतो की वाणी देता है, भूत-चुड़ैलो से लेकर देवी-देवताओ की मनौती मानता है, रिमझिम वर्षा मे जीवन-रस का आह्वान करता है। या फागुन मे 'निवुओ की लपट' का रस लेना चाहता है तो साथ ही सामाजिक समस्याओ, जातीय भावनाओ, जन-आन्दोलनो से उद्वेलित भी होता है। लोकगीतो की यही सामाजिक सामग्री है जिसका विस्तार से अध्ययन आवश्यक है।

"किन्तु यह अध्ययन एकागी दृष्टि मे न हो बल्कि मुख्य रूप से इस बात का भी विचार रखा जाय कि जन-जीवन की भावनाएँ भी तत्कालीन समाज-व्यवस्था से प्रभावित होती हैं, इसलिए उनकी विचार-भावनाओ को सामाजिक अवस्था ही रूप देती है। यह इस बात से सिद्ध है कि लोकगीतो का रूप समय-समय पर बदलता रहता है वे अत्यन्त गतिवान होते है। और जिन समस्याओ का समाधान हो जाता है या जो उतने तीव्र रूप मे नही रहती उनका स्थान लोकगीतो मे कोई अन्य वस्तु ले लेती है। इसके उदाहरणो की कमी नही है। अमेरिका मे कल-कारखानो की नई लोकवार्त्ता पैदा हुई। हमारे यहाँ भी जहा पहले पति को फुसला कर ले जाने वाली 'सौत' ही होती थी वहाँ आगे चल कर वह कार्य रेल पर आरोपित हो गया। 'रेलिया होइ गई मोर सवतिया, पिया के लादि लइ गई–हो।' मुगल का राज 'फिरंगी' का बना, निष्ठुर जवानी तक की उपमा अग्रेज के राज से दी गई, कितने ही लोकगीत राष्ट्रीय आन्दोलन के समय 'गाधी बाबा' के नाम पर ढाल दिये गये, इत्यादि। जन-परम्परा आगे ही बढती है, पीछे हटती नही। जिन प्रश्नो का उसके लिए कोई अर्थ या वर्तमान मूल्य नही रह जाता, वह तत्व छुट जाता है। इस विचार से यह कहना गलत होगा कि जन-परम्परा के सभी तत्व अमर हैं, क्योकि ऐसे दृष्टि कोण से हम जन-परम्परा के गतिमय रूप से आखे वन्द करते हुए केवल उसके प्राचीनत्व को ही प्रतिष्ठित करते जाने के दोषी होगे, और ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उन प्रतिगामी तत्वो के भी पोषक होगे जिन्हे जनता अनजाने छोडती जाती है। लोग ऐसे शब्दो का प्रयोग करके कहते है कि लोक-परम्परा एक रूप से चलती जाती है, वह अमर है, वह देशगत सीमाओ का उल्लंघन इसलिये कर जाती है कि 'उसकी धरती मानव का हृदय है और उसका खेत सारी दुनिया है' (फ्लोरेंस ब्राट्मफोर्ड : फोक सौग्स आफ मैनी पीपुल्स–खण्ड २) एकागी बात कहते है। मैं यह मानता हूँ कि

लोक-परम्परा चलती चली जाती है, पर वह केवल चलती ही नही, विकसित होकर अग्रसर होती है, वह देशगत सीमाओ का उल्लंघन भी इसलिये कर जाती है कि मानव की सामाजिक समस्याए एव मूल भावनाए अब तक अधिकाश रूप मे एक सी रही है, वह अगर इस अर्थ मे नही कि वह प्राचीन को साथ लिये चली जाती है बल्कि इसलिये कि प्राचीन उस मे पुराने तत्व छोड़कर नये तत्व अंगीकृत करके नया बन जाता है। लोक साहित्य का इसी एतिहासिक-सामाजिक दृष्टि से अध्ययन होना चाहिये कि उस मे विशिष्ट समाज या सामाजिक अवस्था के सुख-दुख फलन-उत्पीड़न किस अश मे प्राप्त होते है। तभी समय विशेष मे जन-जीवन की स्थिति और उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओ का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण संभव हो सकता है।

"लोकगीतो का उचित सग्रहीकरण, अध्ययन, विश्लेपण, सरक्षण और अगीकरण इसी सपूर्ण सामाजिक दृष्टि से होना चाहिये जिसकी लोकगीतो के अध्येता या सग्रहकर्त्ताओ से आज तक अपेक्षा है।

"यह विचार सामने रखे तो स्पष्ट हो जाएगा कि लोकगीतो पर कार्य किन दिशाओ मे और किस प्रकार किया जाय। सग्रहीकरण मे परिमाणगत और गुणगत प्रश्नो को ध्यान मे रखते हुए किन बातो पर विशेष महत्व दिया जाय, जिसमे एक ओर तो हम लोक-गीतो के श्रेष्ठ तत्वो द्वारा कला, नृत्य, सगीतादि को ताजी स्फूर्ति दे सकें और उन्हे जनजीवन के निकट ला सके तथा दूसरी ओर ऐतिहासिक तथा सामाजिक सामग्री प्राप्त करके लोक जीवन के आज तक न लिखे गये सही इतिहास की नीव डाल सकें। लोकवार्त्ता के जिन तत्वो का अध्ययन और विश्लेपण आवश्यक है वे मेरे विचार से पहले तो जीवन के आनन्द और सौन्दर्य के पक्ष है, सामाजिक और ऐतिहासिक पक्ष, जातीयता-राष्ट्रीयता का पक्ष, रीति-रिवाज, ऋतोत्सव, पर्व, संस्कार, लोकाचार, काव्यगत कला-पक्ष, लोकगीतो मे नृत्य-संगीत के तत्व, भाषा, मुहावरें आदि बातो पर विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर भय या अंध-विश्वास जन्य, कथा-किंवदन्ती या कुत्सित और हीन भावना-मूलक चीजो का सग्रहीकरण यदि हो भी तो संरक्षण हर्गिज नही होना चाहिए। अलग से संग्रहीकरण भी हो तो केवल यह अध्ययन करने के लिए कि किन सामाजिक या स्थानीय परिस्थितियो के कारण ऐसी गाथाएं उत्पन्न हुई, ताकि जीवन के आमूल निर्माण मे इन तमिस्र पक्षो या सामाजिक कुंठाओ (कम्प्लेक्सेज) को निर्मूल किये जाने का विशेप ध्यान रखा जा सके।

"साहित्य और कला के विचार मे संगीत-नृत्य काव्य मे प्रयोग के लिए लोकगीतो मे कितनी बहुमूल्य और नवीन सामग्री प्राप्त हो सकती है। काव्य के लिए नए उपमान, सम्बोधन, अभिव्यजनाएं, छंद, संगीत के लिए नवीन लय और

ध्वनि-पट, नृत्य के लिए नए रूप-प्रकार, प्रणाली, गठन, सकेत, गति-समावेश, अभिव्यक्ति और इन सबके साथ नए विषयो का विस्तार। इस प्रकार लोकगीतो द्वारा हमारी कला का नवोत्थान (रेनेसा) तक सम्भव हो सकता है।

"एक और महत्वपूर्ण बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। देश के विभिन्न लोकगीतो की प्रामाणिक स्वर-लिपियाँ भी तैयार की जानी चाहिए। इस दिशा मे अब तक बहुत कम कार्य हुआ है। स्वरलिपियो के बिना लोकगीतो का सग्रहीकरण बहुत हद तक अधूरा ही होगा।'[1]

## (२) आगरा ज़िले के ग्रामीण तथा नागरिक लोक-जीवन के विभिन्न स्तरों का सद्य अध्ययन

यदि हम आगरा जिले का मानचित्र देखे तो विदित होगा कि आगरा ज़िला भरतपुर, धौलपुर और ग्वालियर की सीमाओ से मिला हुआ है। इसके पश्चिम मे भरतपुर इसका स्पर्श करता है, पश्चिम-दक्षिण मे राजस्थान का ही हिस्सा धौलपुर है और दक्षिण मे ग्वालियर है। इसकी पूर्वी सीमा से इटावा और मैनपुरी की सीमाये मिलती है, इसकी पश्चिम-उत्तरी सीमा को एटा की सीमा स्पर्श करती है और उत्तर मे मथुरा जिले की सीमा स्पर्श करती है। इस प्रकार भाषा की दृष्टि से तो ग्वालियर को छोड़कर सभी सीमाये ब्रज-भाषा-प्रदेश की ही मानी जायेगी[2] किन्तु ब्रज-भाषा के अन्तर्गत जो अनेक बोलियाँ है वे आगरा जिले के अन्दर और उसके आसपास बोली जाती है। भरतपुर मे ब्रज-भाषा और राजस्थानी के मिश्रण से अनेक बोलियाँ बन गयी है। धौलपुर मे ब्रजभाषा, राजस्थानी और बुदेली का मिश्रण हो गया है। इटावा और मैनपुरी मे पूर्वी ब्रजभाषा बोली जाती है। इटावा पर कानपुर की पूर्वी-अवधी का मिश्रित प्रभाव है और मैनपुरी पर फर्रुखाबाद की पूर्वी का प्रभाव है। एटा पर फर्रुखाबाद और अलीगढ की बोलियो का मिश्रित प्रभाव है। मथुरा पर राजस्थानी का प्रभाव है। और इन सबका प्रभाव आगरा पर पड़ा है। आगरा राजनीतिक दृष्टि से सात तहसीलो मे विभाजित है। भरतपुर-मथुरा से लगी किरावली तहसील है, भरतपुर-धौलपुर से लगी खेरागढ तहसील है, ग्वालियर से लगी फतिहाबाद तहसील है, इटावा-मैनपुरी और ग्वालियर से लगी बाह तहसील है, मैनपुरी तथा एटा से लगी फिरोज़ाबाद तहसील है, एटा-मथुरा से लगी ऐत्मादपुर तहसील है तथा मथुरा ज़िला और किरावली, खेरागढ, फतिहाबाद तथा ऐत्मादपुर

---

१. श्री गिरिजा कुमार माथुर—बाजत आवे ढोल (आमुख)
२ आधुनिक ब्रजभाषा-क्षेत्र का मान-चित्र (संलग्न) देखिए।

तहसीलो से घिरी आगरा तहसील है। आगरा मे ज़िले का मुख्य कार्यालय, सिविल कोर्ट, कलक्टरी कचहरी तथा समस्त ज़िला-प्रशासन होने के कारण सभी तहसीलो के लोगो से आगरा का सीधा सम्बन्ध रहता है। अतः आगरा तहसील की बोली पर सभी तहसीलो की बोलियो का कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य है। उधर सभी तहसीलों पर आगरा नगर तथा तहसील की बोलियो का प्रभाव है। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि ये तहसीलें अपनी विशिष्ट बोलियाँ भी लिये रहती हैं। ऐत्मादपुर तहसील मे अनेक गावो मे 'उ' के स्थान पर 'गु' का उच्चारण होता है। यदि कहना हो कि 'उनको बुलाओ' तो कहेगे 'गुनें बुलाओ'। किरावली और खेरागढ मे राजस्थानी घुल-मिल गयी है। अत. आगरा ज़िले के लोकगीतो मे हमे भिन्न-भिन्न स्थानो के प्रभाव भी दिखायी देते है। यदि एक गीत सैंया गाव मे गाया जाता है और वही यदि वटेश्वर मे गाया जाता है तो सैंया के गीत पर खेरागढ तहसील का प्रभाव और वटेश्वर के गीत पर बाह तहसील की बोली का प्रभाव अवश्य दिखायी देगा। यही नही, इस गीत के कुछ शब्द और चरण भी बदले हुए दिखायी दे सकते हैं।

आगरा का महत्व मुख्य रूप से उसके यमुना नदी के तट पर स्थित होने से है। यमुना नदी भारत के इस हृदय (आगरा) का सम्बन्ध बगाल के हरे-भरे मैदानो से जोडती है। किसी समय आगरा आज से भी अधिक प्रमुख व्यापार-केन्द्र था और यहाँ से यमुना द्वारा दूर-दूर तक व्यापार होता था। आगरा के चारो कोनो पर चार महादेव (उत्तर-पश्चिम मे कैलाश, पश्चिम-दक्षिण मे पृथ्वीनाथ, दक्षिण-पूर्व में राजेश्वर और पूर्व-उत्तर मे बल्केश्वर) स्थापित है तथा मध्य मे पाचवे महादेव मनकामेश्वर तो है ही नगर मे घटिया छिलीईंट पर महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक बनी है। यहाँ महाप्रभु बहुधा ठहरा करते थे। अभी कुछ वर्ष पूर्व भयकर वर्षा और बाढ के कारण एक पौराणिक नदी 'हरनद' का भी आगरा मे पता लगा है। यह नदी लुप्त हो चुकी है। इसका पता लगने से आगरा की अनेक प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक बातों का पता लगाया जा सकता है। ऐत्मादपुर के टेहू ग्राम मे गुर्जर-प्रतिहार-काल की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। सोरीपुर (वटेश्वर) मे गुप्त-कालीन, बौद्ध-कालीन और महाभारत-कालीन सिक्को तथा मूर्तियो के निकलने से आगरे के प्राचीन सास्कृतिक गौरव का पता लगता है। सम्राट अकबर से पूर्व सिकन्दर लोदी के समय मे आगरा फारसी भाषा एव साहित्य का एकमात्र स्थान बन गया था। उर्दू का जन्म भी आगरा मे ही हुआ कहा जा सकता है। मध्य एशिया और विशेष रूप से फारस से अनेक कवि, लेखक एव दार्शनिक आगरा आये। उन्होने यहाँ रह कर एक ओर तो फारसी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया दूसरी ओर जीवन-दर्शन एव धार्मिक विचारों को भी प्रभावित किया। ब्रज-फारसी का समन्वय आगरा मे ही

हुआ। आगरा वैसे तो सदैव से ही राजनीतिक एवं सामाजिक महत्व का केन्द्र रहा है किन्तु साहित्यिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से भी प्रमुखता लिये रहा है। भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास का भी आगरा आना माना जाता है।

आगरा की स्थापत्य कला तो संसार-प्रसिद्ध है ही मूर्तिकला मे भी आगरा अद्वितीय है। यहाँ सगमरमर, सेल-खडी, कागज की लुग्दी, कागज, मिट्टी आदि के वड़े सुन्दर खिलौने वनते है। यहाँ के वने खिलौनो मे जो सफाई और आकर्षण है वह अन्य किसी नगर के वने खिलौनो मे नही। सगमरमर की मूर्तियो मे गोकुलपुरा और मिट्टी के खिलौनो मे छिलीईंट की घटिया तथा फुलहट्टी प्रमुख है।

संगीत कला मे भी आगरे का प्रमुख स्थान रहा है। आगरा घराने की गायकी उच्च-स्तरीय राग-रागनियो के लिए प्रसिद्ध है। संगीत सम्राट तानसेन के समय आगरा सगीत का प्रमुख केन्द्र था। वैजनाथ नायक (वैंजू वावरा) भी आगरे के ही माने जाते हैं। आगरा गायकी के प्रमुख प्रतिपादक हाजी सुजान खां तानसेन के सम्वन्धी थे और आज भी इस घराने की गायकी कम महत्व नही रखती। उस्ताद फैयाज खाँ भी आगरा के ही थे। इनके वंशज आज भी इनके नाम को ऊँचा उठाने मे प्रयत्नशील है।

लोक साहित्य मे भी आगरा अग्रणी ही रहा। लोकगीत के लिए तो आगरा मुख्य रूप से प्रसिद्ध है। कचहरीघाट, वेलनगज, पथवारी और फुलहट्टी वाजार लोक साहित्य, लोक-संगीत और लोक-गीतो के गढ़ हैं। आज भी यहाँ वड़े-वड़े लोक-गायक हैं जो समय-समय पर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। यहाँ का प्रमुख लोकगीत रसिया और मुख्य संगीत-नाटक भगत है। आगरा मे अनेक श्रेष्ठ चौवोला गायक और ख्यालवाज भी है। चतुर्वेदी अयोध्या प्रसाद पाठक ने आगरा के लोक-साहित्य को प्रकाश मे लाने का सतत् प्रयास किया था।

भारतीय साहित्य के विकास मे भी आगरा का महत्वपूर्ण योग रहा है। काव्य, कथा-साहित्य, नाटक, आलोचना आदि के क्षेत्र मे पर्याप्त कार्य हुआ है। उर्दू साहित्य मे 'गजल' की परम्परा आगरा से ही चली। दिल्ली और लखनऊ मे गजल का प्रचलन करने वाले 'मीर' और 'तकी' आगरा के ही थे। 'गालिव' भी आगरा के ही गौरव थे। आगरा मे पीपल मन्डी के पास 'काला महल' उनका जन्म स्थान है। ताजगज के निवासी मिया नजीर आगरा के सबसे वड़े जन-कवि माने जाते हैं। इनकी सरस वाणी आज तक आगरा मे गूँज रही है। प्रतिवर्ष वसंत पंचमी के दिन ताजगंज मे नजीर की मजार पर एक विशाल मेला लगता है। इस मेले मे नजीर की रचनाये पढी जाती है और गायी जाती हैं। नजीर ने आगरे के जन-जीवन का जैसा सजीव और सरस वर्णन किया है वैसा कोई लोकगीतकार नही कर सका।

उर्दू साहित्य के सृजन मे अकबर के नवरत्नो मे से एक फैजी ने पर्याप्त कार्य किया। अबुल फजल तथा उसके सेवक अमरवेग ने 'विकाया' नाम की एक पुस्तक लिखी। उन्नीसवी शताब्दी मे मोहम्मद बख्श नाम के एक प्रसिद्ध शायर ताजगज मोहल्ले मे थे। ये कुशल गायक भी थे। मीर और कासिम द्वारा अफगान युद्ध का इतिहास भी लिखा गया। मीर आजमअली ने निजामी के 'सिकन्दर नामा' का अनुवाद किया। दीवान जानी बिहारीलाल ने शेख सादी के 'गुलिस्ताँ' का अनुवाद किया।

हिन्दी साहित्य के विकास मे भी आगरे का पर्याप्त योग है। आगरे के ही लल्लूलाल जी ने कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज मे 'प्रेम-सागर' की रचना की। लल्लूलाल जी खडी बोली हिन्दी के जन्मदाता माने जाते है। आगरा के ही राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी-गद्य-शैली के विकास मे प्रशसनीय कार्य किया। ब्रज-कोकिल सत्यनारायण, डा० गुलाबराय, डा० हरिशकर शर्मा, डा० रागेय राघव, डा० सत्येन्द्र, डा० रामविलास शर्मा आदि हिन्दी के भारत प्रसिद्ध विद्वानो ने हिंदी साहित्य के विकास, उत्थान एव गौरव मे जो विशिष्ट कार्य किए है वे चिरस्मरणीय रहेगे। आगरा के कवियो पर लोकगीतो का भी प्रभाव पडता रहा है। अनेक कविताओ मे लोकगीतो की शैली, धुने और शब्दावलि देखी जा सकती हैं। साहित्यिक कविताओ के अतिरिक्त आगरा मे लोकगीतो की वृद्धि भी स्वतन्त्र रूप से होती रहती है। सामयिक, राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक गति-विधियो से सम्बन्धित अनेक लोक-गीत उभरते ही रहते है। यह स्वाभाविक काव्य तो ब्रज मन्डल की धूलि के अणु-अणु मे समाया हुआ है। यहाँ का एक छोटा सा अबोध बालक भी जब 'साँकरी गली मे ओरी काकरी चुभत है' कहता है तो फिर वयस्को का तो कहना ही क्या! कृष्णलीला-स्थली, सूर की भाव-भूमि इस ब्रजमण्डल के लिये 'रसखान' के ये भाव सत्य ही हैं :—

'इन आखिन सो रसखान कबौ
ब्रज के बन-बाग तडाग निहारौं।
कोटिक ही कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारौं॥'

ऐसे ही ब्रज-मण्डल मे बसा हुआ है आगरा। इसके लिये भी सत्य ही कहा गया है :—

आगरा हम पर फिदा है, हम फिदाये आगरा।
आगरा हमको न छोडे, हम न छोड़े आगरा॥

आगरे की भयकर गर्मी के कारण कुछ लोग व्यग मे यह भी कहते हैं :—

आगरे मे आग है रे, भाग रे तू, भाग रे!

किन्तु आगरा में छै ऋतुएँ अपने पूर्ण यौवन को लेकर आती है। हर ऋतु अपने वास्तविक रूप को आगरा मे खुलकर प्रकट करती हैं। यदि यहाँ ग्रीष्म की भयकर आग और लूएँ हैं तो वर्षा का सुहावना मौसम भी है, शीतकाल की ठिठुराने वाली ठड है तो मादक-मधुर वसत भी है, हेमन्त और शिशिर भी अपने प्रथक रूप को लेकर आती है। इसलिये यह भी कहना ठीक होगा कि :—

आगरे मे आ गया जो , बस गया वह आगरा ।
आसमाँ की क्या है ताकत, जो छुड़ाये आगरा ।।

सत्य तो यह है कि विना आगरे के भारत अपूर्ण हैं, विना आगरे के संसार सूना है।

आगरा ब्रज की सीमा मे आता है । ब्रज की सीमाओ के सम्बन्ध मे एक प्राचीन दोहा है जिसमे 'सूरसेन के गाँव' का उल्लेख हुआ है। सूरसेन का गाँव वटेश्वर माना जाता है। इस सीमा के आधार पर आगरा भी 'ब्रज' मे ही है ।

ऐतिहासिक खोजो तथा अन्य अनेक प्रमाणो से ग्वालियर की भाषा और ब्रजभाषा मे कोई अन्तर नही। अकवर से पूर्व ग्वालियर ही भाषा-साहित्य और कला का केन्द्र था। मरहठो के आने से वाद मे यहाँ मराठी का कुछ प्रचलन हुआ और वाद मे प्रथक राज्य वन जाने से इसकी भाषा वुन्देलखण्ड से भी कुछ प्रभावित होती रही। वैसे ग्वालियर ब्रज-मण्डल मे ही था। मुगलकाल मे ब्रजभाषा का सगीत वृन्दावन और ग्वालियर मे ही अधिक केन्द्रित रहा। इस काल मे इन दोनो स्थानो की प्रवृत्तियो का संगम-स्थल आगरा था। प्रचलित विश्वास के अनुसार यदि ग्वालियर के तानसेन को हरिदास या गोविन्द स्वामी का शिष्य मान लिया जाए तो कहा जा सकता है कि तानसेन दोनो प्रवृत्तियो का समन्वय करने वाले थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आगरा ब्रजभाषा के उत्कृष्ट और विकसित रूप का गढ था। यहा ब्रजभाषा सँवरी, निखरी और विखरी। तानसेन, सूर और सत्यनारायण की ब्रजभाषा आगरे को ही गौरव प्रदान करती है। ब्रजभाषा के अनेक अचार्य भी आगरा के ही हैं जिनमे कुलपति मिश्र, सुन्दरदास और सूरति मित्र के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

लोकगीतो और लोककथाओ मे के क्षेत्र भी आगरा अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रख्यात रहा है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के प्रमाण से हिन्दी के आदि-काल मे आगरे का 'रायभा' चर्चरी या चाचर नृत्य-गीतो के लिये प्रसिद्ध था। प० सत्यनारायण कविरत्न की कविता मे आगरा की प्राचीन लोक-गीत परम्परा ही प्रस्फुटित हुई है। 'कोरो सत्य गाम को वासी कहा तकल्लुफ जानें' लिखकर सत्य-नारायण जी ने स्पष्ट कर दिया कि वे लोक-साहित्य के रचयिता हैं। कोरे ग्रामवासी ।

होने के कारण उनकी भाषा में सचमुच ही ग्राम-माधुरी अथवा लोक-माधुरी मिलती है।

आगरा नगर ने खड़ी बोली में पथ-प्रदर्शन का कार्य किया है। एक ओर यदि आगरा नगर ने साहित्यिक समृद्धि में हाथ बँटाया है तो दूसरी ओर लोकगीतो को भी प्रोत्साहन दिया है। ख्याल, स्वांग, भगत, नौटंकी के लोक-क्षेत्र मे खड़ी बोली ने अनेक अमूल्य रत्न दिये हैं। आगरा नगर मे खड़ी बोली का अधिक प्रभाव होने पर भी व्रजभाषा नगर के घरो मे तो बोली ही जाती है। व्रजभाषा की सबसे अधिक रक्षा आगरा नगर मे अब तक चतुर्वेदी समाज द्वारा की जा रही है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त चतुर्वेदी लोग भी अधिकतर व्रज-भाषा का ही प्रयोग करते है।

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर मे १६ वी शताब्दी मे आगरे की भाषा के विषय मे लिखा था कि लगभग ६६ प्रतिशत से भी अधिक लोग व्रजभाषा का ही प्रयोग करते हैं। उस समय आगरा नगर मे भी व्रजभाषा की ही प्रधानता थी क्योकि उस समय स्त्रियाँ भी बहुधा व्रजभाषा ही बोलती थी। गाँवो मे तो व्रजभाषा की ही प्रधानता थी। आजकल स्थिति कुछ परिवर्तित होती जा रही है। हाल ही मे लोक-साहित्य के श्रेष्ठ विद्वान डा० सत्येन्द्र के नेतृत्व मे के० एम० मुंशी विद्यापीठ (आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा) की ओर से आगरा नगर का एक 'सैंपिल सर्वे' किया गया था। इस सर्वे (सर्वेक्षण) का साराश निम्नलिखित है :—

"यह सर्वेक्षण स्वरूपाश्रित सर्वेक्षण है। इसमे एक-एक मुहल्ले का सर्वेक्षण कर चुने हुए व्यक्तियों की बोलियो का नमूना लिया गया है। ......... व्रजभाषा, खड़ी, व्रजभाषा मिश्रित खडी बोली अथवा मिश्रित व्रजभाषा का विभाजन इन नमूनो मे इस प्रकार किया जा सकता है : ३० प्रतिशत शुद्ध व्रजभाषा के, ४० प्रतिशत शुद्ध खडी बोली के, ३० प्रतिशत व्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली के।"

इस सर्वेक्षण के आधार पर प्रकट होता है कि खडी बोली वाले व्रजभाषा वालो से १० प्रतिशत अधिक हैं। मिश्रित संख्या इस बात की द्योतक है कि यह ३० प्रतिशत भी व्रजभाषा का ही था जो अब धीरे-धीरे खडी बोली से प्रभावित होता जा रहा है। कालान्तर मे यह मिश्रित रूप खडी बोली मे परिवर्तित हो जायेगा और खडी बोली ६०-७० प्रतिशत हो जायेगी। अब तो प्राचीन लोकगीतों मे भी खड़ी बोली का प्रवेश होने लगा है। गाँवों मे स्कूल खुलने, विकास क्षेत्र स्थापित होने और नगर तथा गामो के निकट सम्बन्ध तथा सम्पर्क होने से गाँवो मे भी खड़ी बोली पहुँचने लगी है। इससे व्रजभाषा के पतन की आशका की जा सकती है किन्तु पतन तो उस भाषा का होता है जो प्राणहीन, शक्तिहीन और प्रभावहीन होती है। व्रजभाषा मे ऐसी कोई त्रुटि या दुर्बलता नहीं। वह जन-जन की भाषा है। वह

अपना अस्तित्व सहज ही मे नही खो सकेगी। उसका अस्तित्व तो रहेगा किन्तु आगे चलकर लोकसाहित्य संभवत खडी बोली मे ही अब अधिक दिखायी देगा।

आगरा के ही सूरति मिश्र ने आगरा के विषय मे लिखा है :—

नगर आगरो वसत सो, वाँकी ब्रज की छाँह।
कालिन्दी कल्मष हरनि, सदा बसति जा माह।

आगरा की ब्रजभाषा की चर्चा सन् १७८० के एक कवि लक्ष्मीचन्द्र की पुस्तक 'आगरा गजल' से खडी बोली के एक उद्धरण द्वारा प्रकट होती है। उन्होने लिखा था :—

अक्बराबाद है ऐसा क, लखिये इन्द्रपुर जैसा क।
सब गुन सहर है भरपूर, देखत जात है दुख दूर॥
जब लग गगन अरु इ दाक, पृथ्वी सूरगन चदा क।
सुवसौ तब लगै पुर एह, सहर आगरा गुन गेह॥

## आगरा के गीति-नाट्य

**आगरा नगर में शास्त्रीय-संगीत की अपेक्षा लोक-सगीत प्रचुर मात्रा मे मिलता है। 'आल्हा', 'रसिया', 'लावनी' (ख्याल), ढोला, 'भजन' 'होली' और 'मल्हार' आगरा के लोकगीतों की प्रसिद्ध शैलियाँ हैं।** इनके अतिरिक्त यहाँ सगीतबद्ध लोक-नाट्य 'भगत' भी बहुत लोकप्रिय है। 'भगत' मे सगीत और अभिनय का सुन्दर समन्वय रहता है। इसके संवाद सगीतमय होते है। यह सगीत भी अपने ढंग का निराला होता है। यह एक विशेष आनुष्ठानिक पृष्ठभूमि से युक्त है। यह एक अव्यवसायिक रंगमंच है जिसका उद्देश्य मनोरजन के साथ धार्मिक भाव प्रकट करना है। इसका समस्त साहित्य या सगीत अब तक लगभग अप्रकाशित ही है। आगरा नगर मे इसके अनेक व्यवस्थित अखाडे है। इन्ही अखाडो मे इसका साहित्य बनता और पनपता रहता है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'भगत' 'भक्त' का विकसित रूप है। 'भक्त' से 'भकत' और फिर 'भगत' बना। इसके नाम से ही प्रतीत होता है कि इसका मूल रूप धार्मिक ही होगा। इसमे कुछ ऐसे तत्व भी विद्यमान है जिनमे आभास मिलता है कि आरम्भ मे इसका सम्बन्ध देवी-पूजा मे रहा होगा। इसमे आरम्भ मे भक्तो के चरित्रों को ही लिया जाता रहा होगा अत. उनके दिग्दर्शन करने वाली इस प्रणाली को 'भगत' कह दिया गया।

**लगभग १५० वर्ष पूर्व आगरा मे 'भगत' नाम का कोई संगीत-नाट्य नहीं था। उस समय तक यहाँ 'ख्यालगोई' का प्रचलन था, जिसके एक संवाद में २२**

मिसरे होते थे। 'ख्याल' के विषय में कहा जाता है कि यह १८ वीं शताब्दी के आरम्भ मे आगरा के आस-पास एक नई कविता शैली के रूप में प्रकट हुआ इसमें उर्दू-फारसी का मिश्रण था। इन ख्यालियों के कई दल बनते चले गये। सभी प्रकार की बन्दिशें बांधने वालो के गोल होड़ लगाते थे। ख्याल के बाद भगत का आरम्भ हुआ। इन दोनो में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं : –

१ ख्याल में एक अभिनेता आरम्भ में मच की सफाई का अभिनय करता हुआ भंगी के रूप में ख्याल गाता है, भगत में ऐसा नहीं होता।

२. ख्याल मे भंगी के बाद भिश्ती आता है। वह भी छंद-बद्ध सवाद बोलता है। भगत में ऐसा नहीं होता।

३. ख्याल में सूत्रधार की भांति एक हलकारा प्रधान नायक के आगमन को सूचना छंद-बद्ध संवाद में देता है। वह अपना आगमन सदैव ही 'गढ़ बगाल' से बताता है। भगत मे रक नामक पात्र कथा का वर्णन करता है।

४. साधारणतः ख्याल में २२ मिसरे होते हैं। परन्तु 'भगत' मे एक दोहा व एक चौबोला होता है। दोनो पद्यमय संगीत हैं।

संवत १८८४ में मोतीकटरा में अमरोहा निवासी रामप्रसाद और मोतीकटरा निवासी जौहरीराय ने 'रूप वसंत' नामक एक स्वांग आगरा मे प्रस्तुत किया था। इस सम्बन्ध मे एक ही प्रकार के दो दोहे प्रसिद्ध है —

अमरोहा खारी कुवा, चौरासी की साल।
नया स्वा ग प्रकट किया, बिशन बिर्हमन लाल॥

और

अमरोहा मे प्रगट भई, चौरासी की साल।
नया स्वाग प्रगट किया, बिशन ब्राह्मन लाल॥

इन दोहो से स्पष्ट है कि स० १८८४ मे भगत की प्रणाली आगरा मे आरंभ हुई। रामप्रसाद जी और जौहरीराय जी ने मोतीकटरे मे भगत का अखाडा स्थापित किया जिनमे जौहरीराय गुरु बने। आपने शिष्यो को एकत्रित कर भगत के स्वांग 'रूप-वसत' का पूर्वाभ्यास कराया। आगरे की ही एक अन्य बस्ती गोकुलपुरा मे 'गनगौर' का मेला प्रतिवर्ष लगता था जिनमे शिव-पार्वती के रूप को सजा कर सवारी बडी धूम-धाम से निकाली जाती थी। इस १८८४ संवत मे ही मोतीकटरे वालो ने गोकुलपुरा वालो की गनगौर का बलपूर्वक अपहरण किया। इसी विजयोल्लास मे मोतीकटरा मे मेले का आयोजन हुआ और 'रूप-वसंत' भगत का प्रदर्शन किया गया। इस अवसर पर नगर की विभिन्न बस्तियो के संगीतज्ञ और शायर

भी उपस्थित थे। जौहरीराय ने आगरा के सगीतज्ञो और शायरो पर व्यग किया। इसके फल-स्वरूप आगरे की विभिन्न वस्तियो मे भगत के अखाड़े स्थापित हुए। इन अखाडो द्वारा अच्छे' अच्छे स्वाग लिखकर खेले जाने लगे। कहा जाता है कि अखाडा गुरु नन्दराम लहरी मे ताजगज मे सर्वप्रथम अपने अखाड़े मे लिखा हुआ स्वाँग प्रदर्शित किया गया। बाद मे अन्य अखाडो ने विभिन्न वस्तियो मे जन्म लिया। आगरा नगर मे भगत के अखाडो और उनकी शाखाओ का जाल बिछ गया। सभी की जिह्वा पर चौबोले विराजने लगे।

ब्रज मे दो प्रकार की भगत मिलती है। एक 'भगत' हाथरस की है जिसका प्रचार लोक-सगीतज्ञ नाथाराम द्वारा किया गया था। इसमे साधारणतः छोटी तान के चौबोले मिलते है।

आगरे की भगत दूसरे प्रकार की है। यह आगरा के विभिन्न अखाडो मे आयोजित की जाती है। इसमे लम्बी तान के चौबोले होते हैं। भगत के अखाडो मे दो प्रकार के काव्य मिलते है—(१) मुक्तक काव्य=दगली चौबोले, (२) प्रबन्ध काव्य=चौबोले।

आगरा नगर की विभिन्न वस्तियो मे 'भगत' के अखाडे और उनकी शाखाये हैं। इनमे से कुछ अखाडे शिथिल पडते जा रहे है।। इसका कारण आर्थिक सकट के अतिरिक्त जीवन के अन्य कार्यो मे अति-व्यस्तता भी है। पहले तो ये अखाडे केवल अपने सीमित क्षेत्रो मे ही 'भगत' किया करते थे किन्तु अब अपने क्षेत्रो के बाहर भी प्रदर्शन करने लगे हैं। नमक की मन्डी के अखाडे वालो ने सर्व-प्रथम गधापाडे मे अपनी भगत का प्रदर्शन कर नयी परिपाटी आरम्भ की। इसके बाद चौक अखाडे वालो ने रामलीला के मैदान मे, नमकमन्डी वालो ने सेण्टजांस स्कूल के मैदान मे, बेलनगज वालो ने छीपीटोला मे, पथवारी वालो ने विजयनगर कोलौनी मे और निरालाबाद अखाडे के लोगो ने दिगम्बर जैन इण्टर कालेज, हरीपर्वत के मैदान मे अपनी 'भगतो' के प्रदर्शन किऐ।

आगरा के प्रसिद्ध 'भगत' के अखाडे इस प्रकार है—

१ अखाडा गुरु जौहरी राय मोतीकटरा, २. अखाडा गुरु नन्दराम लहरी ताजगज, ३. अखाड़ा गुरु शेढासिह भगत सिंह द्वार, ४. अखाड़ा गुरु जोसीराम वल्देव-गंज, ५. अखाड़ा गुरु दुर्गादास लोहामन्डी, ६ अखाडा गुरु रामसहाय आलमगज, ७. अखाड़ा गुरु सीताराम राजामन्डी, ८ अखाडा गुरु खैरातीलाल नाई की मन्डी, ९. अखाडा गुरु काशीनाथ निरालाबाद, १० अखाडा गुरु अयोध्या प्रसाद नमकमंडी, ११. अखाडा गुरु वृन्दावन विहारी चौक, १२. अखाडा गुरु गिरवर सिंह, १३. अखाडा गुरु रूपराम कचहरीघाट, १४. अखाड़ा गुरु बूचासिह पथवारी, १५. अखाड़ा गुरु शोभाराम नुनहाई।

अब इन सभी अखाडो की एक सम्मिलित परिषद् बन गई है जिसके द्वारा परस्पर के झगड़ों का निपटारा, दंगलो का संचालन आदि होता है। इस परिषद् द्वारा अखाड़ों का सम्मिलित जलसा वर्ष में दो बार होता है।

## २. विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का सग्रह

लोकगीतो के सग्रह का कार्य बडा कठिन, असुविधापूर्ण और अधिक समय लेने वाला होता है। इसमे धैर्य की पग-पग पर परीक्षा होती है। निराशा, असफलता और विवशता आदि से बार-बार टक्कर लेनी पडती है। कार्य मे विलम्ब होने से मन भी ऊबने लगता है। बडी प्रतीक्षा या बडे परिश्रम के बाद जब केवल एक-दो ही गीत प्राप्त हो पाते है तो संग्रहकर्त्ता इस कार्य के प्रति कुछ उदासीनता ला सकता है। पहले तो किसी लोकगीत गायक का मिलना ही कठिन है और यदि सौभाग्य से वह मिल भी जाता है तो उससे गीत सुनना उससे भी अधिक कठिन हो जाता है। नई सभ्यता मे फिल्मी गीतो का अधिक प्रचार होने से अब गाँवो तक मे इन्ही की धुनो पर लोकगीत गाए जाने लगे है। अनेक भजन प्रचलित फिल्मी-गीतो की धुनो पर बड़े आनन्द मे गाए जाते हैं। धोबी, चमार, अहीर, तेली, जुलाहे, आदि लोगो मे ये लोकगीत सुरक्षित थे किन्तु उन पर भी इन फिल्मी-गीतो का प्रभाव पडने लगा है। नगर की कुछ पुरानी बस्तियो और गाँवो के किन्ही कोनो मे इने-गिने वृद्ध-वृद्धाओ के पास अब भी कुछ लोकगीत उनके कण्ठो मे सुरक्षित हैं। किन्तु इन्हे खोज निकालना कठिन होता है। खोज लेने पर इनमे कुछ गीत प्राप्त कर लेना बड़े सौभाग्य की बात होती है। ग्रामीण बालाओ, वधूओ और गृहणियो मे लोकगीत सुनना और अधिक कठिन होता है। ग्रामीण नारी समाज पुरुषो के सामने गाने मे झिझकता है अत: स्त्रियो के गीत सुनने के लिए अनेक युक्तियों से काम लेना होता है।

लोकगीतो का संग्रह कुछ ही दिनो का कार्य नही। इनके वास्तविक रूप को समझने और सुनने के लिए अनुकूल समय तथा स्थान की प्रतीक्षा करनी पडती है। जब गवैये अपनी मस्ती मे आते हैं तो वे बिना किसी के आग्रह के स्वय गाने लगते हैं। ऐसे समय मे लोकगीत के संग्रहकर्त्ता को गवैये को बिना आभास दिए उनका यह गीत लिख लेना चाहिये अन्यथा पता पड़ने पर गवैया संकोच या अन्य किसी कारण से गाना रोक सकता है। जन्म, वर्षगाठ, विवाह आदि मागलिक अवसरो पर स्त्रियां जब समवेत स्वर के गीत गा रही हो तो चुपचाप इन गीतो को लिखने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने मे बड़ी असुविधा होती है किन्तु यदि उन स्त्रियो को तनिक भी पता चल जाता है कि उनके गीत कोई सुन रहा है तो वे चुप हो जाती हैं। मुझे लोकगीतो के सग्रह मे अनेक असुविधाओ का सामना करना पड़ा है। आगरा जिला बहुत बड़ा जिला है। इसमें अनेक गांव और अनेक

बस्तियाँ हैं। इनमे अनेक जातियो, अनेक व्यवसायो, अनेक मतो और अनेक रुचियो के लोग रहते है। इनमे कुछ बातें अलग-अलग है किन्तु अनेक बातें एकसी हैं। इनके मेले, इनके संस्कार, इनके रीति-रिवाज, इनके पर्व, इनके व्रत, इनके विश्वास, इनके अरमान, इनके भाव आदि एक से हैं। इसीलिए तो इनके गीतो मे सरसता और समानता का आनन्द आता है। सावन की मल्हारें, होली के रसिया, सोहर के बधाए, विवाह के मगल गीत आदि आगरा की भावुकता, सरसता, आनन्दप्रियता और अल्हड जवानी को प्रकट करते हैं। इन गीतो को सुनने के लिए जगह-जगह घूमकर हर मौसम और हर मागलिक अवसर का लाभ उठाने के लिए मुझे सदैव तत्पर रहना पडा है। जहाँ कही कोई मेला या उत्सव हुआ मुझे वहां जाने का समय और साधन ढूँढ निकालना ही पडा। वटेश्वर के मेले मे आगरा जिले के अनेक लोकगीत गायकों के अखाडे जमते हैं। यहा पहुचकर मैं डायरी कलम लिए घन्टो उनके गीतो को सुन-सुन कर लिखता रहा हूँ। विद्यार्थियो के अनेक श्रमदान शिविरो मे भाग लेने मे भी मुझे लोकगीतो के सग्रह मे बडी सहायता मिली है। बिचपुरी, खेरागढ, सैंया, जगनेर, दाह, भदावर, रुनकुता, कैलाश, पथौली, शमसाबाद, फतिहाबाद, कागारौल ऐतमादपुर आदि तहसीलो और गावों में दो-दो तीन-तीन सप्ताह शिविरो मे रहकर ग्रामीणो को सांस्कृतिक कार्यक्रम के बहाने लोकगीत गाने को बडी कठिनाई से तैयार कर सका हूँ। उनके गाते समय चुपचाप बैटरी के टेप रेकार्डर मे उनकी वाणी भरने के प्रयास किए है। ग्रामीण महिलाओ के गीत प्राप्त करने मे सबसे अधिक कठिनाई हुई। ये महिलाएँ नगर की महिलाओं के सामने भी गाने मे सकुचाती हैं। इनसे गीत प्राप्त करने के लिये मैंने ग्राम-शिविरों मे भाग लेने वाली छात्राओ और अध्यापिकाओ से आग्रह किया। इन्हे ग्रामीण महिलाओ के बीच घण्टो नाचना-गाना पड़ता था। बडी कठिनाई से ये महिलाएं अपने गीत गाने को तैयार होती थी। मिढाकुर ग्राम मे इन अध्यापिकाओ और छात्राओ को बड़े प्रयासो के बाद केवल दो-तीन गीत ग्रामीण महिलाओ से मिल सके थे। इन गीतो के लिए इन्हे लगभग दो घण्टो तक संगीत का कार्यक्रम चलाना पडा था। अँगूठी ग्राम मे पहले तो स्त्रियो ने गाने से बिल्कुल ही मना कर दिया किन्तु बाद मे उन्होने स्वयं ही अनेक गीत सुनाने आरम्भ कर दिये। इन गीतो मे से अधिकाश गीत फिल्मी धुनो पर थे और कुछ पहिले ही से जाने-पहिचाने। बड़ी कठिनाई से तीन-चार गीत उपयोगी निकल सके। इनमे भी दो गीत अधूरे ही मिल पाये क्योंकि कुछ तो उनकी भाषा समझ मे नहीं आयी और कुछ गाने की द्रुत लय के कारण लिखे नहीं जा सके।

करौली के मेले में जाती हुई भीडों के साथ मुझे घण्टो इसलिये घूमना पडा कि कुछ जात के गीत मिल जायें। 'लाँगुरिया' के गीत इन्हीं भीडो में से मिल सके हैं। प्रातः यमुना स्नान को जाती हुई महिलाओ के गीतो को अनेक बार सुन कर याद करना पडा क्योंकि मार्ग मे अँधेरा होने के कारण और चलते हुए उन्हे लिखना

सम्भव नही था। शीतला की जात को जाती हुई स्त्रियो के गीतो के विषय मे इतनी कठिनाई नही मिली।

कुछ लोकगीत मुझे अपनी पूज्य माँ से भी मिले हैं। मेरी माँ आगरा के कचहरी घाट मोहल्ले की निवासिनी थी। उन्हे यहाँ की शहरी किन्तु अपढ़ महिलाओ के कुछ गीत याद थे। उनसे मुझे टेसू, झाँझी और सोहर आदि के कुछ गीत मिले। वे अनेक गीत भूल सी गयी थी। जब कभी उन्हे कोई गीत याद आ जाता, मुझे बुलाकर सुना देती। दुर्भाग्यवश उन्हे पक्षाघात हो गया। दाहिने शरीर और मुंह पर उनका अधिक प्रभाव पडा। उनका बोलना रुक गया। मेरा समस्त कार्य रुक गया और मैं माँ की सेवा मे लग गया। उनके शरीर मे मालिश करने के लिये एक बूढ़ी स्त्री ढूंढी। वह जाति की चमारिन थी। वह रोज प्रातः आकर माँ की मालिश करती। एक बार मैंने उसे कुछ गुनगुनाते हुए सुना। वह गा रही थी :—

जगल को वासी रे पिरेत
जगल को वासी रे पिरेत मेरे जगलिया
तोहि घाम लगैगी रे पिरेत मेरे जगलिया
तोकूं पेड़ लगाय दऊं रे पिरेत मेरे जगलिया।

मैंने उससे और गीत सुनाने को कहा। वह बोली कि उसे अधिक गीत नही आते, वह तो वैसे ही गुनगुना रही थी। मैंने उसे कुछ पुरस्कार देने का आश्वासन दिया। कुछ हाँ-ना के बाद उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन से वह अपने गीत सुनाने लगी। इन गीतो मे से मैं अपने मतलब के गीत लिख लेता था और नित्य ही उसे कुछ न कुछ भेंट मे दे देता। वह आगामी दिन दूने उत्साह से गीत सुनाती। इस स्त्री रम्पो (राम प्यारी) से मैंने कुछ सुन्दर गीत प्राप्त किये हैं।

अभी आगरा नगर के गीतो का सग्रह करना शेष था। इस कार्य मे मेरी पूर्व-छात्रा श्रीमती मोहिनी खण्डेलवाल ने सहायता दी। श्रीमती खण्डेलवाल ने आगरा के वैश्य परिवारो मे गाये जाने वाले कुछ पारिवारिक तथा संस्कार-गीत मुझे दिये। ये गीत सोहर, जच्चा, बन्ने, घुडचढी, द्वाराचार, ननद-भौजाई से सम्बन्धित, पति-पत्नी से सम्बन्धित, विधुर सम्बन्धी तथा सावन की मल्हारो के थे। इसी सम्बन्ध मे श्रीमती प्रेमप्यारी का नाम भी उल्लेखनीय है। आगरा के कमल शिशु विद्यालय की इन अध्यापिका जी ने भी मुझे कुछ लोकगीत इधर-उधर से सग्रह कर दिये।

हमारे कालिज के एक चपरासी प्यारेलाल ने भी लोकगीतो के सग्रह मे कुछ सहायता की। प्यारेलाल का असली नाम प्यारे खाँ है। यह जाति का मुसलमान है किन्तु इसका और इसकी स्त्री का रहन-सहन ग्रामीण हिन्दुओ जैसा है। यह विनपुरी ब्लाक के अँगूठी ग्राम का निवासी है। इसने दो-तीन लोकगीत गायको से

मेरी भेंट करा दी और उनसे मैंने कुछ लोकगीत प्राप्त किये। प्यारेलाल ने भी स्वय कुछ लोकगीत लाकर मुझे दिये। हमारे कालिज के बड़े बाबू मुशी गिरिराज किशोर ने भैरो जी के तथा अन्य कुछ गीत लाकर मुझे दिये और भोगीपुरे के कुछ जोगियो से मेरी भेट कराई।

लोकगीतो के संग्रह मे सबसे अधिक सहयोग मुझे मथुरा के प्रसिद्ध पत्रकार श्री मोहन स्वरूप भाटिया से प्राप्त हुआ। भाटिया जी के पास व्रज के सहस्रो लोकगीन है। इनके अथक परिश्रम और लगन के फलस्वरूप इनके पास व्रज के सभी प्रकार के लोकगीत सग्रहीत है। इनसे मुझे जहाँ आगरे के भी कुछ लोकगीत मिले वहाँ लोकगीतो को प्राप्त करने के ढग भी समझ मे आये। इनके द्वारा प्रयुक्त प्रणालियो के आधार पर मैंने अन्य लोकगीत खोज निकालने मे सफलता प्राप्त की। आगरा के लगभग सभी मेलो, त्यौहारो, पर्वो और मागलिक कार्यो आदि मे जाना, टेप-रेकार्डर का प्रयोग करना, ग्रामीणो मे घुल-मिलकर रहना और अवसर पाकर ही लोकगीत प्राप्त करने के ढग मैंने भाटिया जी से ही सीखे।

इस प्रकार आगरा मे प्राचीन काल से गाये जाने वाले सहस्रो लोकगीतो को सुनकर मैंने लगभग १५०० प्रतिनिधि गीतो को अपने अध्ययन के लिये चुना और इनके आधार पर आगरा की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और अन्य विशेषताओ को समझने का प्रयास किया। इस अध्ययन के आधार पर देश के सांस्कृतिक जीवन मे इन सभी लोकगीतों की मूलभूत एकता या भिन्नता का भी मूल्याकन करने का मैंने प्रयास किया है। इन सकलित गीतो मे आगरा जिले मे गाये जाने वाले लगभग सभी प्रकार के लोकगीत आ गये हैं। **आगरा अति प्राचीन होने के कारण अपना पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्व रखता है। आगरा की ये विशेषताएँ लोकगीतों के माध्यम से समझी जा सकती है।** प्रस्तुत ग्रन्थ मे आगरा की प्राचीन परम्पराओं की पृष्ठभूमि मे ही लोकगीतो का अध्ययन किया गया है। आगरा की समस्त प्रमुख जातियो के प्रतिनिधि गीतो का सग्रह करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। जिले की हिन्दू जातियो मे चमार बहुसख्यक है। इनके बाद ब्राह्मणो का स्थान है। अन्य जातियो मे राजपूत, जाट, बनिया, काछी, कोरी, गडरिया आदि प्रमुख। है हिन्दुओ के बाद मुसलमानो, सिक्खो, ईसाइयो आदि का स्थान आता है। ग्रामीण मुसलमानो का रहन-सहन, खान-पान आदि हिन्दुओ से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इनकी बोली मे भी कोई विशेष अन्तर नही। नगर के मुसलमानो की बोली मे उर्दूपन अवश्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे इस बात पर भी ध्यान देकर ग्रामों तथा नगरो मे प्रचलित लोकगीतो पर विचार किया गया है नगर और कस्बो मे गाये जाने वाले लोकगीत ग्रामीण लोकगीतो से भिन्न दिखायी दे जाते है।

इनके शब्दो मे स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है। मसीही पादरियो के गीत यहाँ अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाये अतः लोकगीतो पर उनका प्रभाव नही के समान है। अंगरेजी भाषा के शब्दों ने अवश्य यहाँ के लोकगीतो को प्रभावित किया है। अंग्रेजी शासन का भी बहुत प्रभाव यहाँ के लोक-जीवन पर पड़ा है। अतः इन प्रभावों को भी प्रस्तुत ग्रन्थ मे दिखाया गया है।

व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन मे जो स्थितियाँ-परिस्थितियाँ आती हैं वे लोक-साहित्य मे भी किसी न किसी रूप मे प्रकट हो जाती है। आगरा जिले की एसी स्थितियो-परिस्थितियो का वर्णन यहाँ के लोकगीतो मे बड़ी स्वाभाविकता, सरलता और सरसता से हुआ है। आगरा जिले के लोगो की लगभग सभी दशाओ के वर्णन करने का प्रयास प्रस्तुत ग्रन्थ मे किया गया है। इन लोकगीतो के सम्बन्ध मे उठने वाली शंकाओ के समाधान हेतु वृद्ध जनो विद्वानो, मूल निवासियो आदि से भी सम्पर्क स्थापित किया गया है।

●

द्वितीय अध्याय

# 1. लोकगीतो की व्यापकता और उनके प्रचार के कारण

## लोक-साहित्य की खोज —

लोक-साहित्य के प्रति रुचि यूरोप मे बहुत पहिले से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। सत्रहवी शताब्दी में जान आब्रे (JOHN AUBREY) नामक लेखक की एक पुस्तक से प्रकट होता है कि लोक-साहित्य के प्रति तीव्र जिज्ञासा विद्वानों में होने लगी थी। आगे चल कर विशप परी (PEREY) और ग्रिम महोदय ने लोक-साहित्य को खोजने और परखने की और ध्यान दिया। कावस, मेक्समूलर, टेलर, फ्रेजर आदि ने इस साहित्य पर विशेष ध्यान देकर इसमे महत्वपूर्ण शोधकार्य किया। धीरे-धीरे यह साहित्य एक वैज्ञानिक रूप धारण करता चला गया और सम्पूर्ण यूरोप मे इसका विशिष्ट अध्ययन होने लगा।

भारत मे यह प्रेरणा-स्रोत यूरोप से उन्नीसवी शताब्दी मे आया। भारत की भिन्न-भिन्न जातियो, यहाँ के रीति-रिवाजो, यहाँ के मेले-त्यौहारो, यहाँ के विवाहोत्सवो आदि ने अग्रेजी शासको मे जिज्ञासा उत्पन्न की। यहाँ के लोक-मानस का अध्ययन करने के लिये उपर्युक्त वातो का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया। अतः भारतीय लोक-साहित्य के शोध-कार्य एवं उसके गम्भीर अध्ययन के प्रयत्न अग्रेजो की ओर से होने लगे। कुछ विद्वानो ने कर्नल टाड को भारत मे लोक-वार्ता का प्रथम संकलनकर्त्ता माना है। "एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज् आफ् राजस्थान" १८२६ ई० मे प्रकाशित हुआ। किन्तु इस ग्रंथ मे राजनीतिक और सामाजिक इतिहास ही अधिक है, साहित्य की खोज बहुत कम। सी० ई० गोव्हर का ग्रन्थ "फोक साग्ज आफ सदर्न इंडिया' सन् १८६२ ई० में प्रकाशित हुआ। यही ग्रंथ भारत में लोक-साहित्य का प्रथम ग्रंथ माना जाना चाहिये। भारत के लोक-गीतो का मुद्रित संकलन यह सर्वप्रथम ही था।

इसके वाद हिन्दी और भारत की अन्य भाषाओ मे लोकगीतो पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। हिन्दी मे तो ऐसे ग्रन्थ वहुत कम लिखे गये किन्तु अन्य भाषाओ मे इनकी संख्या पर्याप्त हैं। १८६६ ई० में हिन्लप के लेखो मे मध्य-भारत की जातियो

का वर्णन मिलता है। इन्होंने कुछ मूल लोक-कथाओं का संकलन भी किया। इसके बाद डा० वेरियर एल्विन के ग्रन्थ 'फोक टेल्स आफ महाकोशल', 'फोक सांग्ज आफ छत्तीसगढ़', 'फोकसांग्ज आफ माइकल हिल', 'सांग्ज आफ दि फारेस्ट', 'मिथ्ज आफ मिडिल इण्डिया', 'दी अगरिया' आदि का प्रकाशन हुआ। १९१२ ई० में, शरत् चन्द्र राय के ग्रंथ 'मुण्डा एण्ड देअर कण्ट्री' का प्रकाशन हुआ।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी कुछ लेख लोक-साहित्य के विषय में प्रकाशित होते रहे। 'जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी', 'इण्डियन ऐंटिक्वेरी', 'नार्थ इण्डिया नोट्स एण्ड क्वेरीज', विहार उडीसा रिसर्च सोसायटी जरनल' आदि में प्रकाशित कुछ निबन्ध बड़े उपयोगी और ज्ञान-वर्धक थे। 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (१९०७-८) की जिल्दों में ग्रियर्सन ने कुछ गीतों के अनुवाद भी प्रकाशित किये और इस प्रकार बीसवीं शताब्दी तक लोक-साहित्य पर शोध-कार्य होता चला आया। हिन्दी की अपेक्षा अहिन्दी क्षेत्रों में यह कार्य अधिक हुआ। हिन्दी के विषय में अधिक ध्यान केवल हिस्लप, एल्विन और आर्चर ने ही दिया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय जनता में अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से एक जागरूकता आयी। भारत में अंग्रेजों के प्रयासों को देखकर यहाँ के लोगों ने भी अपने अतीत को टटोला और उसमें बिखरे रत्नों को संकलित करने का प्रयास किया। ईसाई मिशनरी भी अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिये अनेक प्रादेशिक भाषाओं, उनके अलिखित साहित्य और प्राचीन परिपाटियों का अध्ययन करने लगे। इन प्रयासों ने भारतीय लेखकों और विद्वानों का ध्यान इस क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका ने लोक साहित्य की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। सन् १९१३ ई० में श्री मन्नन द्विवेदी ने गोरखपुर जिले के गीतों का एक छोटा सा संग्रह 'सरवरिया' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। बाकीपुर निवासी लाल खग बहादुर 'मानव' ने भी संभवतः १८८४ में 'सुधा बूँदा' नामक गीतों का एक संग्रह प्रकाशित किया था किन्तु वह संग्रह अभी कहीं देखने में नहीं आया है अतः उपलब्ध प्रकाशित पुस्तकों में श्री मन्नन द्विवेदी की पुस्तक को ही हिन्दी में लोक-साहित्य-संकलन का प्रथम प्रयास कहा जा सकता है।

'सरस्वती' में श्री सतराम बी० ए० ने भी कुछ पंजाबी लोक-गीतों को प्रकाशित किया था और ये गीत सन् १९२५ ई० में 'पंजाबी गीत' के नाम से प्रकाशित भी हुए। सम्भवतः इसी के बाद पं० रामनरेश त्रिपाठी लोक-साहित्य में रुचि लेने लगे और वे पूर्ण लगन के साथ उस ओर अग्रसर भी हुए। 'कविता कौमुदी' (पाँचवाँ भाग) और 'हमारा ग्राम साहित्य' तथा 'मारवाड़ी गीत-संग्रह' पुस्तकें लिखकर त्रिपाठी जी ने हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग को पूर्ण किया।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी लोक-साहित्य के शोध मे कम कार्य नही किया। १९३० ई० से सत्यार्थी जी इस ओर उन्मुख हुए। उन्होने सारे भारत की यात्रा कर गाँव-गाँव घूमते हुए अनेक प्रादेशिक और आचलिक भाषाओ के लोक-गीतो का सग्रह किया।

सन् १९४२ ई० तक लोक-साहित्य के सकलन का प्रथमोत्थान माना जा सकता है। इस समय के मध्य अनेक पत्र-पत्रिकाओ ने लोक-गीतो पर कुछ सुन्दर लेख प्रकाशित किए जिनमे आगे भी शोध-कार्य करने की प्रेरणा थी। श्री सूर्यकरण पारीक के प्रयत्नो से राजस्थानी लोक-गीतो का सकलन होने लगा। किन्तु इस समय तक लेखको का ध्यान केवल गीतो के सकलन तक ही रहा। उनके विवेचन, उनके शास्त्रीय अध्ययन और उनकी विशेषताओ को प्रकट करने की ओर बहुत कम प्रयास हुए।

सन् १९४२ ई० के बाद पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री राहुल साकृत्यायन और श्री शिवदान सिंह चौहान ने लोक-साहित्य की ओर वैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान देने का आग्रह किया। इस द्वितीय उत्थान के समय मे लोक-सस्कृति के अध्ययन और लोक-साहित्य के संकलन की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। इसी सन्दर्भ मे कुछ ऐसी सस्थाओ की भी स्थापना हुई जो लोक-साहित्य के अध्ययन और संकलन की ओर मुख्य रूप से ध्यान देने वाली थी। ब्रज क्षेत्र मे 'ब्रज साहित्य मडल', गढवाल मे 'गढवाली साहित्य-परिषद्' बघेलखन्ड मे 'रघुराज साहित्य परिषद्', बुन्देलखण्ड मे 'लोक-वार्ता साहित्य परिषद्', राजस्थान मे 'भारतीय लोक-कला मण्डल', मालवा मे 'मालव लोक-साहित्य परिषद्', तथा भोजपुरी क्षेत्र मे 'भोजपुरी लोक-साहित्य परिषद् आदि की स्थापना कर लोक-साहित्य के अध्ययन, संकलन, प्रचार और प्रसार के कार्य किये जाने लगे। इन संस्थाओ के अन्तर्गत अब तक अनेक लोक-गीत सकलित किये जा चुके है, उनके शास्त्रीय अनुशीलन का कार्य हुआ है, लोक-गीतो पर शोधपूर्ण निबन्ध और प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं, लोक-कथाओ के सकलन प्रकाशित हुए हैं। लोकोक्तियो और कहावतो का संग्रह हुआ है, लोक-वार्ता से सम्बन्धित अनेक पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन हुआ है और व्यक्तिगत रूप से भी कुछ लेखक लोक-वार्ता के विभिन्न कार्यो मे लगे हुए है। प्रादेशिक सरकारो ने भी इस ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। विभिन्न क्षेत्रो के लोक-साहित्य के सग्रह सरकारो की ओर से प्रकाशित हो रहे है। उत्तर प्रदेश सरकार ने 'लोक-साहित्य समिति' के नाम से एक सस्था स्थापित की है। इस समिति द्वारा उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो के लोक-साहित्य का सग्रह किया जा रहा है।

हिन्दी मे लोक-कथाओ का संकलन लोक-गीतो की अपेक्षा कम हुआ है। कुछ विदेशी लेखको ने भारतीय लोक-कथाओ पर जो लेख लिखे और पुस्तके प्रकाशित

भी वे भारतीय दृष्टिकोण और उसके वास्तविक जीवन को प्रस्तुत करने मे असमर्थ है। उनमे मनोरंजन और औत्सुक्य की प्रधानता है, वास्तविकता की नही। लोक-साहित्य के विषय मे सही सही बाते वही व्यक्ति लिख सकता है जो उस क्षेत्र के जन-जीवन से पूर्णतः परिचित हो, जो वहाँ की बोलियो, उच्चारणो और निवासियो की आत्मा से निकट का सम्बन्ध रखता हो। प० शिवसहाय चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्ड की लोक कथाओ को इसीलिए सही रूप मे प्रस्तुत किया है क्योकि वे वहाँ के जीवन मे घुले-मिले है। इसी प्रकार राजस्थानी और मालवी लोक-कथाओ के सग्रह सुन्दर, वास्तविक रूप प्रकट करने वाले और उपयोगी है।

लोक-साहित्य सम्बन्धी वैज्ञानिक अध्ययन करने वालो मे डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० सत्येन्द्र और श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के नाम प्रमुख है। श्री राहुल सकृात्यायन का अपने फुटकर लेखो द्वारा इस ओर निर्देशन उपयोगी है।

पत्र- पत्रिकाओ मे टीकमगढ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'मधुकर', मथुरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'ब्रज भारती' और टीकमगढ से ही प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'लोक-वार्ता' का काय लोक साहित्य के प्रचार, प्रसार और परिष्कार के लिए प्रशंसनीय रहा है। राजस्थान से प्रकाशित 'शोध पत्रिका' और 'राजस्थान भारती' तथा हिन्दी जनपद परिषद् से प्रकाशित 'जनपद' ने भी वैज्ञानिक और परिपक्व सामग्री दे कर लोक-साहित्य की पर्याप्त सेवा की है। अन्य पत्र-पत्रिकाओ मे भी समय-समय पर लोक-साहित्य पर विद्वत्तापूर्ण लेख और विचार प्रकाशित होते रहे है। इनमे 'नया समाज', 'हम', सरस्वती', 'विक्रम', 'कल्पना', 'अजन्ता', 'राष्ट्र-भारती', 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', 'हिन्दुस्तानी एकेडमी पत्रिका', 'आलोचना', 'अवन्तिका', और पाटल' आदि के नाम लिये जा सकते है।

## लोक-साहित्य के निर्माण और प्रचार में महिलाओं का सहयोग—

भारतीय लोक साहित्य के निर्माण मे पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ का हाथ अधिक रहा है। महिलाओ का यह साहित्य वर्षो से अलिखित चला आरहा है। उनमे स्थान, समय और कण्ठ के परिवर्तनो के कारण हेर-फेर होते रहे हैं। युग-युग से चले आ रहे रीति-रिवाजो, संस्कारो, त्योहारो, विवाहो और पूजाओ मे गाये जाने वाले गीतो और सुनाई जाने वाली कथाओ को अब तक मौलिक रूप मे सुरक्षित रखने का श्रेय महिलाओ को ही अधिक दिया जा सकता है। स्त्री-शिक्षा ने जहाँ अनेक लाभ दिये है वहाँ सबसे बडी हानि यह है कि शिक्षित नारी अपनी परम्पराओ को भूलती जा रही है। उसे मिल्टन के 'सानेट्स' और गोल्डस्मिथ के 'बैलेड्स' तो याद है किन्तु अपनी संस्कृति और जातीयता के प्रतीक लोक-गीत उसे अब याद नही। ये लोक गीत आज भी ग्रामो मे महिलाओ द्वारा मुक्त कण्ठ से गाये जाते है।

इन गीतो के लिखने वाली नारियों का कोई नाम नही। ये स्वत ही सामूहिक कार्यो मे उत्पन्न होते चले गए है। ये लोक-गीत श्रवण-परम्परा के आश्रय से हो आगे बढने आये है।

मराठी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती कमला बाई देशपाण्डे ने अपनी पुस्तक 'अपौरुपेय वाङ्मय' मे महिलाओ द्वारा गाए जाने वाले गीतो को अपौरुपेय वाङ्मय की श्रेणी मे रखा है। ये गीत केवल महिलाओ द्वारा ही गाये गए हैं और उन्होने इनका सजन भी किया है। महिलाओ ने अपनी वृत्तियो के अनुरूप, सहज स्फूर्तिवश अनुष्ठानिक, औपचारिक एव मनोरजनार्थ ही इन गीतो का सजन किया हैं। इन गीतो मे नारी की वेदना, हर्ष, विषाद, आनन्द, उद्वेग, उत्साह, सयोग, वियोग, प्रताड़ना, घृणा और ग्लानि आदि की भावनाओ की झलकें मिलती है।

श्रीमती कमलाबाई ने इस स्त्री-साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित दो रूपो मे किया है:—
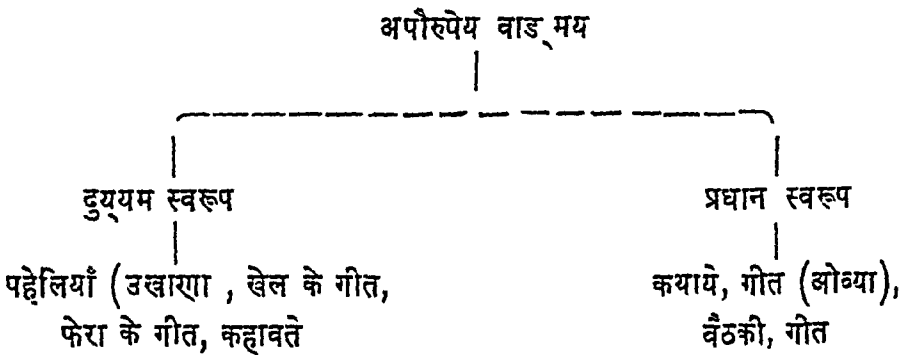
गद्य और पद्य की दृष्टि से वर्गीकरण निम्नलिखित किया गया है:—
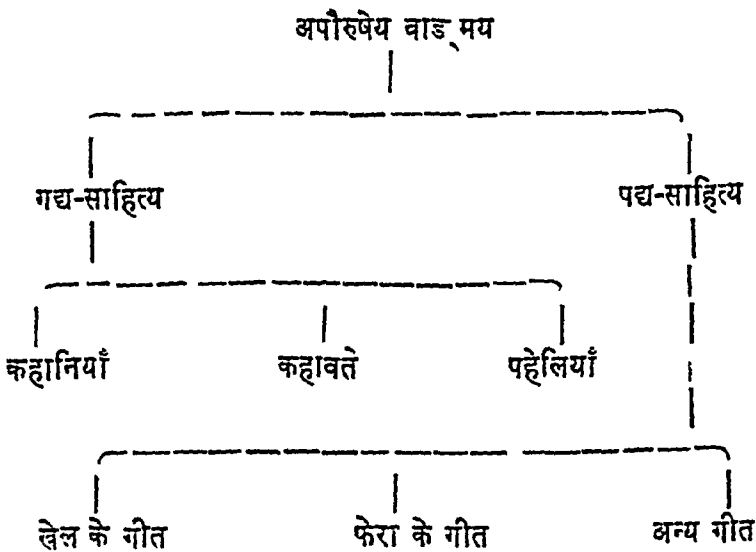
मध्यकालीन भारत के सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति यद्यपि शोचनीय और दयनीय ही अधिक रही है किन्तु लोक-साहित्य के क्षेत्र में वह पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रमुख और प्रभावशाली रही है। स्त्रियों के गीत हर समय पर गाए जाते हैं। सोहर, सोहिलो, जच्चा, पलना, ललना, लोरियाँ जात के गीत, सावन के गीत, झूलने, चाचरी सम्मरि, ममदा उली, झूमर, छठ के गीत, देवी-देवताओं के स्तुति-गीत, व्रत-उपवास और त्योहारों के गीत, पति-पत्नी के प्रेम सम्बन्धी गीत, पनिहारिन, भाई-बहन के गीत, बालिकाओं के घुडले, गोगो, संजा (मालवा), घडल्या, साँझी, झाँझी आदि के असंख्य गीत हमारे देश भर में गाये जाते हैं। ये गीत रीति-रिवाजों या त्यौहारों के आधार पर कुछ बदलते हुए चलते हैं किन्तु इनकी आत्मा एक ही होती है। सास-ननद के शब्द-बाणों से घायल, पति से तिरस्कृत, बेटे की दबैल और वृद्धावस्था में उपेक्षित नारी अपने समय-समय के भावों को गीतों में प्रकट कर चुकी है। इन गीतों का अध्ययन मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, पारिवारिक, और साहित्यिक दृष्टि से करना उपयोगी होगा।

अधिकाश गीतों का जन्म घरों में ही हुआ। चक्की पीसते, झाडू लगाते, बर्तन मांजते कपड़े धोते, रोटी पकाते, हंसते-रोते और कभी कभी खिलखिलाते हुए इन गीतों की रचना हुई है। अपने खाली समय में स्त्रियाँ गीत जोड़ा करती हैं। कोई टेक गुनगुनाती है तो कोई अन्तरा बनाती है। ये सामूहिक प्रयास हैं। वैसे व्यक्तिगत रूप से भी स्त्रियाँ गीत बनाती रहती हैं किन्तु यह जानना कठिन हो जाता है कि अमुक गीत किस स्त्री ने बनाया।

गीतों के कथानक या उनमें आने वाले नामों आदि से कभी-कभी पता लग जाता है कि ये गीत कब आरम्भ हुए होंगे। रेलगाडी, चीलड़ी (वायुयान), नए गहनों, खादी, गाँधी, नेहरू, विक्टोरिया, अंग्रेजी राज, नये स्थानों के नामों, नई वस्तुओं के नामों आदि से गीतों के काल का अनुमान लगाया जा सकता है। 'जवानी मरर-मरर मर्राय कि जैसे अंग्रेजन को राज' गीत से विदित होता है कि यह गीत अंग्रेजी शासन-काल में आरम्भ हुआ। कभी कभी पुराने समय से चले आते गीतों में नये-नये शब्द आ जाते हैं किन्तु इससे इन गीतों की प्राचीनता नष्ट नहीं होती। किसी नायक का नाम गीतों के बीच में आ जाने से भी गीतों का समय विदित हो सकता है। मँहगाई के गीतों से समय का अनुमान लगाया जा सकता है। तिथियों के गीत भी काल-निर्णय में सहायक हो सकते हैं।

## लोकगीतों में नादयुक्त रचना का महत्व—

स्वभावतः मनुष्य में नादप्रियता रहती है। इसीलिए यह माना जा सकता है कि नादपूर्ण शब्द-रचना की प्रथम स्थिति मनुष्य में स्वतः ही आयी होगी। किसी

बात को विशेष ढग से कहने की समझ मनुष्य मे बाद को आई होगी। नाद से नाद और अर्थ का सहयोग हुआ। अर्थ के साथ नाद के मिलने से नाद का महत्व बढा। कभी कभी बिना किसी अर्थ के भी नाद प्रमुख बन जाया करता है। नाद और अर्थ का संघर्ष अनेक बार हुआ है किन्तु विजय अर्थ की ही हुई है। पहले नादयुक्त शब्दों का प्रचलन बहुत था। जैसे.—

अक्कड, बक्कड़, बम्बे भो।
अस्सी नब्बे पूरे सौ॥

यहाँ प्रथम पक्ति केवल नाद पर आधारित है। इसका कोई अर्थ नहीं निकलता। बच्चो के गीत बहुधा नादयुक्त शब्दों से युक्त होते हैं। जैसे चोर-चोर के खेल मे बच्चे एक घेरा बनाकर खड़े होते हैं और उनमे से एक बालक प्रत्येक की ओर इ गित करता हुआ कहता जाता है :—

ई क-सीक-ताली-तुक्का।
चिलम-तमाखू जे हुक्का॥

'हुक्का' शब्द जिस बालक पर समाप्त होता है वह साहूकार बन कर अलग हट जाता है। अंत मे दो बालक रह जाते हैं और उनमें से 'हुक्का' पर आने वाला बालक साहूकार तथा दूसरा चोर कहलाता है। बिना अर्थों वाले शब्दों के आधार पर ही यह खेल आरम्भ होता है। यह अर्थहीनता गीत की प्रथमावस्था की द्योतक है। धीरे-धीरे दूसरी पक्ति मे अर्थ की संगति आने लगी किन्तु प्रथम पक्ति फिर भी अर्थ-हीन ही रही। यह प्रथम पंक्ति की अर्थहीनता भी धीरे-धीरे हटती गयी और अब लोकगीत अपने पूरे अर्थों के साथ आने लगे। अब गीतों मे इस बात का विशेष ध्यान रखा जाने लगा कि एक सार्थक पंक्ति के बाद दूसरी पक्ति भी सार्थक हो। इन गीतों की प्रथम पक्ति बहुधा टेक का कार्य करती है। आगे की पक्तियां इसी टेक के सहारे चलती हैं। यह टेक एक प्रकार से 'स्थायी' का कार्य करती है और आगे की पक्तियां 'अन्तरा' जैसी होती हैं।

लोरियो मे अर्थ प्रमुख रहता है। धुन या टेक का प्रयोग केवल प्रभाव लिये ही होता है। स्त्रियो के गीतो मे वस्तुओ के नाम दुहराने, व्यक्तियो के सम्बन्धों का उल्लेख करने और स्थानों के नाम बोलने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। जैसे ससुर से आरम्भ कर जेठ, देवर और पति तक का उल्लेख। गीतो मे छोटी-छोटी घटनाओं या गाथाओं का भी उल्लेख होता रहता है। टेसू, झांझी और सान्झी के गीतो मे छोटी-छोटी कहानियाँ रहती हैं।

जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे नारी के कण्ठ से अपने भावों और अभावो के जो उद्गार प्रस्फुटित हुए हैं वे उसकी उमंग, चंचलता, मुग्धता, हास्य-

प्रियता, शृंगारप्रियता अथवा वेदना, राग-द्वेष, घृणा, कुढ़न आदि को प्रकट करते हैं। यदि कविता कवि के मानस को प्रतिविम्बित करती है तो लोकगीत समाज के घात-प्रतिघातों का सच्चा रूप व्यक्त करते हैं।

भारतीय नारी के अनेक चित्र भारतीय लोकगीतों में मिलते हैं किन्तु कुछ विशिष्ट चित्र तो सदैव ही आकर्षक रहे हैं। नारी एक ओर अत्यधिक भावुक, चतुर गृहिणी, स्नेहयुक्त सास, आज्ञाकारिणी पत्नी, मुग्धा नायिका और सच्ची प्रेमिका है तो दूसरी ओर वह कुलटा, फूहड़, कर्कशा कठोर-हृदयहीन सास, चुगलखोर ननद और चरित्र-हीन भावज भी है। कभी नारी दुष्टा सौतेली मां बनकर आती है, कभी ईर्ष्यायुक्त सौत के रूप में दिखायी देती है और कभी चिड़चिड़ी जिठानी बनकर आती है। बहुओं और बेटियों के अलग-अलग चित्र दिखायी देते हैं। जहाँ बेटियाँ लाड़-प्यार में पलती दिखाई देतीं हैं वहाँ बहुएं अभावों, घुटन और पीड़ा में कराहती प्रतीत होती हैं। बेटियाँ अपनी ससुराल लौट कर जाना नहीं चाहतीं और बहुएं पीहर जाने को तरसती रहतीं हैं। कहीं-कहीं स्थितियाँ उल्टी होतीं हैं। बेटी पीहर में भौजाई से दुःखी है तो सास भी अपनी बहू के शासन में तड़पती रहती है। सास-बहू, ननद-भौजाई, देवरानी-जिठानी के झगड़े तो नित्य के कर्म हैं। लोकगीतों में बहुधा सास को कर्कशा, कठोर और शुष्क दिखाया गया है। अपनी सास से दुःखी हो सावन में बहू तभी तो गा उठती है :—

अब के बरस भेज भैया को बाबुल,  
सावन में लीजो बुलाय रे।

और उधर बेटियाँ नीम की डाल में झूले डाल कर गा उठती हैं :—

कच्ची नीम की निबौरी सावन कब आवैगो,  
बाबा दूर मती दीजो हमकूँ कौन बुलावैगो।  
बेटी पास ही तोय देंगे, तोकूं हम्हीं बुलावैंगे,  
कच्ची नीम की.........................................

बेटी अधिक दूर की ससुराल पसंद नहीं करती। उसे भय होता है कि अगर वहाँ कष्ट हुआ, वहाँ मन उकताया तो दूर होने के कारण संभवतः वह शीघ्र अपने पीहर न आ सकेगी। तभी तो दूर विवाह होने पर वह नाई से क्रोध में कहती है :—

(चौंरे) क्योंरे नऊआ पेट कटऊआ क्यों (चों) दीनी परदेस जी  
कहा करूं जिजमान की बेटी करम लिखा परदेस जी  
चिट्ठी होय तो बाँच लेउ पै करम न बांचौ जाय जी

ससुराल में दुःख उठाती बहिन पीहर जाने की इच्छा में भाई की प्रतीक्षा कर रही है। वह छज्जे पर कौआ बैठा देख कर कह उठती है :—

हमारो वीरन जो आवै तो कौआ उडि जइयो,
हमारो भैया जो आवै तो कौआ उडि जइयो ।

दूध-भात भैया कू खवाऊं,
लड्डुन के मैं भोग लगाऊँ ।
तेरी सोने चोंच मढाऊँगी, कौआ उड़ि जइयो ।

कभी-कभी नानी के घर भी लड़की को बडी निराशा होती है । उसके पिता को तो जवाँई राजा के रूप मे खूब सम्मानित किया जाता है, उसे बढिया-बढिया भोजन मिलते हैं किन्तु बेचारी लडकी को कुछ नही । तभी तो वह झुंझला कर कहती है :—

अब कबहुँ न जाऊँगी नानी कै, मैं कबहुं न··· ······
बाबुल को दई खीर-मलाई ;
हमे बताय दई रोटरिया ,
अब कबहुँ न जाऊँगी नानी कै ।
बाबुल सोवै चौबारे पै ;
हमैं बलाय दई कोठरिया ,
अब कबहु न जाऊँगी नानी कै ।
बाबुल जामै बाग-बगीचे ;
हमैं बताय दई पोखरिया ;
अब कबहुँ न जाऊँगी नानी कै ।

नारी का गौरव-पूर्ण रूप भी लोक-गीतो मे कम नही मिलता । सती-साध्वी और पतिव्रता स्त्रियो की प्रशसा के अनेक गीत गावो मे मिलते है । राजस्थान और उसके आस पास गनगौर के गीत सती नारी की प्रशसा मे ही हैं । मालवी मे सती के विषय मे एक बहुत सुन्दर लोकगीत मिलता है :—

सायब को डोला
माया ने भम्मर घडावो रे सेवम[1] म्हारा
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो
चन्दण नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो
सायब से छेटी[2] मती पाडो रे सेवम म्हारा

---

१ परिजन ।
२. वियोग ।

सायव को डोलो चन्दण नीचे ऊवो
वइय्यन[1] ये चुड़लो चिरावो[2] रे सेवम म्हारा
सायव को डोलो०
झबिया रतन जड़ावो रे सेवम म्हारा
सायव को डोलो०
पगल्या नेवर घड़ावो रे सेवम म्हारा
सायव को डोलो०
अंगगे ने सालूड़ों रंगावो रे सेवम म्हारा
सायव को डोलो चन्दण नीचे ऊवो·······
सतियारा डेरा हुवावाग में कणियत सेवा हिंगलाज
वावड़ लोने बीड़ो पान को·······
कणियत मैत्या सासू-सूसरा, ये म्हारी सतियार
कणियत मैत्या भायन-वाप, हो मोटा का जाया
वावड़ लौने बीड़ो पान को ······

ऐसी महान् सती लोगों की दृष्टि में देवी बन जाती है। उसकी प्रशंसा करते हुए लोग अघाते नहीं। वे कहते हैं :—

म्हारी सती माता कां से दल-बादल उलट्या[3]
म्हारी सती माता कां य तो दियो हे मेलाण[4]
ओ राजा की राणी उगता सूरज पे माजी सत कर्या
म्हारी सती माता मलाखा[5] से दल बादल उलट्या
म्हारी सती माता सिन्दरसी में दियो है मेलाण
राजा की राणी आपका सायव[6] पे माजी सत कर्या

आगरा के गांवों में भी सती की प्रशंसा के अनेक गीत प्रचलित हैं। एक गीत है :—

---

१. सुहागनें।
२. जूड़ा तैयार करो।
३. उलटा।
४, मुकाम।
५. रानी के पीहर का स्थान।
६. स्वामी, प्रियतम।

कर सोरह सिंगार चली सतवती नारी।
माग भरी सिंदूर सुहावै, पायल छम-छम करती जावै।
क्यों बिछुरैगो भरतार, चली सतवती नारी।

पीतम के सग चली सुहानी, बिंदिया माथे पै मुस्कानी।
निकरी तारी तें आग, चली सतवंती नारी॥
बालम के संग सुरपुर जावै, जुग-जुग सती सुहागिन भावै
सब पूजे सीस नवाय, चली सतवती नारी॥

## २. लोकगीतों का मूलाधार—

लोक-गीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विकास के इतिहास प्रकट करने वाले होते है। ये किसी भी देश की अमूल्य निधि कहे जा सकते है। लोक-गीत का जन्म स्वाभाविक ही कहा जायेगा। इसके जन्म की तिथि या काल के विषय मे कल्पना से ही काम लेना पडेगा। यह कहा जा सकता है कि आदि-मानव के कण्ठ से जो विकृत भाव किसी अवसर पर प्रस्फुटित हुए होगे वही धीरे धीरे गीत का रूप ले बैठे। सैकडों-हजारो वर्षो तक सरिता की धारा की भाँति ये गीत जन-जीवन में प्रवाहित होते रहे, इनमे हेर-फेर हुए, इनमे नए-नए विचार आये और वे पुरानों से मिलने चले गए किन्तु इनकी गति मे व्यतिक्रम नही पडा। स्त्री-पुरुषो की समय-समय पर आने वाली मनः स्थितियो ने इनमे अपने प्रभाव के पुट दिए हैं। खेतो की हरियाली, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार और वासती सुषमा ने इनमे थिरकन, सिहरन और तडपन भरी है। इनकी लय मे बालक सोये और जागे है, इनकी तान पर यौवन गदराया और मस्ताया है, इनकी टेक पर स्त्रियाँ नाच-नाच उठी है, इनकी गति पर पथिक के पाँव आगे बढ़े है, इसकी गूँज पर विरही युवक का मन-कसक उठा है , इनके प्रवाह मे भोली, अल्हड नवयौवना का मन बह गया है, इनकी स्वर-लहरी पर विरहिणियाँ मन ममोप कर रह गी है, इनके शब्दो से वृद्धो ने मन बहलाये हैं, इनकी तानो पर वैरागी मे वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इनकी तालो पर मजदूरो के फाँवड़े और किसानो के हल चले है, इनकी सरलता पर बालको के समूह खिल-खिल गये हैं। ये धरती के स्वाभाविक बोल है, ये वायु के उन्मुक्त झोके है, ये समुद्र के शक्तिशाली ज्वार हैं, ये नदी के वेगयुक्त प्रवाह है, ये चाँद की शीलता, सूर्य की तेजस्विता और तारो की स्वप्निल छाँह लिये हुए हैं।

राल्फ विलियम्स ने लिखा है —

"ए फ़ोक सौग इज नाइदर न्यू नौर ओल्ड, इट इज़ लाइक ए फोरेस्ट ट्री विद इट्स रूट्स डीपली बरीड इन द पास्ट, बट विच कन्टीन्यूअली पुट्स फोर्थ न्यू ब्राचेज़, न्यू लीव्स, न्यू फ्रूट"

(लोक गीत न तो नया ही है और न पुराना ही। वह तो जगल के उस वृक्ष की भाँति है जिसकी जडे अतीत काल मे गढी हुई है, किन्तु जिसमे अविराम गति से नई टहनियों, नये पक्षियो और नये फलो की उत्पत्ति होती है।)

यही कारण है कि विभिन्न देशो, प्रदेशो, जातियों और वर्गों मे गाए जाने वाले गीत अपने भावो मे समन्वय सा किये हुए है। लोकगीत प्रकृति के उद्गार होते है। इनमे सरसता, सरलता, मधुरता और लय स्वाभाविक गुण है। इनमे करुणा, हास्य, शृगार और वीरता का समावेश रहता है। ये वने है, विगडे, मिटे है किन्तु फिर उत्पन्न हुए है। जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन इन गीतो मे भरा पडा है। सोहर, जच्चा, वन्ना-वन्नी, हल्दी, तेल, जनेऊ, परदेश-गमन, आगमन, ज्यौनार, आदि से लेकर मृत्यु तक पर गाए जाने वाले लोकगीत इधर-उधर विखरे पडे है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) है। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग मे श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यो की महान जाति के गीत ही थे और ग्राम गीतो की भाति ही सुन-सुनकर याद किए जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने वाद मे श्रुति से उतर कर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्रामगीत अव भी 'श्रुति' ही है। जिस प्रकार वेदो द्वारा आर्य-सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्रामगीतो द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान हो सकता है। ईट, पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझे, तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम गीत का महत्त्व 'मोहेन-जोदडो' से कही अधिक है। मोहेन-जोदडो सरीखे भग्न-स्तूप ग्रामगीतो के भाष्य का काम दे सकते है।

लाला लाजपतराय का कथन है कि—"देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतो से ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की वात होगी"।[१]

लोकगीत की व्याख्या करते हुए मराठी के श्रेष्ठ लेखक डा० सदाशिव फडके का कथन है—"शास्त्रीय नियमो की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग मे लाने के लिए मानव अपनी आनन्द-तरग मे जो छन्दोवद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है।"

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'मीट माई पीपुल' मे लिखा है—इट्स (फोक सौंग्स) सीड लाइज इन कम्युनिटी सिंगिंग (लोकगीत का वीज सामूहिक-गायन मे रहता है)।

---

१. कविता कौमुदी, भाग ५, पृष्ठ ७७ (श्री रामनरेश त्रिपाठी)।
२. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक)।

'ए स्टडी आफ ओरिसन फोकलोर' मे श्री कुंज विहारीदास ने लिखा है— ए फोक-सोग इज ए स्पौनटेनियस आउट-फ्लो आफ लाइफ आफ द पीपुल दैट लिव इन मोर आर लैस प्रिमिटिव कन्डीशन आउट साइड द स्फयिर आफ सोफीसटिकेटड इनफ्लूअन्स।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० यदुनाथ सरकार ने लोकगीत की विशेपतायें प्रकट करते हुए लिखा है—

"रैपिडिटी आफ मूवमेन्ट, सिम्पलीसिटी आफ डिवगन, प्राइमरी एमोशन्स आफ यूनीवर्सल अपील, एक्शन रादर दैन सविल एनालाइसिस, ब्रौड स्ट्राइकिंग करेक्टराइजेशन, 'थम्ब-नेल स्कैचेज' आफ बैकग्राउन्ड एण्ड दि स्पैअरैस्ट यूज (आर रादर कम्पलीट एवायडैन्स) आफ लिटरेरी आर्टीफाइसेज-दीज आर द असैनशियल रिक्यूजिट्स आफ द ट्रू वैलड"।

लोकगीतो के प्रमुख लक्षण साधारणत निम्नलिखित माने जाते है—

१ अन्त्यानुप्रास के वदले ध्वनि-साम्य।

२ पुनरुक्ति।

३ तीन, पाँच, सात आदि सख्याओ का वार-वार प्रयोग।

४ दैनिक प्रयोग की साधारण सी वस्तुओ को सोने-चाँदी की कहना।

भारत के लोकगीतो मे उपर्युक्त लक्षणो के अतिरिक्त कुछ और भी लक्षण पाये जाते है। जैसे—

१ **नाम जोड़ना**—गहनो के नाम, कुटुम्बियो के नाम, मिठाइयो के नाम, वस्त्रो के नाम, नगरो के नाम, देवी-देवताओ के नाम आदि।

२. **प्रतीक्षा**—यह परम्परा वडी पुरानी है। किसी ऊँची अटारी, वृक्ष, टीले आदि पर चढकर अपने आने वाले किसी प्रिय की बाट देखना वहुत पहिले से प्रचलित है।

३ **प्रश्नोत्तर**—सीधे-साधे प्रश्नो और उत्तरो को गीतो मे प्रयुक्त कर वस्तु-स्थिति स्पष्ट की जाती है।

४. **सख्या**—तीन, चार, पाँच, सात, नौ, वत्तीस और छत्तीस के साथ सौ तथा हजार की सख्यायो के प्रयोग भी मिलते है।

## ३. समस्त संकलित लोकगीतों का वर्गीकरण—

लोकगीतो की परम्पराओ के आधार पर हम अव आगरा जिले के लोकगीतो का अध्ययन आरम्भ कर यह देखने का प्रयास करेंगे कि आगरा के लोकगीतो मे किन किन स्थितियो-परिस्थितियो के चित्र मिलते है, यहाँ के विभिन्न रीति-रिवाजो, मेलो-

त्यौहारो, विभिन्न ऋतुओ, विभिन्न समुदायो और विभिन्न स्थानो मे गाए जाने वाले लोकगीत अपने अन्दर कौनसी विशेषतायें लिए रहते है। इन लोकगीतो की आत्मा देश के अन्य स्थानो के लोकगीतो की आत्मा से किसी-न-किसी प्रकार जुडी हुई अवश्य है। यही कारण है कि भाषा और बोली मे भिन्नता होते हुए भी कुछ प्रदेशो के लोकगीत उत्तर-प्रदेश, ब्रज-भाषा प्रदेश और आगरा जिले के लोकगीतो से बहुत मिलते है। सोहर, जनेऊ, विवाह, पूजा-पाठ, बारहमासे, ऋतु-वर्णन, सामाजिक एव गार्हस्थ्य-जीवन आदि से सम्बन्धित अनेक लोकगीत एक दूसरे के बहुत निकट है, कही-कही तो एकसे ही है। इतना होने पर भी ब्रज-भूमि मे होने से आगरा मे जो एक मधुरता मादकता और मुग्धता है वह अन्य कही नही दिखाई देगी। ब्रज-मण्डल भगवान कृष्ण की लीला भूमि है। आगरा ब्रज-मण्डल का प्रमुख अग है अत आगरा मे कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित जो लोकगीत मिलेगे उनकी लोच अपना पृथक महत्व रखती है। यहाँ श्री कृष्ण और उनकी लीलाओ के माध्यम से लोकजीवन की झाकियाँ लोकगीतो मे प्रस्तुत की जाती है। पुत्र-जन्म पर कृष्ण जन्म के गीत गाए जाते है, प्यार के गीतो के नायक भी श्रीकृष्ण ही होते है, छेड-छाड की बाते श्रीकृष्ण ही करते है और होली खेलने मे तो श्रीकृष्ण से अधिक चतुर-सुजान कोई है ही नही। श्रीकृष्ण आगरे के लोकगीतो के मेरुदन्ड है।

लोकगीतो के वर्गीकरण के लिए हमे ऋतुओ, उत्सवो, मेलो, सस्कारो, पारिवारिक सम्बन्धो और व्यवहारो आदि पर ध्यान देना चाहिये। हमारे जीवन मे ऐसी अनेक स्थितियाँ आती है जब हम आनन्द मे झूम-झूम उठते है, जब हम अकेले या मिलकर गीत गाने को उतावले हो जाते है। जब सावन की घटाये हमारी भावनाये जागृत कर देती है, जब होली के रग हमारे मन मे रगीनी भर देते है, जब विवाह के अवसर पर बधाइयो और हास-परिहास की इच्छा उत्पन्न हो जाती है और जब किसी रूप पर मुग्ध होकर मन सरस एव मधुर हो उठता है तो ऐसे अवसरो पर जो गीत निस्रत होने लगते है वे अपने पृथक अस्तित्व और महत्त्व लिए हुए होते है। इन गीतो को विभिन्न वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। कुछ विद्वानो ने इन लोकगीतो का वर्गीकरण अपने-अपने ढग से किया है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन लोकगीतो का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया है[1]—

१ सस्कारो की दृष्टि से।
२ रसानुभूति की प्रणाली से।
३ ऋतुओ और व्रतो के क्रम से।
४. विभिन्न जातियो के प्रकार से।
५ क्रिया-गीत की दृष्टि से।

---

१. लोक साहित्य की भूमिका, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ २६, २७

डा० उपाध्याय ने लोकगीतो के वर्गीकरण को निम्नलिखित तालिका द्वारा और अधिक स्पष्ट किया है :—
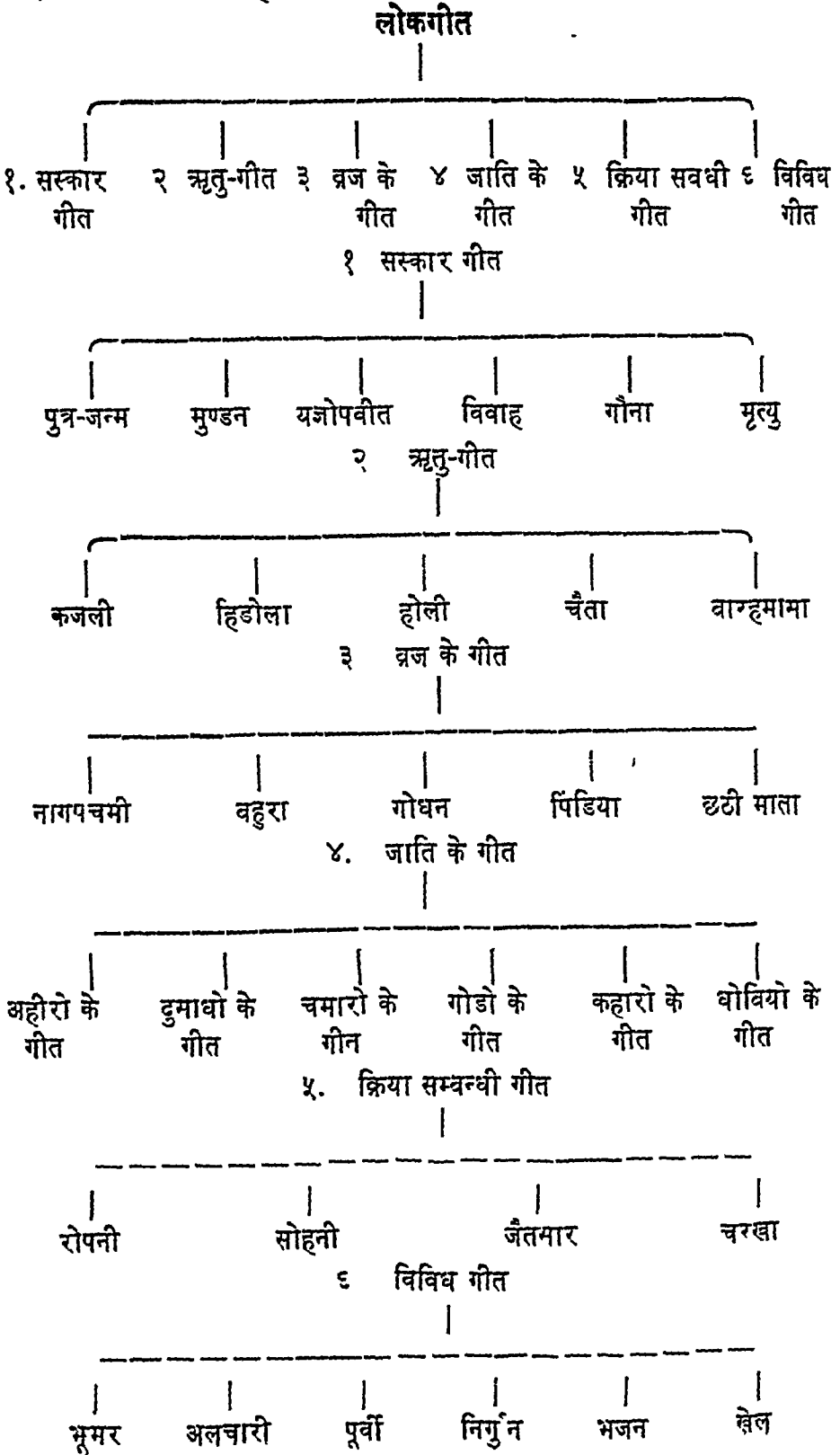
श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-साहित्य (ग्राम-साहित्य) को निम्नलिखित २८ वर्गो मे विभक्त किया है :—

१ सस्कारो के गीत ।
२ व्रतो और त्यौहारो के गीत ।
३ ग्राम-गाथाये ।
४ ग्राम-कथाये ।
५ मन्दिरो मे गाये जाने वाले पद ।
६. राह के गीत ।
७ खेत के गीत ।
८ भिखमगो के गीत ।
९ भिन्न-भिन्न जातियो के गीत ।
१० कोल्हू के गीत ।
११ चक्की के गीत ।
१२ ऋतुओ के गीत ।
१३ बच्चो के गीत, खेल और कहानियाँ ।
१४ गाँव मे मनोरजन के साधन—मेले और तमाशे ।
१५ गाँव के खेल ।
१६ गुडियो के गीत ।
१७ ग्राम-सगीत (नाच और गीत) ।
१८. नाच और उसके तरीके ।
१९. बाजे और उनके उपयोग ।
२० नीति की कहावते ।
२१. स्वास्थ्य की कहावते ।
२२ खेती की कहावते ।
२३ बुझौवल और ढकोसले ।
२४ बारहमासे ।
२५ नये-नये शब्द और मुहावरे ।
२६. मनुष्य और पशुओ के रोगो के नुस्खे ।
२७ पेशेवरो के शब्द ।
२८ जड़ी बूटियो की पहचान और उनके उपयोग ।

त्रिपाठी जी ने लोकगीतों (ग्रामगीतों) का वर्गीकरण निम्नलिखित ११ श्रेणियों में किया है[1] :—

१. संस्कार सम्बन्धी गीत।
२. चक्की और चरखे के गीत।
३. धर्मगीत
४. ऋतु सम्बन्धी गीत।
५. खेती।
६. भिखमंगी।
७. मेले के गीत।
८. जाति के गीत।
९. वीर गाथा।
१०. गीत कथा।
११. अनुभव के वचन।

राजस्थानी लोकगीतों के विद्वान संग्रहकर्त्ता तथा समालोचक पं० सूर्यकरण पारीक ने लोकगीतों को उन्तीस भागों में विभाजित किया है[2] :—

१. देवी-देवताओं और पितरों के गीत।
२. ऋतुओं के गीत।
३. तीर्थों के गीत।
४. व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत।
५. संस्कारों के गीत।
६. विवाह के गीत।
७. भाई-बहिन के प्रेम के गीत।
८. साली-सलहज के गीत।
९. पति-पत्नी के प्रेम के गीत।
१०. पनिहारियों के गीत।
११. प्रेम के गीत।
१२. चक्की पीसते समय के गीत।
१३. बालिकाओं के गीत।
१४. चरखे के गीत।

---

१. कविता कौमुदी, भाग ५, पृष्ठ ४५।
२. राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ २२-२५ (पारीक)।

१५ प्रभाती गीत।
१६ हरजस—राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत।
१७ धमाले—हौली के अवसर पर पुरुषो द्वारा गेय गीत।
१८ देश-प्रेम के गीत।
१९ राजकीय गीत।
२०. राज-दरवार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत।
२१ जम्मे के गीत—वीरो, सिद्ध पुरुषो, महात्माओ की स्मृति मे रखे गये जागरण को 'जम्मा' कहते है।
२२ सिद्ध पुरुषो के गीत।
२३ (क) वीरो के गीत।
(ख) ऐतिहासिक गीत।
२४. (क) गवालो के गीत।
(ख) हास्यरस के गीत।
२५ पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत।
२६ शान्तरस के गीत।
२७ गाँवो के गीत (ग्राम-गीत)।
२८ नाट्य गीत।
२९ विविध

श्री श्याम परमार ने श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव द्वारा प्रतिपादित लोक-गीतो के भेदो का उल्लेख करते हुए उनकी चार श्रेणियो को बताया है[1]—

१ सस्कार विषयक गीत।
२ माहवारी गीत।
३ सामाजिक ऐतिहासिक गीत।
४ विविध।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे आगरा के लोकगीतो का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया गया है—

१ **संस्कारो के गीत—**

(अ) सोहर
(ब) कढाहुली, चरुआ, पालना
(स) बधाये, अन्न-प्राशन, वर्ष-गाठ

---

१. भारतीय लोक-साहित्य : श्याम परमार, पृष्ठ ६४-६५।

(द) मुंडन
(य) जनेऊ
(र) विवाह (वन्ना, वन्नी, रतजगा, हल्दी चढाना, सेहरा, भात और भातई, द्वाराचार, गालियाँ, ज्यौनार, कुँवर-कलेवा, पलिकाचार, विदा, सुहागरात, गौना, सास-वहू, देवर-भाभी आदि के गीत)
(ल) मृत्यु-गीत ।

२. ऋतुओं, महीनो और धर्म के आधार पर तीज त्यौहार के गीत—
(अ) नव-दुर्गा (नौरता)
(व) साँझी
(स) वगला
(द) थापे
(य) झाँझी-टेसू
(र) खेलों के गीत
(ल) जात के गीत (कैला देवी के गीत, पथवारी देवी के गीत, सीतला देवी के गीत)
(व) दशहरा
(स) करवा-चौथ
(ष) अहोई आठे
(श) दीपावलि
(ह) गोवर्द्धन-पूजा
(क्ष) भैया-दूज
(त्र) देवठान
(ज्ञ) कातिक-स्नान
(क) वसत
(ख) होली
(ग) गनगौर
(घ) श्रावणी
(ङ) तीज
(च) मल्हारे
(छ) रक्षा-वन्धन

३. पारिवारिक, सामाजिक तथा सामयिक गीत ।
४. कृष्ण सम्बन्धी गीत ।
५. अन्य गीत ।

## संस्कारों के गीत

### सोहर .

पुत्र-जन्म पर गाये जाने वाले गीतो को 'सोहर' कहा जाता है। इन गीतो को कही-कही 'मगल-गीत' भी कहा जाता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने सोहर शब्द की व्युत्पत्ति 'शोभन' शब्द से मानी है। उनका मत है कि "सभवत यही शोभन शब्द शोमिलो>सोहिलो>सोहद>सोहर रूपो मे परिवर्तित होता हुआ इस रूप मे आ गया है। भोजपुरी मे 'सोहल' का अर्थ अच्छा लगना है जो सस्कृत के शोभन से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति 'सुघर' शब्द से भी मानी जाती है जिसका अभिप्राय 'सुन्दर' होता है। पुत्र-जन्म के गीत सोहिलो के नाम से भी प्रसिद्ध है।"[1]

पुत्र-जन्म पर गाये जाने वाले गीत वास्तव मे एक विशेष छद मे गाये जाते है। इस छद को 'सोहर छद' कहते है। इस छद मे ही इन गीतो को गाने से इन गीतो का नाम भी 'सोहर' ही पड गया है 'रामलला नछहू' मे तुलसीदास जी ने सोहर छद का प्रयोग किया है।

किसी के पुत्र होने पर घर तथा पडौस की स्त्रियाँ एकत्र होकर सोहर गाती है। इन गीतो को 'जच्चा' के गीत भी कहा जाता है। ये गीत छै अथवा दस दिन तक गाये जाते है। छटवे दिन छटी के गीत विशेष रूप से गाये जाते है और दसवे दिन दष्ठौन के गीत गाये जाते है।

कन्या उत्पन्न होने पर ये गीत नही गाये जाते। हिन्दू समाज मे कन्या का जन्म लेना आनन्द का प्रतीक नही माना जाता। वैसे तो कन्या को लक्ष्मी कहा जाता है किन्तु हिन्दू-समाज मे कन्या के विवाह में जो दहेज की कुप्रथा है उससे माता-पिता कन्या का जन्म लेना अपने लिये अहितकर समझते है। सोहर मे शृगार-रस की प्रधानता रहती है। कही-कही करुण रस और हास्य-व्यग के भी पुट मिलते है।

निम्नलिखित गीत मे एक स्त्री के पुत्र होने पर प्रसन्नता और पुत्री होने पर अपनी परिस्थिति बताती है .—

मेरो घर भर्यो, अँगना भर्यो, सब सुख भर गयो
पेट मेरो पूत वहू घर लै आइयोजी
मेरो घर रीतो मेरो अँगना रीतो
मोरे सब सुख रीते मेरी धीय लै गयौ जमैया
मैं तो कभी न जनूँगी धीय मैं तो नित जनूँगी पूत
मेरो पूत नित ले अइयौ वहू री।

---

1. लोकसाहित्य की भूमिका—डा० कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४२।

हिन्दू परिवार में पुत्री का जन्म प्रसन्नता नही देता। इसका कारण यह है कि पुत्री एक तो पराया धन होती है दूसरे वर ढूढने और दहेज देने की प्रथाएँ माता-पिता के लिये विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती है। पुत्र तो वहू लाकर घर में आनन्द भर देता है किन्तु पुत्री घर भर को दु.खी और सूना कर चली जाती है।

निम्नलिखित गीत एक गर्भिणी स्त्री की इच्छाओं को प्रकट करता है :—

मेरा दिल वादी वेर पै
मेरा राजा ससुर से यों कहो, मोय मीठे वेर मगादो जी
मेरी रानी वहू से यो कहो तोय मथुरा की खुरचन मँगायदूँ जी
मेरे राजा जेठ से यो कहो मोय कासमीर के सेव मँगाय दो जी
मेरी रानी बहू से यो कहो तोय वुटवल की नारगी मँगादू जी
मेरा दिल वादी वेर पै जी।

जव स्त्री गर्भिणी होती है तो उसका जी एक ओर तो मिचलाया करता है दूसरी ओर उसे भिन्न-भिन्न चीजें खाने की इच्छा होती है। उपर्युक्त गीत मे गर्भिणी स्त्री वेर और काश्मीर के सेव खाने की इच्छा रखती है। वह अपने पति द्वारा ससुर के पास सन्देश भेजती है। ससुर गर्भिणी पुत्र-वधू की इच्छा पूर्ण करने को तत्पर है। वह उसकी इच्छित वस्तुएँ तो मगाता ही है अन्य स्वादिष्ट मिठाइयाँ और फल भी मँगा लेता है। मथुरा की खुरचन और वुटवल की नारगी मँगा कर ससुर अपने हार्दिक स्नेह और आनन्द को प्रकट कर रहा है। इस गीत मे मनोभावो का वड़ा स्वाभाविक और सरस वर्णन हुआ है तथा सूक्ष्म-निरीक्षण प्रशसनीय है।

पत्नी अपने पति से कहती है कि मुझे ससुराल मे वच्चा पैदा करना अच्छा नही लग रहा। मुझे पीहर ले चलो। वहाँ चलने से मे अपने पीहर वालो से पुत्र-जन्म के नेग लूँगी .—

जल्दी चलो वालम पीहर मे लाल होंगे।
सास जी के वदले अम्मा से नेग लेंगे,
जल्दी चलो वालम पीहर मे लाल होंगे।
जिठानी जी के वदले भाभी से नेग लेंगे,
जल्दी चलो वालम पीहर मे लाल होंगे।
ननद के वदले वहन से नेग लेंगे,
जल्दी चलो वालम पीहर मे लाल होंगे।
सखियो के वदले पड़ोसिन से नेग लेंगे,
जल्दी चलो वालम पीहर मे लाल होंगे।

इस गीत मे पत्नी का आग्रह इस लिये पीहर के लिये और अधिक माना जा सकता है क्योकि उसे अपने ससुराल वालो पर विश्वास नही। उसे भय है कि यदि ससुराल वालो ने उचित प्रकार से देख-भाल नही की तो कही जच्चा या बच्चा का अनिष्ट न हो जाये।

युवती प्रथम बार गर्भवती हुई है। उसे गर्भिणी स्त्री के कष्टो का कोई ज्ञान नही। वह बडे भोलेपन से अपनी ननद से पूछती है कि उसकी शारीरिक पीडा का क्या कारण है? ज्यो-ज्यो गर्भ के दिन बढते जाते हैं उसे कुछ अनोखापन प्रतीत होने लगता है। प्रतिमास उसे कोई न कोई नई बात मालूम होती है। उसके मन मे चटपटी चीजें खाने की इच्छा होने लगती है। वह अपनी ननद से पूछती है .—

मोरी भोली ननद जाने क्या हुआ।
जब लागा, जब लागा पहला महीना, ननद जानें क्या हुआ।
तब सीस धमकने लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
जब लागा, जब लागा, दूजा महीना ननद जाने क्या हुआ।
तब थुक थुकियन मन लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
जब लागा, जब लागा तीजो महीना ननद जाने क्या हुआ।
तब खट्टे मीठे मन लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
जब लागा, जब लागा चौथा महीना, ननद जाने क्या हुआ।
तब खीर पूरी पै मन लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
जब लागा, जब लागा पचयो महीना, ननद जाने क्या हुआ।
तब अचपल फडकन लागा, ननद जाने क्या हुआ।
जब लागा, जब लागा छटवाँ महीना, ननद जाने क्या हुआ।
तब आम इमली मन लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
जब लागा, जब लागा सतयो महीना, ननद जाने क्या हुआ।
तब साद सिदौरी मन लागा, ननद जाने क्या हुआ॥
सब तिरिया, सब तिरिया मगल गावे ननद जाने क्या हुआ।
सत मासा गीत सुनावे ननद जाने क्या हुआ।

गर्भिणी बहू अपनी ननद से कहती है कि अपने भाई को शीघ्र बुलाओ मुझे बडा कष्ट हो रहा है। ननद दौडकर अपने भाई को बुलाने जाती है .—

पॉच पान, पाच बिडिया, पाच सुपडिया सो मेरी ननद को देउ
विरन जगाय लावै।
उठी उठी विरन निदारे अँखियो के तारे जगत उजारे त्यारे
महल कछु सोर तो भभज बुलावै

झटपट वाँधी पगड़िया विगस उठि आयो छोटो विरन
एक पाँय धर्‌यो देहरिया तो दुसरो पलकियाँ
लयी तो हिरदय, लगाय कहा तुम्हारो दूखै
लाज सरम की है वात राजा के आगे नाय कहुँ
हाकिम के आगे नाय कहुँ तोय मोय अन्तर नाँय
कपट की वात नाय कहदो मोय कहा व त्यारो देखे
पीडरिया धरीये कमर मेरी सालै पेट पसीना
मेर लिये सुगढ दाई लाओ सुगढ चतुर दाई लाओ
छप्पर होय उठाऊँ जने दस लाऊ तो करतार
राम छुडावै कृष्ण छुडावै ।
दोऊ मिलि वाँधी गठरिया खोली अकेली वाँधत
कोऊ न जानी खोलत जग जानी, जो मेरी मैया—
होती तो पीर हर लेती, सजन मैया वेदरदी

गर्भवती स्त्री को अनेक स्वादिष्ट पदार्थ खाने की इच्छा होती है। उसका मन लपसी खाने का हो रहा है। लेकिन लपसी वनाने मे वडी कठिनाई हो रही है। उसे कढाई, आग, आटा आदि चाहिये। वडी कठिनाई से वह लपसी वनाकर खा पाती है कि उसके पेट मे दर्द उठने लगता है और वालक का जन्म हो जाता है। लपसी निर्धन लोगो के घर मे वड़ी चीज समझी जाती है। यह केवल आटे मे पानी कर गर्म करली जाती है और पतली लेई जैसी होती है। गर्भवती स्त्री की परिस्थिति का इस प्रकार वर्णन है —

कोई माँगै कढैया न देई मेरौ मन लपसी पै
जैसे तैसे कढैया हू लाई, कोई माँगे आँच न देई। मेरो०
जैसे तैसे आँच हू लाई, सासुलिया चूँन देई। मेरो०
जैसे तैसे चून लाई नहुलिया करू न देई। मेरो०
जैसे तैसे कर हू लीनी, वाल-वच्चे खान न देई। मेरो०
जैसे रे तैसे खाइ हू लीनी, पीर मोय सोमन न देई। मेरो०
जैसे तैसे पीर सभोरी, जाये तुरत नदलाल। मेरो०

(टि०—यह स्त्री किसी अति साधारण घर की है, तभी तो इसकी इच्छा केवल लपसी खाने की हो रही है। इस घर के लिये लपसी ही वड़ी वहुमूल्य है।)

उधर एक अन्य गर्भिणी का वर्णन है जो पहिली स्त्री से कुछ अधिक सम्पन्न दिखायी देता है। इसकी इच्छा हलुआ खाने की है। इसने भी वडी कठिनाई से हलुआ वनाया किन्तु हलुआ खाते ही पुत्रजन्म हो गया .—

मुझे माँगी कढ़ैया न देई, मेरौ मन हलुए पै
अरे जैसे तैसे मैंने माँगी कढ़ैया
सामूजी सूजी न देइ, मेरौ मन हलुए पै
जैसे तैसे मैं सूजी लाई
जिठानी जी घी न दैइ, मेरा मन हलुए पै
जैमे तैसे मैं घी लै आई
दौरानी जी वूरौ न दैइ, मेरौ मन हलुए पै
जैसे तैमे मैंने हलुआ वनायौ
राजाजी खाने न दैई, मेरौ मन हलुए पै
जैसे तैसे मैंने हलुआ खायौ
खाते ही भये नदलाल, मेरौ मन हलुए पै

इस प्रकार हमारे लोकगीत भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तर का ज्ञान कराने की सामर्थ्य रखते है और समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते है।

इधर एक अन्य जच्चा है जो तनिक और सम्पन्न घर की प्रतीत होती है। वह लपसी और हलुए से अधिक श्रेष्ठ मिठाई घेवर खाने की इच्छुक है। वह छुप-छुप कर घेवर खाना चाहती है कि पकडी जाती है। इस स्थिति का वर्णन वडी सुन्दरता से इस मोहर-गीत मे किया गया है—

एक रुपया के गेहुंग मँगाये तो छज्जैन डार मुखाये हो लाल, मेरो मन लोचन घेवर पै
सुखा-साख मैदा पिसवाई तौ जिठानी रानी छानन हो लाल, मेरो०
छान-छन मैदा धर दीनी तो द्योरानी रानी घोरन वैठी हो लाल, मेरो०
घोर-घार मैदा धर दीनी तो सामुल रानी सेकन वैठी हो लाल, मेरो०
सेक-माँक डलिया भर दीनी तो विनमे ते एक चुरायो हो लाल, मेरो०
वाहिर ते आए देवर जी तो भाभी रानी पानीरा पिवाओ हो लाल, मेरो०
पानीरा पिवावै तेरी मैया रे वहैनियां तौ हम धन उठोऊन जाय हो लाल मेरो०
वाहिर ते वलम जी आये तो गोरी धन विडिया लगाओ हो लाल, मेरो०
विडिया लगावै तेरी सगी रे भावजी तो हम धन उठोऊन जाय हो लाल, मेरो०
हाथ पकरि वैठी कर दीनी तो घेवर लुढकल जाय हो लाल, मेरो०
कहो तो गोरी धन पेड़ा मगाई दउ, कहौ तो घेवर मँगाऊ हो लाल, मेरो०
ना चहिये वे पेडा और घेवर, चोरी उजागर कर दई हो लाल, मेरो०

आगरा मे एक अनौखी टेक 'मपरी' की चली है। 'सपरी' का शब्दार्थ है—व्यतीत होना, पूरा पडना। इस 'सपरी' की टेक पर अनेक गीत प्रचलित है। एक गर्भवती का 'मपरी' की टेक मे व्यथा-वर्णन है—

है रई कमर मे दरदिया, कैसे सपरी।
उठो कमर मे दरद बलम मे करिरई लोटा-पन्टी
सबरी रात मरोरा मारे तोऊ कटी ना कन्टी
मै तो ह्वै गई रे जरदिया, कैसे सपरी।
बारह बजे उतरि गई नीचै पकर खाट की पाटी
घन्टा चार बीत गए बैठे जब कऊँ पीरी फाटी
टाँगी द्वारै पे परदिया कैसे सपरी।
भोर भयो जब बजे मुरगा ने बाँग लगाई
आई पीर भयौ मेरे लाला गई खुशी मे छाई
बिगरी छीट की फररिया, कैसे सपरी।

पुत्र-जन्म पर जच्चा अपने पति को घर का प्रबन्ध ठीक रखने के ढग को समझाती हुई कहती है कि सभी वस्तुओ को सभाल कर रखना अन्यथा तुम्हारी बहन, भाभी, माँ या बुआ आकर घर लूट लेगी। उसकी यह भी इच्छा है कि पति अपने घर वालो की जगह पत्नी के पीहर वालो को बुला ले। वह कहती है —

मैं अलबेली राजा घरु न लुटाय दीयो।[1]
तारौ लगाय कुची मोइऐ गहाय दीयौ॥
चरुआ धरन को मेरी मैया को बुलाय लीयौ।
साँसुली आमे राजा बिने बगदाय दीयौ॥
मै अलबेली राजा घरु न लुटाय दीयौ।
तारो लगाय कुची मोईऐ गहाय दीयौ।
सोठि कुटन को मेरी ताइ को बुलाय लीयौ।
जिठानी जो आमे राजा बिनें बगदाय दीयौ॥ मै अलबेली ...... ...
पलिका बिछन को मेरी भाभी ऐ बुलाय लीयौ।
द्यौरानी जो आमे राजा बिने बगदाय दीयौ॥ मै अलबेली .. ....... ..
सतिया धरन को मेरी बहनाऐ बुलाय लीयौ।
ननद जो आमे राजा बिने बगदाय दीयौ॥ मै अलबेली...... ......
तीर सधन को मेरे भैयाऐ बुलाय लीयौ।
देवरु जो आमे राजा बिने बगदाय दीयौ॥
मैं अलबेली राजा घरु न लुटाय दीयौ।
तारौ लगाय कुजी मोईऐ गहाय दीयौ॥

---

१. पाठान्तर—मैं हूँ अकेली सैया घर ना लुटाय दीजो।

इसी गीत का एक और दूसरा रूप भी प्रस्तुत है —

मैं अवेली राजा घर न लुटाय दीयौ
दाई आमे तो उन्हे वगदाय दीयो
लल्ला जनावे मेरी दादी कूँ बुलाइ लीयौ
सासुल आमे तो उन्हे वगदाय दीयौ
चरुआ चढाइवे मेरी अम्मा कूँ बुलाइ लीयो
जिठानी आमे तो उन्हे वगदाइ दीयो
सोठ कुटावे मेरी भावी कूँ बुलाइ लीयो

यही गीत तीसरी प्रकार से ऐसे भी गाया जाता है —

घर मे अकेली सइयाँ, घर न लुटाइ दउँगी ।
मैं अलवेली राजा घर न लुटाइ दउँगी ।।
सासुल जो रूठे मेरो कहा रे करेगी सइयाँ ।
चरुये चढावे अपनी अम्मा ए वुलाइ लउँगी ।।
ननदी जो रूठे मेरो कहा रे करेगी सइयाँ ।
सतियै धरावे अपनी वैहनाए वुलाइ लउँगी ।।
जिठानी जो रूठे मेरो कहा रे करेगी सइया ।
सोठि कुटावे अपनी भावी ए बुलाई लउँगी ।।
द्यौरानी जो रूठे मेरो कहा रे करेगी सइयाँ ।
विजली ढुरावे छोटी भाभी ए वुलाइ लउँगी ।।
देवर जो रूठे, मेरो कहा रे करेगे सइयाँ ।
तीर चलाइवे अपने भइया ए वुलाइ लउँगी ।।

इन तीनो गीतो मे भाव एक ही है । गर्भिणी स्त्री को अपनी ससुराल के लोगो पर भरोसा नही । उसे डर है कि वे लोग उसकी देख-भाल ठीक से नही करेगे और व्यय भी अधिक करा देगे । वह ससुराल वालो को नेग देने के वदले पीहर वालो को नेग देना चाहती है । यह भेद-भाव वहुओ मे वहुधा देखा जाता है ।

गर्भिणी पीड़ा के मारे तडप रही है । वह अपनी सास, ननद, जिठानी आदि को पुकार-पुकार कर वुलाती है और अपनी सारी वस्तुऐ उन्हे सौपती जाती है । उनसे कहती है कि मैं दर्द के मारे सचमुच मर जाऊँगी । किन्तु कुछ समय वाद उसके पुत्र हो जाता है तो वह आनन्दित हो उठती है । इसी स्थिति-परिस्थिति का वर्णन इस गीत मे है —

सासु मेरे दरद उठौ है री, सासु मैं अव न वचु ँगी री।
सासु मेरी गोदी की ललुआरी, सासु जाइ तुम लै लीजो री।
ननद मेरे दग्द उठौ है री, ननद मैं अव न वचु ँगी री।
ननद मेरी पेटी मैं तीहर री, ननद तुम जाइ लै लीजो री।
जिठानी मेरे दरद उठो है री, जिठानी मैं अव न वचु ँगी री
जिठानी मेरो वलम नगीना री, जिठानी जाइ तुम ले लीजो री।
दौरानी मेरी नारि कौ हँसुली री, दौरानी जाइ तुम ले लीजो री।
दाई जी मेरे दरद उठौ है री, दाई जी मे अव न वचु गी री।
दाई जी मेरे पाँच रुपइया री दाई जी जिने तुम ले लीजो री।
सासु मेरे होरिल भयो है री, सासु मेरो मोइ दै दीजौ री।
ननद मेरे होरिल भयौ है री, ननद मै अव न मरू गी री।
ननद मेरी पेटी को तीहर री, ननद मेरौ मोइ दे दीजो री।
जिठानी मेरे होरिल भयो है री, जिठानी मैं अवु न मरू गी री।
जिठानी मेरो वलम नगीना री, जिठानी मेरो मोइ दै दीजो री।
दौरानी मेरो होरल भयौ है री, द्दौरानी मैं अव न मरू गी री।
दौरानी मेरी नारि को हँसुला री, दौरानी मेरो मोइ दै द़ीजौ री।
दाई जी मेरे होरिल भयौ है रि दाईजी मैं अव न मरू गी री।
दाई जी मेरे पाँच रुपइया री, दाई जी मेरे मोइ दे दीजौ री ॥

जच्चा के खाने के लिए हरीरा तथा अन्य पौष्टिक पदार्थ वनाये जा रहे है। इस अवसर पर उसको सखियाँ 'कढाहुली' के गीत गाती हुई जच्चा के ठाठ और उसके पति की दगा पर व्यग्य करती हुई गाती है—

## 'कढ़ाहुली'

काहे की रे कढ़ाहुली मेरी जच्चा
काहे की रे चमच्चा री हुशियार नखरो जच्चा
लोहे की रे कढाहुली मेरी जच्चा
अरे पीतल की री चमच्चा री हुशियार नखरो जच्चा।
खनन खनन गुरु औटत है री मेरी जच्चा
अरी वह डवके लेइ चमच्चा री हुशियार नखरो जच्चा।
सौंठ पजीरा खाइगी मेरी जच्चा
अरी वह हात पसारे वाकौ कथा री हुशियार नखरो जच्चा।
अरी नेक चाखइ दै जच्चा
ताते से पानी नहावेगी जच्चा

अरी वह रपट परैंगो वाको कथा री हुशियार नख०
पसौरि विछली ओढ़े जच्चा
अरी वह फटे से गुदरिया वाकौ कथा री हुशियार, नख०
सूत के पलिका सोवे जच्चा
टूटे मँझोले वाको कथा री हुशियार, नख०

सोहर-गीतो मे ऐसे व्यग्य बहुधा ही गाये जाते है। इनसे यह भी प्रकट होता है कि जच्चा की देखभाल बडी सावधानी से की जाती है। उसे अधिक-से-अधिक सुविधाये देने के प्रयास होते है।

जच्चा के लिये चरुआ चढाया जा रहा है। चरुए का पानी जच्चा के लिये बडा लाभदायक होता है। चरुआ मटके को कहते है। मिट्टी के घडे मे पानी उबाल कर जच्चा को पिलाया जाता है। इससे जच्चा का पेट ठीक रहता है। इस अवसर पर सास, ननद, जिठानी, के कुछ कार्य होते है —

नौ सौ मौतियो का जच्चा के गले हार है
सासु उनकी चरुआ चढावे चरुये की वहार है
उनको कगन देना खुशी का दिन आज है।

नौ सौ मोतियो ··· ·············
जिज्जी आवे पिपरी पीसै पिपरी की बहार है
उनको लाकेट देना खुशी का दिन आज है। नौ सौ मोतियो·······
ननदी आवे सतिया धरावे सतिये की बहार है
उनको झुमकी देना खुशी का दिन आज है। नौ सौ मोतियो······
देवर आवे बशी बजावे बशी की वहार है
उनको घडी देना खुशी का दिन आज है। नौ सौ मोतियों·······
सखिया आवे मगल गावें मगल की बहार है
उनको लड्डू देना खुशी का दिन आज है। नौ सौ मोतियों ······

जन्म लेने वाले प्रत्येक बालक को कृष्ण ही मान लिया जाता है। तभी तो पुत्रजन्म पर सभी स्त्रिया गा उठती है —

जसोदा ने कारी अँधेरी मे जायो
अरी वो तौ कारोई कृष्ण कहायो
दाई आवे नार छिवावें
जसोदा ने व्वाकू भी नेग गहायौ

इसके दो लाभ हैं। एक हरि-स्मरण दूसरा मगलमय संगीत। पालने के प्रतिनिधि गीत इस प्रकार है —

पालनौ गढला रे वढैया काहे को वनो तेरो पालना
काहे के लागे फुँदना
अगर चदन को गढो रे पालना रेसम के लागे फुँदना
राम झूलें कौसल्या झुलावैं जसरथ लेत वलैयाँ पालनौ गढ़ला रे वढैया
एक लुगाई मेरे गाँव की आई नजर लगाई मेरे ललना
राई नोन उसारे जसोदा खेल उठे ललना पालनौ गढला रे वढैया
वाई लुगाई को पकर वुलाऊँ नजर उतारैं ललना पालनौ गढ ला रे वढैया।

वालक के आभूषणो के विषय मे अनेक गीत प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए—

वारे ललन कठला को चाव
कठला गढावैं वावाजी दरवार पे रे वाको, झाँझनियाँ
पैरावे वाकी मैया। वारे ललन कठला को चाव।
कठला गढावैं ताऊजी दरवार

(आगे सवका नाम लेकर यह गीत वढाया जाता है।)

इन भाव-भीने गीतो मे एक-एक करके परिवार के सभी वडो की कामनाओ और शुभेच्छाओ का समावेश आप से आप हो जाता है। यह गीत शाखो-च्चार का काम देते हैं और सामाजिक स्तर एव उस काल के आभूपण के प्रचलन का रूप प्रस्तुत कर देते हैं।

वालक को झुनझुना खेलने की इच्छा है। उसके लिये सोने का झुनझुना मँगाया गया है—

मोहन प्यारे के हाथो सोने का झुनझुना।
वावा ने गढायो सोने का झुनझुना,
और दादी खिलावे तुम खेलो लालना।
मोहन प्यारे के हाथो सोने का झुनझुना॥
उसके वावू ने गढाया सोने का झुनझुना,
अम्मा रानी खिलावे तुम खेलो लालना।

झुनझुना ही नही, अव तो उसके लिये चकई भी चाहिये :—

चकैया सोने की गढवादो
वावा हजारी ने चकई गढवाई दादी पै डोर डलवादो
चकैया सोने की वनवा दो
ताऊ हजारी ने चकई गढवाई ताई पै डोर डलवादो
चकैया सोने की वनवादो।

सोने के झुँझना और चकई घर की समृद्धि प्रकट करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बालक का जन्म एक बहुत बड़े घर में हुआ है। हो सकता है कि किसी समय हमारे देश का प्रत्येक घर इतना समृद्धिशाली रहा हो कि जहाँ प्रत्येक घर में सोने-चाँदी के खिलौने होते हों। लोक-गीतों में सोने की थाली और रूपे की कटोरियों का प्रयोग बहुधा मिलता है। इन गीतों से एक बात और प्रकट होती है वह यह कि बालक के घर वाले बालक के लिये सोने-चाँदी के खिलौनों की कल्पना करते हैं। वे मिट्टी या लकड़ी के खिलौनों का ही महत्व बढ़ाने के लिये उन्हें सोने-चाँदी का बताते हैं। यही कारण है कि बच्चे के लिये बड़े-बड़े मूल्यवान वस्त्राभूषणों का उल्लेख किया जाता है।

एक सोहर-गीत में तो कृष्ण-जन्म की पूरी कथा ही आ गयी है। कंस की दुष्टता, देवकी के सात पुत्रों की हत्या, आठवें कृष्ण के जन्म, वसुदेव द्वारा यशोदा के पास कृष्ण का ले जाना आदि का वर्णन इस गीत में किया गया है। यह गीत कुछ रूप में भक्ति के गीत हैं जिनमें गुणानुवाद और चरित्रांकन एक साथ सम्मिलित हैं :-

यमुना को लागौ है न्हान तौ दुनियाँ न्हान चली रे
ऐसी चली यशोमति माय तौ परव लेत चली रे
कोई सखी हाथ मुख धोवै अरे कोई सखी जल भरै रे
इक सखी ठाड़ी बिलखाय तौ गरुए गरभ से रे
कै तोय सासु ननद दुख. कै तेरे पीहर के तेरे पीहर रे
भैना, कै तेरे पिय परदेस तौ कैसी कोख दुख रे
ना मोय सास ननद दुख, ना मेरे पीहर के मेरे पीहर रे
भैना, ना मेरे पीय परदेस तौ एक कोख दुख रे
सात पुत्र हम जन लिए अठवें गरभ सौं रे
भैना, ताऊ की आस निरास कंस भय्या डस लियो रे
यशुमति यों समुझावे देवकी ने बोले बात बतरावै रे
भैना हमरे दीजौ पहुँचाय बालक जब उर धरीं रे
तुमरे तो हुइए कन्हैया ओ हमरे कन्या रे हमरे तो कन्या रे
भैना बालक दीजौ पहुँचाय तौ कन्या मँगवाओ रे
भर भादों की अँधेरी दामिन दमकै अरे बिजरी चमकै रे
श्री किशन लीए औतार पहरुआ सब सो गए रे
चेरी हाँ मोरी चेरी अरे तुम मेरी चेरी रे
चेरी राजा जी को लाउ बुलाए बालक मेरे उर धरे रे
राजा हो महाराजा अरे तुम महाराजा रे
राजा बालक लियौ औतार पहरुवा सब सो रहे रे

झटपट बाँधी पगडिया अरे जूता मचा मच रे जूता मचा मच रे
लिया बालक कण्ठ लगाय तो वसुदेव चल दिए रे
एक वन नाघे दूजा वन तीजो वन प हुँचे अरे तीजो वन पहुँचे रे
रामा यमुना चढी है अपार कृष्ण पग बोरिय रे
यमुना हो मेरी यमुना तुम मेरी माता तुम मेरी यमुना रे
यमुना इकले कन्हैया मेरी तो पार लगन दीजौ रे
राजा हो मेरे राजा तो तुम मेरे राजा तो तुम महाराजा रे
राजा कृष्ण छुआ मे जल पाँव तो पार उतारा रे
यशुधा के लागे है किवाँड यशोधा सोई तो सब घर सोवै रे
रामा कान्हा को दिया है सुलाय कन्या को लेके चल दियो रे
भोर भयौ पीरी फाटी ए तौ अति सुख मानौ रे
जैसे वज गए तवल निशान गवन लागै सौहरे रे
जो जाय आवै अरे गाय सुनावै अरे जच्चा को रिझाय वेरे
ताके कटते जनम के पाप सन्तत फल पावै रे।

निम्नलिखित गीतो मे बधाये गाये गये है। इन गीतो मे ससुर, जेठ और देवर के नाम लिये जाते है। अपने पति का नाम लेकर भी बधाये गाये जाते है :—

वधाये लिये चौक पुराये रखती रे
वधाये लिये अँगना लिपाय रखती रे
जो मैं ऐसो जानती ससुर जी आवे ससुर जी के लिये बैठक सजाय रखती रे
जो मैं ऐसो जानती जेठजी आवे, आज जेठजी को खाना बनायँ रखती रे।
जो मैं ऐसा जानती देवर जी आवे, आज देवर जी को वल्ला मगाँय रखती रे।
जो मैं ऐसा जानती राजाजी आवे, आज राजाजी को पलगें बिछाय रखती रे।
बधाये लिये अँगना लिपाय रखती रे
जो ऐसा जानती नन्दोई जी आवे आज नन्दोई जी को पूडी वनाय रखती रे।
बधाये लिये अँगना लिपाय रखती रे।

× × ×

लौंग लचक फल लाबे नारियल फूलि रहे महराज
पैला वधायो ससुर जी को आयी सासुल ने लियो भरि गोद
नारियल फूलि रहे महराज, दूसरो वधायो जेठजी को आयो
जिठनी ने लियो भरि गोद। नरियल फूलि रहे महराज।

× × ×

जीना जीना वधाओ जीना
गोरी कौन की रितु आई और कहाँ पै सेज विछाई, वधायो जीना
राजा जाड़े की रितु आई और कमरे सेज विछाई, वधायो जीना
गोरी कौन-कौन रितु आई और कहाँ पै सेज विछाई, वधायो जीना
राजा वर्षा की रितु आई और छज्जे पै सेज विछाई, वधायो जीना
राजा ऐसी सासुल न चहिये जो मोढ़े पर बैठी हुकुम चलावै, वधायो जीना
राजा ऐसी जिठानी न चहिये जो गर्मी रसोई तपावै, वधायो जीना
राजा ऐसी ननद न चहिये जो एक की चार लगावै, वधायो जीना

पुत्र-जन्म पर वधाये गाये जा रहे हैं। इन वधायो में वालक को कृष्ण तथा माता को यशोदा मान कर उल्लास और धूम-धाम का वर्णन किया जाता है। इस पुत्र के कृष्ण जैसा ही अवतारी होने की कामना की जा रही है। तभी तो वधाये में कहा जा रहा है :—

सात सखी सोवर से निकली हँसत खिलत मुसकात
पूरव पुन्य उदय भए सजनी भए है जसोदा के लाल, वधाई वाजी नन्द के।
वोलो हो पण्डित के लडके शुभ घडियाँ छिकवाय
घडियाँ भली शुभ वडियाँ सजनी रोहिनी नछत्तर
वोलो हो नाई अरु वारीन नगर बुलावा देय भए लाल वधाई।
वे सखिया मेरे मत आना, जाय मेरो लाल न सुहाय
पाटी पारौ माँग सम्हारो आँखो सुरमा देउ
वेदी देउ सिंदूर की सजनी मोति न भर लेउ माँग
सात सखी द्वारै पै ठाडी लागे झँझन किवाड़
एक अचपली यो उठ वोली चलौ हो उलट घर जाँय
हाय फरहरी पाँव छरहरी निकली खोल किवाड
सब सखियन पाँलागन कीनी दए हैं गलीचा डार
वावा नन्द खरिक मे ठाडे देत गउन के दान
कारी काजर वौरी धूमर देत बुलाय
वावा नन्द ने वसतर लुटाए शालू दुपट्टा शाल
जैसी जाके मन मे आवै तैसी पहरि घर जाउ
सात सखी जब घर को चाली मुख-मुख भर देत असीस
माता यशोदा तुम चिरजीवो युग-युग जीवैं तेरे लाल।

खड़ी बोली का एक सोहर गीत जो आगरा नगर मे ही गाया जाता है—

सारी सारी रातो जच्चन शोर मचाया
शोर मचाया नया बच्चा भी जाया रे, शोर मचाया सारी सारी रातो.......
एक तो जच्चा ने बच्चा जाया रे
दूजे जच्चा ने सास बुलाई
सास बुलाई उनसे चरुआ चढाया रे चरुआ चढाया
नेग की बिनिया जच्चा ने सीग दिखाया
सीग दिखाया दो धक्के लगाये रे, धक्के लगाये, सारी...............
एक तो जच्चा ने बच्चा जाया रे दूजे जच्चा ने जिठानी बुलाई
जिठानी बुलाई उनसे सोठ कुटाई रे, सोठ कुटाई
नेग की बिनिया जच्चा सीग दिखाया
सीग दिखाया दो धक्के लगाये रे, धक्के लगाये, सारी......
एक तो जच्चा ने बच्चा जाया रे दूजे जच्चा ने नन्द बुलाई।
नन्द बुलाई उनसे सतिया धराया, सतिया धराया।
नेग की बिनिया जच्चा ने सीग दिखाया।
सीग दिखाया दो धक्के लगाये रे।

पुत्र-जन्म पर बधाई बज रही है। जच्चा का सारा दुखः-दर्द दूर हो गया है। वह सभी को अपना पुत्र दिखाना चाहती है। उसकी इस भावना का प्रदर्शन इस लोकगीत मे किया गया है। ढोलक की धुनक-धुनक पर स्त्रियाँ गा रही है।—

बाजी रे बाजी मेरे आँगना बधाई बाजी।
सासु जी तुम भी आओ चरुआ चढाइ जाओ,
गोद मे पोता ले लो, आँगना बधाई बाजी।
जिठानी जी तुम भी आओ पीपल पिसाइ जाओ,
गोद मे बेटा ले लो, आँगना बधाई बाजी।
दौरानी जी तुम भी आओ पलका बिछाइ जाओ,
गोद मे भतीजा ले लो, आँगना बधाई बाजी।
ननदी जी तुम भी आओ साँतिये धराइ जाओ,
गोद मे भतीजा ले लो, आँगना बधाई बाजी।
दिवर जी तुम भी आओ, पल्ला सदाइ जाओ,
गोद मे भतीजा ले लो, आँगना बधाई बाजी।
ससुर जी तुम भी आओ, थैली लुटाइ जाओ,
गोद मे पोता ले लो आँगना बधाई बाजी।

एक गर्भिणी के उदर मे बडी पीडा हो रही है। वह अपने पति से आग्रह करती है कि पुत्र-जन्म का प्रबन्ध शीघ्र करो। पति की सुस्ती पर वह उसे कठोर बताती हुई कहती है ·

राजा वेदरदी सुने नॉय मेरी।
दाई आमे लाल जनामे, करौ काम जल्दी बचै जान मेरी।
जे सैयाँ वेदरदी सुने नाँय मेरी।
सासुल आमे चरुआ चढामे, करो काम जल्दी, बचै जान मेरी।
ननदी आमे हरीरा बनामे, करौ काम जल्दी, बचै जान मेरी।

पुत्र-जन्म हो चुका है। जच्चा को डर है कि कही उसके पुत्र को नजर न लग जाये। वह हर किसी को अपना पुत्र दिखाना नही चाहती। निम्नलिखित गीत मे इस बात का उल्लेख है —

कमरा के भीतर शोर मचावै रानी जच्चा
सो जच्चा तेरे माथे के बैना बदनी सच्चे
वो झूमर के बीच छिपाय लियौ बच्चा।

नज़र लगने से बचाने की इच्छा रखने वाली जच्चा के विषय मे एक और गीत है। पहला ही बच्चा उत्पन्न हुआ है अत जच्चा उसे सबकी नजर से बचाना चाहती है। वह दाई को भी बच्चे के पास नही आने देना चाहती। घर के लोगो की नज़र लगने का भी उसे भय है—

उमरि मेरि बारी, राम दियौ लाला।
दाई आमे दूर ही रखना,
नजरि लग जायगी, राम दियौ लाला।
सासुल आमे दूर ही रखना,
नजरि लग जायगी, राम दियौ लाला।
ननदी आमे दूर ही रखना,
नजरि लग जायगी, राम दियौ लाला।

इस गीत से प्रकट होता है कि लडकी का विवाह बडी कम आयु मे ही हो जाता था। विवाह के बाद शीघ्र ही वह गर्भवती हो जाती थी। बाल-विवाह की कुप्रथा के कारण ही स्त्रियो का स्वास्थ्य गिरने लगता था, वे अल्प-काल मे ही अनेक बच्चो को जन्म देकर अपने पारिवारिक और गृहस्थ जीवन को दुखी बना लेती थी। अल्प-शिक्षा अथवा अशिक्षा के कारण इनमे अन्ध-विश्वास भी बहुत होता था। वे अपने नवजात शिशु को किसी को इसलिए नही दिखाना चाहती थी कि कही उसे किसी की नजर न लग जाए।

एक जच्चा अपने पति से कहती है कि अपने सभी निकट के सम्बन्धियो को बुला लो। उनसे विभिन्न कार्य करवा कर उन्हे सुन्दर और मूल्यवान भेंटे दीजिये.—

ललना जाए खुशी की बात।
सासुल आवे चरवा धरावे नेग मांगे दुलारी को देना हाय। ललना जाए''''
जिठानी आवे पलिंग बिछावे, नेग मांगे जोगन को देना हाय
दौरानी आवे बिजनी डुरावे, नेग मांगे झाझन को देना हाय
ननदी आवे सतिया धरावे, नेग मांगे कगन को देना हाय।
देवर आवे डोर खिचावे, नेग मांगे घड़ी को देना हाय।

इस गीत मे जच्चा उदार और सरल हृदय वाली है। वह अपनी सास, ननद, दौरानी, जिठानी आदि सभी का सम्मान करती है। पुत्र जन्म पर वह सभी को नेग मे बहुमूल्य वस्तुएँ देना चाहती है।

इन गीतो से प्रकट होता है कि सभी नारियो की प्रकृति एकसी नही होती। ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, दम्भ और अहकार सभी मे नही होते। वे सरल, उदार, दयालु, प्रेममयी और सहिष्णु होती हैं।

पुत्र-जन्म पर सभी को नेग दिए जाते हैं। दाई, सास, ननद, जिठानी आदि सभी अपने-अपने नेग लेने को उत्सुक रहती हैं। जच्चा के लिये पुत्र 'हीरा और लाल' जैसा मूल्यवान है। उसने लाड़ मे उसका नाम हीरालाल ही रख लिया है वह प्रसन्नता मे उसे लेकर अटरिया पर चढ गई है और सभी को यथोचित नेग देने का निश्चय करती है —

छमछम छनन अटरिया चढ गई ले गोदी मे हीरालाल
दाई आमे लाल जनावे माँगे अपनो नेग
एक रुपइया दाई कूँ दऊँगी, जाये हीरालाल
सासुल आमे चरवा चढ़ामे, माँगे अपनो नेग
हात के खडवा सास कूँ दऊँगी, जाये हीरालाल
जिठानी आमे सोठ कुटामे, माँगे अपनो नेग
पँचरग साड़ी जिठानी कूँ दऊँगी, जाये हीरालाल
नदुल आमे सतिये धरामे, माँगें अपनो नेग
हात कौ ककना ननदी कूँ दऊँगी, जाये हीरालाल
देवर आमे तीर सदामे, माँगै अपनो नेग
सोने की अँगूठी देवर कूँ दऊँगी, जाये हीरालाल'।

इस गीत मे जच्चा का उल्लास प्रकट होता है। वह पुत्र-जन्म पर इतनी प्रसन्न है कि अपनी वहुमूल्य वस्तुएँ भी लुटा देने को तत्पर हो जाती है। भारतीय नारी को पुत्र लाखो रुपयो से भी अधिक मूल्यवान होता है।

सोहर के कुछ गीतो मे जच्चा पर तीखे व्यग्य भी होते हैं। एक सोहर-गीत मे जच्चा का सम्वन्ध माली, धोवी, कहार, सुनार आदि से बताकर उस पर व्यगो की वौछार की गयी है :—

दफ्तर मे लिखौ नवाव, वीजक मे लिखौ दमोदरिया
मलिया जच्चा कौ यारु, जाने वेचो जगु ससारु
एक न वेची दमोदरिया। दफ्तर० ...............
धोवी जच्चा कौ यारु, जाने धोयौ जगु ससार
एक न धोयी दमोदरिया।
घिमरा जच्चा कौ यारु, जाने भर लयौ जगु ससार
एक न भरी दमोदरिया।
सुनरा जच्चा कौ यारु, जानने गढि लयौ जगु ससार
एक न गढी दमोदरिया।
वढई जच्चा कौ यारु, जाने छवि डार्‌यौ जगु ससारु
एक न छवी दमोदरिया।
पडित जच्चा कौ यारु, जाने पढि डार्‌यौ जगु ससार
एक न पढी दमोदरिया।

पुत्र-जन्म का समाचार सभी सम्वन्धियो को भेज दिया गया है। जच्चा की जिठानी नही आयी है। जच्चा को उसके न आने का दुख है। वह अपने पति से कहती है कि मेरी जिठानी वडी अनौखी है। वह तनिक घमडी भी है। उसे वुलाने के लिये स्वामी तुम्ही जाओ। वह वच्चे की ताई है। मैं उसका यथोचित सत्कार करूँगी —

जिठानी न आई मेरे राजा,
वो है मेरी गौतिन वदला वहोरन, भोह मसकोरन,
करिहा मरोरन
लाला की हो ताई रे
सासु कूँ भेजूँगी नउआ, नँनद को हो भैया रे
जिठानी कूँ तुम जइयो राजा। वो है ··· ···
सासु कूँ भेजूँगी सजा, नँनद कूँ सवेरे जी
जिठानी कूँ ठीक दुपैहरी। वो है····

सासु कूँ डारूँगी पीड़ा, नँनद कूँ पट्टा रे
जिठानी कूँ मूत के पलिका। वो है ........
सासु कूँ सेकूँगी पूड़ी, नँनद को हो कचौड़ी रे
जिठानी कूँ पाँच मिठाई।
सासु कूँ दऊँगी लहंगा, नँनद कूँ हो फरिहा रे
जिठानी कूँ रेसम की साड़ी। वो है ......
सासु को दऊँगी रुपया, नँनद को हो धेली रे
जिठानी कूँ एकु असरफी। वो है ... ...

ननद-भाभी मे वैसे तो हास-परिहास चलता ही है किन्तु तीज-त्योहारो और उत्सवो पर नेग के लिये उनमे बड़ा प्रेमपूर्ण झगड़ा चलता दिखायी देता है। ननद अपना नेग माँगती है, भाभी उसे चिढाती है। ननद के पिता और भाई उसे कगन दिलाना चाहते है पर भाभी उसे झिका रही है। अंत मे उसे कगन देना ही पड़ता है। इस विवरण को प्रस्तुत गीत मे सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। इस गीत से हिन्दुओ की सम्मिलित परिवार प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। परिवार के सभी लोग एक साथ रहकर प्रेम, सद्भावना, उदारता और सौहार्द्र का भाव रख सकते हैं। भाई-बहिन के पवित्र प्रेम और ननद-भौजाई की मीठी छेड़-छाड़ का यह सुन्दर उदाहरण है :—

ठाडी ठाड़ी सीग दिखावै नँनद कँकना माँगे हो।
बाहिर ते आये सुसर जी, अँगन ठड़े है गये हो,
दै दे औ बहूरानी कँकना, बेटी तौ परदेसन हो ;
मैं जे कँकना नईं दऊँगी, कँकन मेरे पीहर कौ,
कोई जा कँकना सी चीज, औरु बनवा दऊँगी। ठाडी०
बाहिर ते आये जेठ जी, अँगन ठडे है गये हो,
दै देऔ बहूरानी कँकना, बहिन परदेसन हो ;
बाहिर ते आये बलम जी, आँगन ठडे है गये हो,
दै दै हरामजादी कँकना, बहिन परदेसन हो। ठाड़ी०
भीतर सै फैंको कँकनवा, अगन पड़ी हो,
लै जा हरामजादी कँकना फेर मत अइयो हो ;
मैं आऊँगी सामन सलूने भतीजे सोयले हो,
भतीजे कू लाऊँ कुरता टोपी, विदा ले के जाऊँगी हो।
ठाडी ठाड़ी सीग दिखावै नँनद कँकना माँगे हो।

इसी कगन का एक और गीत है। ननद पुत्र-जन्म पर कंगन माँग रही है।

भाभी उसे कगन न देकर रुपये-पैसे मे ही टरकाना चाहती है। ननद अपने हठ पर जमी रहती है। ऐसी स्थिति मे भाभी उससे परिहास मे कहती है :—

ककनवा माँगे ननदी लाल की वधाई
यह रे ककनवा मेरे सुसर की कमाई
रुपईया ले जा ननदी लाल की वधाई।
ककनवा मागे ननदी लाल की वधाई
यह रे रुपइया मेरे जेठ की कमाई
अठन्नी ले जा ननदी लाल की वधाई। ककनवा०
यह रे अठन्नी मेरे देवर की कमाई
चवन्नी ले जा ननदी लाल की वधाई। ककनवा०
यह रे चवन्नी मेरे नन्दोई की कमाई
दुवन्नी ले जा ननदी लाल की वधाई। ककनवा०
यह रे दुअन्नी मेरे साजन की कमाई
दो धक्के ले जा ननदी लाल की वधाई
ककनवा माँगे ननदी लाल की वधाई।

यह गीत आगरा नगर में स्त्रियाँ गाया करती है। इसी गीत को नगर से कुछ दूर रुनकुता, बिचपुरी या पातीराम के नगले आदि गाँवो मे कुछ परिवर्तनो के साथ इस प्रकार गाया जाता है :—

नँनद माँगे कंकना लाल की वधाई।
लाल हम जाए आज है वधाई।
नँनद रानी कंकना है हातन की सोभा,
रुपइया चौ न लेती जाओ लाल की वधाई।
रुपइया मेरे सुसर की उमर कमाई
अठन्नी चौं न लेती जाओ लाल की वधाई।
अठन्नी मेरे देवर की उमर कमाई
चौहन्नी चौं न लेती जाओ लाल की वधाई।
चौंहन्नी मेरे जेठ की उमर कमाई
दुअन्नी चौ न लेती जाओ लाल की वधाई।
दुअन्नी मेरे वलम की उमर कमाई
सिगट्टा चौ न लेती जाओ लाल की वधाई।
सिगट्टा मेरे हातन की हे वीवी सोभा
दो धक्का चौं न लेती जाओ लाल की वधाई।

इन दोनो गीतो मे एक ही भावना होते हुऐ भी शब्दो मे वड़ी भिन्नता है। यह दूमरा गीत ग्राम-जीवन की चटक लिये है। इसमे सिगट्टा भी न दे कर धक्के देने की इच्छुक है भाभी। यह गीत अधिक हास-परिहासयुक्त है।

एक और गीत मे ननद ऐसी ऐंठ रही है कि मनाये से भी नही मानती। उसकी भाभी उसे वर्तन, कपड़े और फिर गहने तक देने को तैयार है किन्तु वह तो फुलझड़ी लेने पर ही अड़ी हुई है। इस हठ का वर्णन प्रस्तुत गीत में वड़ी सुन्दरता से किया है :—

ननदिया माँगे फुलझडी रे, हठीली माँगे फुलझडी रे
सव वर्तन मे वेला वड़ा है, वो ही ननदिया को देवो
सलौने सईयाँ सो रहे अव जागो, मुन्ना के पापा सो रहे अव जागो।
ननदियाँ वेला नही ले रही है, ननदियाँ माँगे फुलझड़ी रे
सव कपड़न मे सेला वड़ा है, वो ही ननदियाँ को देवो
सलौने सईयाँ सो रहे अव जागो, ननदियाँ सेला नही ले रही रे
ननदिया माँगे फुलझड़ी रे।.........
हठीली माँगे फुलझडी रे।..........
सव गहनन मे हरवा वड़ा है, वो ही ननदिया को देवो
मुन्ना के पापा सो रहे अव जागो।
सलौने सईयाँ सो रहे अव जागो, ननदियाँ हरवा नही ले रही रे
ननदिया माँगे फुलझडी रे
हठीली माँगे फुलझडी रे।

ननद अपनी जच्चा-भाभी की सेवा करने आयी है। भाभी वड़ी कंजूस है। उसे भय है कि ननद कही अधिक खर्च न कर दे। वह अपनी ननद को समझाती है कि घर मे खर्च अधिक होने से कुछ सँभाल कर व्यय करना होगा। उसे ननद की नीयत पर सदेह है। तभी तो वह उससे कहती है :—

नँनदी री मेरे खरचु वहुत है
वीवी री मेरे खरचु वहुत है
एक पैसा को गोद मगायौ
वीवी री समार के रखियौ। ननदी.......
जवु वा गोद ए पीसन वैठी
वीवी री वखेर मत दीयौ। ननदी०
जवु वा गोद ए भूनन वैठी
वीवी री जराय मत दीयौ।

जवु वा गोद ए पागन वैंठी
वीवी री चाख मत लीयौ ।
जव वा गोद ए रख के वैंठी
वीवी री चुराय मत लीयौ ।

जच्चा को गोद का पाग खिलाया जाता है । जब यह गीत बनाया गया होगा तव एक पैंसे मे इतना गोद मिलता होगा कि चक्की मे पिस सकता था और पाग भी वन सकता था । आज एक पैसा क्या दस पैंसे मे भी इतना गोद नही आयेगा जो क्स चिट्ठिया वन्द हो सके । इस प्रकार के गीत देश की आर्थिक सम्पन्नता या अपूर्णता का वोध कराते है ।

पुत्र तो स्त्री के उदर से होता है किन्तु नाम पिता का ही होता है । जच्चा वन कर कष्ट तो सहती है स्त्री किन्तु पुरुष उसका पूरा हकदार वन जाता है । एक स्त्री इस वात का विरोध करती है वह कहती है कि मैंने तो इतने कप्ट से पुत्र जन्मा किन्तु मेरे पुत्र को मेरे पति का वेटा कहा जाता है । हर जगह पुत्र के पिता का ही नाम पूछा वा लिखा जाता है । वह स्त्री तभी तो कहती है —

हमने सही दुख पीरे, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए
आओ सासु रानी वैठो पलिग पै,
हँमरौ न्याइ कराऔ, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए
चाहे वहू रूठौ, चाहे वहू फूलौ,
लाल तौ वेटा के कहाए, तुम्हारे लाल कैसे कहाए
आऔ जिठानी रानी वैठौ पलिग पै,
हँमरौ न्याइ कराऔ, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए
चाहे दौरानी रूठौ, चाहे दौरानी फूलौ
लाल तो देवर के कहाए, तुम्हारे लाल कैसे कहाए
आओ ननद रानी वैठो पलिग पै,
हँमरौ न्याइ कराऔ, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए
चाहे भाभी रूठौ, चाहे भाभी फूलौ
लाल तौ भैया के कहाए, तुम्हारे लाल कैसे कहाए
आओ दौरानी रानी, वैठौ पलिग पै
हमरो न्याइ कराओ, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए
चाहे जिठानी रूठौ, चाहे जिठानी फूलौ
लाल तौ जेठ जी के कहाए, तुम्हारे लाल कैसे कहाए
हमने सही दुख पीरे, सइँयाँ के लाल कैसे कहाए ।

समान अधिकार की भावना को प्रगट करने वाले ऐसे गीत नारी की स्वतन्त्र मानसिक स्थिति के परिचायक है ।

एक सोहर-गीत मे जच्चा पर व्यग्य किये जा रहे है । जच्चा वडी कजूस है । वह सास, ननद और जिठानी को उचित नेग नही देती .—

अटरिया मे जच्चा वडी रे हुसियार
अटरिया मे वेला वडी रे हुसियार
चरुआ धरन कूँ आएँ सासु जी
चरुआ चढाई नेगु माँगे महाराज
मँगाउ एकु रस्सी, बँधाऔ उनकी मुश्के
लगाऔ चार गिन्चा, चली जामे चुप्पई ।
लड्डू करन कूँ आमे जिठानी जी
लड्डू बँधाई नेगु माँगे महाराज
मँगाउ एकु रस्सी, बँधाऔ उनकी मुश्के
लगाऔ चार गिच्चा, चली जामे चुप्पई । अटरिया०

उदार और व्यवहार-कुशल जच्चा का दृष्टिकोण दूसरा ही होता है । वह सभी का सम्मान कर उन्हे यथोचित नेग देने को तत्पर है । दाई, सास, जिठानी, ननद, देवर, नाई, नाइन और पण्डित आदि सभी को भरपूर नेग देने के लिये जच्चा कहती है । एक गीत मे इसका वर्णन है—

राजा की रानी वडी सुशीला राम लखन सुत जाए
रग वरसेगो हाँ हाँ राम रग वरसैगौ
रग वरसै कुछ इमरत वरसै और वरसै कस्तूरी
रग वरसैगौ
दाई आवे हुरल जनावे हुरल जनाई नेग मागे
पाँच रुपैया दाई जी को देना जिनने मेरा हुरल जनायो
सासुल आमे चरुआ चढावे चरुआ चढाई नेग माँगे
गले का हरवा सासुल जी कौ देना जिनने मेरा चरुआ चढाया
जिठानी आवें सोठ कुटावे सोठ कुटाई नेग माँगे
हाथ के कगन जिठानी जी को देना जिनने मेरी सोठ कुटाई
नदुल आमे सतिए धरावे सतिए धराई नेग माँगे
सिर का टीका नदुल जी को देना जिनने मेरे सतिए धराए
देवर आवे पल्ला सधावे पल्ला सधाई नेग माँगे
हाथ की घड़ियाँ लालाजी को देना जिनने मेरा पल्ला सधाया

नाइन आवें नगर बुलावे नगर बुलाई नेग माँगे
पाँच रुपैया नाइन जी को देना जिनने मेरा नगर बुलायौ
पडित आवें नाम धरावे नाम धराई नेग माँगे
पाँच रुपैया पडित जी को देना जिनने मेरा नाम धरायौ
ससुरे आवें थैली लुटावे थैली लुटाई नेग माँगे
मोहर असरफी ससुर जी को देना जिनने मेरी थैली लुटाई
रग वरसैगौ, हाँ हाँ राम रग वरसैगौ ।

वालरूप मे भगवान कृष्ण पालने मे झूल रहे हैं । चन्दन के पालने मे रेशम की डोर लगी है । माता के रूप मे स्वय यशोदा ही शोभा दे रही हैं । इस प्रकार के गीत एक ओर तो आगरे की स्त्रियो की कृष्ण-भक्ति प्रकट करते है दूसरी ओर बालक तथा जच्चा के गुण-गौरव का भी वखान करते है —

कन्हैया झूलै पालना नैक हौलै झौटा दीयो
काए सौ जाकौ बनौ पालनौ, काए कौ०
और काए के लागै फुँदना, नैंक हौलें ०
चदन कौ जाकौ बनौ पालनौ, चदन कौ०
और रेशम के लागै फुँदना, नेक हौले ०
सोरु भयौ ब्रिज की गलियन मे
अरी जशोदा जायौ ललना, नेक हौलें०

पुत्र-जन्म का समाचार सब जगह फैल गया है । वह पुत्र क्या है मानो कृष्ण है । पुत्र-जन्म पर तभी तो स्त्रियाँ गा उठी हैं :—

जसोदा जायौ ललना मैं जमुना पै सुनि आई
काहे को तेरौ बनौ पालनौ काहे के लगे फुँदना ।।मैं०
चन्दन कौ मेरौ बनौ पालनौ रेशम के लगे फुन्दना ।।मैं०
एक सखी मेरे आगे आई कि नजर लगाइ गई ललना ।।मैं०
गई नोन उतार जसोदा नजर उतारी ललना । मैं जमुना पै सुनि०
नन्द बावा गऊदान करे हैं अरी माई झुलावै पालना ।।
मैं जमुना पै सुनि आई०

इस गीत मे पुत्र की माता को यशोदा कहा गया है, पिता नन्द बावा हैं और पुत्र श्रीकृष्ण हैं । पुत्र-जन्म पर ऐसे गीत बहुधा गाये जाते है । पुत्र-जन्म के समय से ही गीत आरम्भ हो जाते हैं और जच्चा-बच्चा के जो-जो कार्य होते रहते हैं उन कार्यो के अनुरूप गीत भी गाये जाते हैं । पुत्र-जन्म पर नार कटाना, नेग देना, दाई को बुलाना आदि कार्य होते हैं । इस सम्बन्ध मे गाया जाने वाला गीत द्रष्टव्य है :—

जन्मौ सुत अति खुशी मनाई, जल्दी से बुलाई दाई ।
कटवाय दीयौ नार न्हलाय दीयौ छिन मे । जनमो०
लल्ला के बावा बुलवाओ, जल्दी से अब नेग चुकाऔ ।
रुपया देउ कलदार, खुशी होकर मन मे । जनमो०
गढ़े दबे सब माल उखारो, लाला की दादी कूँ पुकारो ।
अब मत करो अबार, खकोरौ कौनन मे । जनमो०
दादी वचन प्रेम के बोली, आज गाँठ ईश्वर ने खोली ।
महर करो करतार, बस रहे हजफन मे । जनमो०

एक अन्य गीत मे दाई पर व्यग्य किया है । पुत्र को राम का रूप देकर दाई के लालची स्वभाव पर परिहास किया जा रहा है । ऐसे गीतो मे जच्चा, बच्चे के पिता, सास आदि पर तो व्यग्य होते ही है, नाइन, दाई, धोबिन आदि पर भी खूब छीटे मारे जाते है । यहाँ दाई को हरजाई कहकर यह गीत गाया गया है —

दाई है हरजाई, राम जी की नार न काटे
कैसी बढभागिन दाई राम जी ………
राजा दशरथ ने बागऊँ सौपे
वह भी न लेवै वह दाई
राम जी की नार न काटे
राजा दशरथ ने महलऊ सौपे
वह भी न लेवे वह दाई
राम जी की नार न काटे
थाल भरे मोती कौशल्या लाई
वह भी न लेवे वह दाई
राम जी की नार न काटे
दाई है हरजाई रामजी की नार न काटे
कैसी बढभागिन दाई राम जी की नार न काटे ।

पुत्र-जन्म होने पर मगल-गीत गाये जा रहे है । पडित आकर जन्म की घडी देख रहा है, दान दिया जा रहा है, हवन की तैयारियाँ हो रही है और द्वार पर वन्दनवार लगाये जा रहे है :—

टेक—सखी गाऔ मगलचार, लला ने जनम लियौ ।
दाई बुलवाई नार कटाई,
मि०—छाई खुशी अपार, लला ने जनम लियौ ।
पण्डित बुलवाए, घड़ी दिखाये,

मि०—दान की हो बौछार, लला ने जनम लियौ।
दान धरम कीने मन भाये, लाखों के धन माल लुटाये।
मि०—जगर मगर हो द्वार, लला ने जनम लियौ।
रीत नीत करके वेदन की, सामिग्री मगवाय हवन की।
मि०—लक्षण सुगम विचार, लला ने जनम०

भतीजा होने की प्रसन्नता बुआ को कम नहीं होती। वह आकर आनन्द के साथ साँतिया रखती है। अपनी भाभी से नेग मागती हुई कहती है—

धरूँगी साँतिया भाभी, वखत हरि ने दिखाया है।
निकारो माल कुछ गहरा, समय अब आगया मेरा।
समारो हाथ मे चावी, वखत हरि ने०
गहाओ साल दो साला, गले मे हार जौ माला।
कडे कँचन के पजावी, वखत हरि ने०
महूरत शुभ घडी आई, मगन मन मे खुशी छाई।
लगी लौ प्रेम से भाभी, वखत हरि ने०
धरि दिये साँतिये मैने, लगी हो नेग तुम देने।
भतीजा खुश रहे भाभी, वखत हरि ने०

इस गीत मे शहरीपन स्पष्ट दिखाई दे रहा है। शब्दो मे खडी वोली का रूप झलक रहा है। कुछ शब्द ग्रामीण और शहरी वोली के मिश्रित रूप प्रकट करते है जैसे—निकारो (निकालो), समारो (सँभालो), वखत (वक्त), महूरत (मुहूर्त) आदि।

चरुआ चढाया जा रहा है। कहारी आकर एक मटके मे पानी भर कर उसे चूल्हे पर चढाती है। जच्चा को पानी औटा कर पिलाया जाता है। इससे पेट मे कोई हानि नहीं होती। गीतो मे ऐसी वातो का उल्लेख कर ज्ञान-वर्धन ही किया जाता है—

भरा दो नीर चरुए मे, समय चरुए का आया है।
कहारी को वुला लीजे, नेग उसका गहा दीजै।
देर अव मत जरा कीजै, समय चरुए०
महूरत शुभ घडी आया, जनम लाला ने है पाया।
प्रफुल्लित होके मन भाया, समय चरुए० ॥
ससुर और सास जच्चा की, लगे वो दादी वच्चो को चुकाया नेग वेवाकी,
समय चरुए का आया है।
भरा चरुआ तुरत ही आ कहारी ने भी मन हरषा।
भई अति प्रेम की वरषा, समय चरुए०

सोहर के इन गीतो मे ग्रामीण और शहरी जीवन की छाप अलग ही दिखाई दे जाती है। यह गीत शहर की स्त्रियो का है। इसमे खड़ी बोली है.—

यशोदा हँस के कहती है, झुला दो लाल का पलना

इधर दादी उधर बाबा
बीच मे लाल का पलना

यशोदा हँस के कहती है, झुलादो लाल का पलना

इधर ताई उधर ताऊ
बीच मे लाल का पलना

यशोदा हँस के कहती हैं, झुलादो लाल का पलना

इधर चाचा उधर चाची
इधर मामा उधर मामी
बीच मे लाल का पलना

यशोदा हँस के कहती है, झुला दो लाल का पलना

इधर नाना उधर नानी
इधर मौसा उधर मौसी
बीच मे लाल का पलना

यशोदा हँस के कहती है, झुला दो लाल का पलना

बालक के लिए भाँति-भाँति के उपहार आते हैं। उपहारों मे मुख्य उपहार झुँझना ही माना जाता है क्योकि इससे बालक का मन बहलता है। बाबा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची आदि तरह-तरह के झुँझने लाये हैं—

झुँझना दे देउ लला के हाथ।
चाँदी का झुँझना सोने का झुँझना,
झुँझना बाजे दिन और रात ॥
सोने का झुँझना तेरे बाबा लामे, दादी खिलावे दिन रात
चाँदी का झुँझना तेरे ताऊ लामे, ताई खिलावे दिन रात
रूपे का झुँझना तेरे चाचा लामें, चाची खिलावे दिन रात
बढियासा झुँझना तेरे भैया लामें, भाभी खिलावे दिन रात
झुझना दे देउ लला के हाथ ॥

बालक बड़ा लाडला है। उसके लिए सोने का झुँझना आया है—

मेरो खेलेगो कुमर कन्हैया झुँझना सोने का मोरी आन।

सोने का झुंझना बाबा लाये,
दादी लेइ बलैया झुंझना सोने का मोरी जान ॥
जे झुंझना वाके चाचा लाये,
चाची लेत बलैयां झुंझना सोने का मोरी जान ।
जे झुंझना तेरे भैया लाये,
भाभी लेइ बलैयां झुंझना सोने का मोरी जान ॥

अब बालक पालने मे झूल रहा है। घर के सभी लोग उसे लाड़ से झुला रहे हैं। इस दृश्य को इस गीत मे अंकित किया है—

तू झूल मेरे ललना पलना में झूल ।
बाबा के आँगन मे गढ़ो है पालनो, दादी क्या झोटा लगावे फूल ।
तू झूल मेरे ललना पलना में झूल ।
ताऊ के आँगन मे गढो है पालनो, ताई क्या झोटा लगावे फूल ।
तू झूल मेरे ललना पलना मे झूल ।
चाचा के आँगन मे गढो है पालनो, चाची झोटा लगावे फूल ।
तू झूल मेरे ललना पलना में झूल ।
भैया के आँगन मे गढो है पालनो, भाभी के झोटा को करले कबूल ।
तू झूल मेरे ललना पलना मे झूल ।

जच्चा के लिये सास बाजार जाकर आवश्यक वस्तुयें लाती है। वह बड़े चाव से सभी वस्तुओं के नाम गिनती जाती है—

बहू माँगे सोठ की गाठरी मैं जाऊँ बजरिया ।
सिर पै गुडका भेला लाऊँ, हाथ मे घी का माँहरी । मैं०
पीठ पै लाऊ चामर महुअर, बगल मे लकड़ी ठाटरी । मैं०
हल्दी जीरा और अजमाइन दाँत मे दामा डाटरी । मैं०
केसर, जावित्री और पीपर, लाऊँ हिस्सा बाँटरी । मैं०

जच्चा के दूध कम या नही उतर रहा है। सास को इसकी बडी चिन्ता है। वह उसे जीरा दे रही है जिससे उसका दूध उतरने लगे और बालक अपनी माँ का दूध पीकर स्वस्थ हो।—

बहू ले ले सुहागिन जीरा, लला को दूध उतरे ।
दरवाजे बैठे ससुर जी, सासुल लाई जीरा । लला०
दरवाजे पै बैठे जेठजी, जिठानी लाई जीरा । लला०
दरवाजे पै बैठे नंदोई, ननदी लाई जीरा । लला०
दरवाजे पै बैठे देवर दौरानी लाई जीरा । लला०

वालक सारे घर का प्यारा है। वह सवका खिलौना है। वह गेंदा-चमेली के फूल सा कोमल है। तभी तो उसकी माँ उसकी वलैया ले लेकर कहती है—

लाला मेरो गेंदा चमेली का फूल।
दादा को प्यारो ललना लागे, दादी के दिल से कवूल। ला०
ताऊ कौ प्यारो ललना लागे, ताई के दिल से कवूल। ला०
चचा को प्यारौ ललना लागे, चाची के दिल से कवूल। ला०
भैया कौ प्यारौ ललना लागे, भाभी के दिल से कवूल। ला०

वालक के तेल की मालिश करना उसके स्वास्थ्य के लिए वड़ा लाभदायक होता है। जच्चा अपनी सास से तेल-मालिश करने की प्रार्थना करती हुई कहती है:—

मेरे लाला के मलि देऊ तेल, सासुल पैया परूँ।
वेला चमेली और आमला, सरसो का ले लेऊ तेल। सा०
हिना जुही मोगरा सन्तरा, करदो रेलम पेल। सा०
डालो लौंग गरम कर लीजें, जवही वनेगा खेल। सा०
मलमल गद्दी तुरत विछाओ, मेरे लला की उमर अखेल
देऊ गोद चौ देर लगाओ, मत मारो वोलका सेल। सा०

पुत्र-जन्म पर जच्चा अपने पीहर वालो से भेंट माँगती है। उसके पीहर वाले उस पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि तू तो सदैव ही बच्चे पैदा किया करती है, हम कहाँ तक भेंटे भेजा करें। इस गीत मे परिवार-नियोजन की वात कही गयी दिखाई देती है। अधिक वच्चे पैदा करने से आर्थिक कठिनाई हो सकती है। यह कठिनाई माँ-वाप को तो होती ही है साथ मे अन्य सम्वन्धियो को भी हो जाती है। उन्हे अनेक नेग देने पड़ते है.—

तैं तो उड़ि-उड़ि काग सुलाखने, तू तो उड़ि मेरे पीहर जा।
मेरे कहिओ वावुल समझाइ तो धीय रे माँगत पीअरौ
लाली नित-नित जनमोमी पूत, तो कहां ते लामे पीअरो
मैं तो मरूँगी जहर विस खाय, तो वावुल ने वोले मौसे वोलने
मेरी धी मेरी धी की मरैगी वलाय, तो हाल रँगाऊँ पीअरौ
मेरी कहियो माय समझाओ, तौ धीय रे माँगत लड़आ
वेटी नित-नित जनमोगी पूत, तो कहाँ तै लामे लड़आ
मैं तो मरूँगी जहर बिस खाय, तौ मैया ने मारे मोसे ताइने
मेरी धी मेरी धी की मरेगी वलाय, तो हाल वघाऊँ तो कूँ लड़आ
मेरे कहिओ विरन समझाए, तो भैना माँगत पीअरो

भैना नित-नित जनमोगी पूत, तो कहाँ ते लामे पीअरो
मैं तो मरूँगी जहर विस खाय, तो भइया ने मारे मोसे ताइना
मेरी कहिओ भभज समझाय, तो ननदी माँगे खीचरी
वीवी नित-नित जनमोगी पूत, तो कहा ते लामे खीचरी
मैं तो मरूँगी जहर विम खाय, तो भाभी ने वोले मोसे वोलने
मेरी वीवी मेरी वीवी की मरैगी वलाय हाल मिलाऊँ खीचरी
मेरी कहियो काकी समझाय- तो धीय रे माँगत पीसनो
वेटी नित-नित जनमोगी पूत, तो कहाँ ते लामे पीसनो
मैं तो मरूँगी जहर विस खाय, तो काकी ने वोले मोसे वौलने
मेरी धी मेरी धी की मरैगी बलाय, तो हाल वनाऊ तौ कूँ पीसनो
देवर वोले वोलने भाभी तेरे जन्मे न आओ छोछिक
और व्याहे न आयौ भात ।
मैं तौ चढ कोठे पै देखती, तौ वक्सन आमे का पेड
और गदहन आवै खीचरी
और गाडिन आवे पीसनो और कलसन आमे लडआ ।

चाँद को देखकर उसे लेने को वालक मचल गेया है। वह समझाने से नही समझता। वह वावा-दादी, ताऊ-ताई को पुकार-पुकार कर रोने लगता है। वालक की माँ सभी से प्रार्थना करती है कि वे वालक को गोद मे लेकर उसे चुप करने की कृपा करें :—

वादल मे चमके चाँद लाल मेरा रोवे
ले लो, ले लो सास रानी ले लो, ले लो, ले लो सुसर राजा ले लो
दादी जी कह के वोले । लाल मेरा रोवे,
वावा जी कहके वोले लाल मेरा रोवे । वादल०
ले लो लेलो जिठानी रानी लेलो, लेलो ले लो जेठ राजा लेलो
ताई जी कहकर वोले । लाल मेरा रोवे, ताऊ जी कहकर वोले
लाल मेरा रोवे । वादल मे०
लेलो लेलो देवर राजा लेलो दौरानी रानी लेलो
चाचाजी कहके वोले । लाल मेरा रोवे, चाचीजी कहकर वोले
लाल मेरा रोवे । वादल०
लेलो लेलो नन्दोई राजा लेलो, लेलो लेलो ननद रानी लेलो
भूआ जी कहकर वोले, लाल मेरा रोवे, फूफा जी कहकर रोवे
लाल मेरा रोवे । वादल०

ऐसा ही एक और गीत है—

चाँदनी मेरा रोवे कन्हैया, चाँद कहाँ से लाऊ री मेरा रोवे कन्हैया·····
लाल गये अपने बाबाजी कमरो, दादी री गोदी लेबो कन्हैया
चाँदनी मेरा रोवे कन्हैया, चाँद कहाँ से लाऊँ री
चाँद कहाँ से लाऊ री मेरा रोवे कन्हैया
लाल गये अपने ताऊ जी के कमरो
लाल गये अपने चाचा जी के कमरो
ताई री गोदी ले लो कन्हैया
चाची री गोदी ले लो कन्हैया
चाँदनी मेरा रोवे कन्हैया। चाँद कहाँ से०
लाल गये अपने ताऊ जी के कमरो
लाल गये अपने चाचा जी के कमरो
ताई री गोदी ले लो कन्हैया
चाची री गोदी ले लो कन्हैया
चाँदनी मेरा रोवे कन्हैया। चाँद कहाँ से०
लाल गये अपने फूफा जी के कमरो,
लाल गये अपने मौसा जी कमरो
भूआ री गोद ले लो कन्हैया
मौसी री गोदी ले लो कन्हैया। चाँदनी मेरा०
लाल गये अपने नानाजी के कमरो, लाल गये अपने मामाजी के कमरो
नानी री गोदी ले लो कन्हैया, भाभी री गोदी ले लो कन्हैया
चाँदनी मेरा············
चाँद कहाँ से लाऊँ री ······

माँ को केवल बालक ही तो नही खिलाना है। उसे उसे घर-बाहर के अन्य कार्य भी तो करने हैं। उसे यमुना-स्नान करना है, पानी भरना है किन्तु बालक माँ को नही छोड़ता। सास, ननद, जिठानी, देवर, पति आदि में से कोई भी उसे नही सँभालता। वह झीक कर कहती है :—

मैं जमुना कैसे जाऊँ मेरो रोवै कन्हैया
सासु नाँइ राखै, जिठानी नाँइ राखै,
राखै नाँइ बलमा, नाँइ राखै ननँदिया
वहुअल नाँइ राखै, नाँइ राखै ननँदिया
राखै नाँइ सइयाँ, नाँइ राखै देवरिया।

बालक छैः मास का हो चुका है। अब उसे अन्न खिलाना आरम्भ होने वाला है। उसे खीर चटा कर अन्न खिलाना आरम्भ होगा। उसकी माँ कितनी प्रसन्न है —

अन्न प्रासन होयगौ मेरे बारे लला कौ।
छ महीना कौ हैगयौ लाला, सातवाँ महीना होयरे ॥
पाचन शक्ती बढती आवे, दाँत निकासो होयरे।
सम्बन्धी अपने बुलवाए, जगर मगर सी होय रे ॥
मखमल फर्स विराजे पण्डित, हवन हुतासन होयरे।
दान दिए पण्डित यश गाए, जय, जय, जय, जय होय रे ॥

बालक एक वर्ष का हो गया। आज उसकी वर्षगाँठ है। आँगन मे चौक पूर कर, बालक को सजाकर चौकी पर बैठाया जायेगा :—

आज मेरे ललना की सालग्रह होय।
हरे हरे गोवर अगन लिपाऊँ, मोती की चोकीन पै पूरन नामरे होय। आज०
चौकी बिछाओ कलस भराओ, कचन कडे लाला पहरे फिर होय। आज०
बावा कहै जल्दी अन्न मँगाओ, यऊ दूध की पुन्य
कराओ गाता आरती की थारी धरी होय ॥ आज०
मैया लड रही नेग को, जर जेवर से गोदी भरी होय,
आज मेरे ललना की सालग्रह होय ॥

बालक और बड़ा हुआ। उसकी पट्टी पुजेगी। माता की इच्छा उसे उच्च और श्रेष्ठ शिक्षा देने की है। वह तभी तो कहती है :—

मेरौ पढने को जावैगौ लाल, पण्डित बुलवाओ।
पाँच वर्ष कौ हैगयौ लाला, कृपा करी कृपाल ॥ पण्डित०
पण्डित बुलाओ पट्टी पुजवाओ कुछ दक्षिणा देउ हाल ॥ पण्डित०
चितसे पण्डित इसे पढाना, ओ३म् ओ३म् का अर्थ बताना।
फँसे न बुरे बवाल ॥ पण्डित०
विद्या मे भरपूर लाल होय, चलें न चाल कुचाल।
पण्डित बुलवाओ मेरौ पढ़ने को जावेगौ लाल ॥

हिन्दुओं मे चूड़ाकर्म (मुण्डन) भी एक आवश्यक सस्कार है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवश' मे मुण्डन सस्कार का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

अथास्य गौदान विधेरनन्तर, विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुर[1]

---

१ रघुवंश ३।३३।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस मे राम के चूड़ाकर्म सस्कार का वर्णन किया है—'चूड़ाकर्म-कीन्ह गुरु आई ।'[1] मुण्डन षोडश सस्कारो मे से एक प्रसिद्ध सस्कार है। इस सस्कार से पूर्व बालको के बाल काटना निषिद्ध है। बालक के जन्म के बाद तीसरे, पाँचवे या सातवे-विषम वर्ष मे ही इस कार्य को सम्पादित किया जाता है। इससे अधिक विलम्ब करना अनुचित है।

यह सस्कार किसी पवित्र तीर्थ स्थान मे, देव-स्थान मे अथवा नदी के किनारे सम्पादित किया जाता है। आगरा के कुछ लोग सोरो या बालाजी मे अपने पुत्रो के मुण्डन कराते हैं। अधिकांश लोग यमुना पर यह सस्कार कराते हैं।

मुण्डन के गीतो में कही तो कोई स्त्री इन्द्र भगवान से जल बरसाने की प्रार्थना करती है, कही बालक की बुआ अपने भतीजे के मुण्डन मे सम्मिलित होने जा रही है, कही बालक की बहिन अपने पिता से नेग माँग रही है, कही बालक की बुआ नेग के लिये हठ किये बैठी है, कही बालक के मुण्डन के लिये किये जाने वाले प्रबन्धो का वर्णन होता है। इस प्रकार विविध कार्य-कर्मो का उल्लेख करने वाले मुण्डन-गीत अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मुण्डन का एक गीत इस प्रकार है :—

मोरे ललना को मुण्डन होय, सखी गाऔ।
ललना की आवैं बुआ मनभाई,
ललना की भैना हू हरसाय आई,
ढोलक धुनकधुंन होय, सभी मगल गाऔ।
मुण्डन कौ माँगैं है नेग हठीलो
सैंयाँ की भैना है गोरी छबीली
लूटे सबी मिल मोय, सखी मंगल गाऔ।

जनेऊ उच्च वर्गीय हिन्दुओ मे एक प्रधान सस्कार माना जाता है। इसमे विवाह जैसे ही पूजा-पाठ, तेल-उबटन इत्यादि के कार्य होते हैं, केवल बारात नही चढ़ती और वधु नही आती। विशेषकर ब्राह्मण लोग बड़े उत्साह से अपने पुत्रों का जनेऊ करते हैं। सम्पन्न लोग काशी से किसी पण्डित को बुलाकर यह संस्कार कराते हैं। इस संस्कार में बाह्याडम्बरो पर मूल सिद्धान्तो की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है। जनेऊ देने के पूर्व बालक का 'चूड़ाकर्म' संस्कार होता है। उसे उबटन और तेल लगाने के उपरान्त स्नान कराया जाता है और वैदिक ब्राह्मण उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराते हैं। यज्ञोपवीत धारण कर बालक ब्रह्मचारी गुरुकुल में पढने के लिये

---

१. राम चरितमानस (बालकाण्ड)—तु० दा०।

धन की भिक्षा माँगता हैं। वह अपनी माता, कुल की महिलाओ तथा अन्य सम्वन्धियो के आगे झोली फैला कर भीख माँगता है। यह भीख तीन वार माँगी जाती है। पहली भीख आचार्य को दी जाती है, दूसरी पिता को और तीसरी माता को। सम्पन्न घरानो मे भीख मे हजारो रुपये मिल जाते हैं। भिक्षा माँगने के वाद ब्रह्मचारी वालक काशी या काश्मीर विद्या पढ़ने चलने लगता है। उसके दो-एक पग आगे वढाने पर ही उसके माता-पिता उसे रोक लेते हैं। वालक रुकना नही चाहता। उसे मुँह माँगा पुरस्कार देने का वचन दिया जाता है तव वह लौट आता है। इस प्रकार उसका ब्रह्मचर्य आश्रम कुछ ही मिनटो मे समाप्त हो जाता है। इस अभिनय के उपरान्त उसका समावर्तन सस्कार किया जाता है। उसके कौपीन, पादुका, मृगचर्म आदि को उतार कर उसे नवीन मूल्यवान वस्त्र पहिनाये जाते हैं। आचार्य उसके कान में गुरु मन्त्र फूँकते है और इस प्रकार यह यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार समाप्त होता है। प्राचीन काल मे वालक के चार सस्कार होते थे—चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ और समावर्तन। ये चारो सस्कार भिन्न-भिन्न समयो पर किये जाते थे किन्तु अव ये चारों सस्कार कुछ ही समय मे सम्पन्न कर दिये जाते हैं।

जनेऊ के गीतो मे कही भीख माँगने का वर्णन मिलता है, कही काशी जाने का, कही जनेऊ के विविध कृत्यो को करने का तो कही माता-पिता के आनन्दोत्साह का वर्णन होता है। यह आनन्द का अवसर होता हैं अतः इसमे करुण रस नही रहता।

मनु के अनुसार मनुष्य जन्म से शूद्र होता है और सस्कारो के वाद ही वह 'द्विज' वनता है।[1] प्राचीन काल मे इस सस्कार का वडा महत्त्व था। अव भी उच्च वर्ण के लोग इसे वड़े उत्सव के साथ करते है।

जनेऊ को 'यज्ञोपवीत' और 'उपनयन' भी कहते है। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है वह सस्कार जिसके द्वारा छात्र गुरु के समीप लाया जाता है।

उपनीयते गुरुसमीप प्रापयते अनेनेति उपनयनम्।

पूर्वकाल मे यज्ञोपवीत सस्कार के वाद वालक गुरु के पास गुरुकुल मे भेज दिया जाता था। यज्ञोपवीत धारण करने के समय से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतो अर्थात् नियमो का पालन करना आवश्यक होता है, इसलिए इसे 'व्रत-वन्ध' भी कहते है जिसका अर्थ है व्रतो अर्थात् नियमो के द्वारा वाँधा गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और खत्रियो के लिए यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक होता है।

---

१—जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते—मनुस्मृति।

प्राचीनकाल में जो जनेऊ पहिना जाता था वह अपने हाथ से कते हुए सूत का ही बना होता था। जनेऊ के अनेक गीतों मे सूत कात कर जनेऊ बनाने का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की अवस्था मे, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवे वर्ष मे और वैश्य बालक का बारहवे वर्ष मे यज्ञोपवीत करना शास्त्र सम्मत है।[1]

इस सस्कार के विषय मे यह भी विधान है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत वसत मे, क्षत्रिय का ग्रीष्म मे और वैश्य का शरद ऋतु मे करना चाहिये।[2]

जनेऊ होने के समय की एक गीत है :—

होय जनेऊ आज हमारे बरना कौ।
पण्डित जी ने वेदी रचाकर, मन्त्रन की आवाज।। हमारे०
बोले स्वाह आहोती छोड़ी, है रहे मगल गाज।। हमारे०
मात पिता और कुटुम कबीला, सबही रहे विराज।। हमारे०
ओ३म सदगुरु मन्त्र दै दिये, बेदन रीति रिवाज।। हमारे०
करौ जनेऊ खुश भये मन मे, रीति नीति कें काज।। हमारे०

जब जनेऊ धारण कर ब्रह्मचारी काशी पढने जाना चाहता है तो स्त्रियाँ गीत गाती है :—

मेरे बन्ने का होवै जनेऊ,
बनो है तो ब्रह्मचारी।
बाँधे कोपीन, माँगै है भीख,
अजब है ब्रह्मचारी।
रोको-रोको री वाकी ताई,
काशी जावै री ब्रह्मचारी।
रोको-रोको री वाकी बूआ,
घर त्यागै री ब्रह्मचारी।
कैसो दीनो है मन्तर बुझाय,
गुरु जी रोको ब्रह्मचारी।

---

१—अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनेत, गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।
२—वसन्ते ब्राह्मणमुपनेत। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकाल मेके।
—शतपथ ब्राह्मण

**विवाह :—**

विवाह सभ्य समाज का आवश्यक संस्कार है। ससार भर मे इसका प्रचलन है, भेद केवल वैवाहिक प्रणालियो का है। कही विवाह केवल सक्षिप्त कार्यक्रमें द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है तो कही महीनो की तैयारियो के बाद बड़ी धूम-धाम, बाजो, पटाखों, गाने-बजाने, दावतो और महफिलों के साथ हजारो-लाखो रुपये व्यय कर विवाह संस्कार होता है। हिन्दुओ मे विवाह सबसे महगा पडता है। विवाह का सारा बोझ कन्या के पिता पर ही अधिक पडता है। लडके का पिता अपने सम्बन्धियो और मित्रो की भारी भीड़ ले कन्या-पक्ष वालो पर स्वागत का भारी उत्तरदायित्व डालने मे नही हिचकता। दहेज मे हजारो रुपये नकद और हजारो का सामान लेकर भी लड़के वालो का मन नही भरता। सास-ननद बहू को सदा ताने ही दिया करती है।

लोकगीतो मे वैवाहिक रीति-रिवाजों, बरात, बरातियो, समधी, सास, ननद आदि के उल्लेख होते है। ज्यौनार और ज्यौनार के अवसर पर गायी जाने वाली गालियाँ विशेष महत्व रखती है। कन्या-पक्ष मे गाये जाने वाले गीत वर-पक्ष के गीतो से भिन्न होते हैं। तेल चढ़ने से लेकर सुहागरात तक के गीत लोकगीतो मे मिलते हैं। कन्या-पक्ष के गीत वरपक्ष के गीतों की अपेक्षा अधिक करुण और मधुर हैं। बेटी की विदा के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में तो करुण रस का इतना संचार हो जाता है कि जिनसे पत्थर हृदय भी पिघल जाते है। वर-पक्ष के गीतो मे उल्लास, उत्साह, धूम-धड़ाका और शोभा-सजावट की बातें अधिक हैं।

विवाह के गीतों में कहीं-कहीं ऐसी प्रथाओ के वर्णन मिलते हैं जो भारतीय नहीं कहे जा सकते। हिन्दुओ मे तो ये प्रथाएँ संभवत कहीं नहीं हैं। भोजपुरी के एक लोकगीत मे वर स्वयं कन्या के घर कन्या माँगने जाता है। गीत इस प्रकार है —

> पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम कइले जालें।
> कनव बाबा चौपरियां ए जोगी, बइसे आसनं मारी ॥
> हम न बिआइन अइली ए बाबा, तोहांर बिटिया कुवाँरी।

यह ढग तो यूरोपियन है जिसमे वर की ओर से विवाह का प्रस्ताव रखा जाता है। किन्तु हो सकता है कि यह गीत विवाह के समय का हो जब कि वर आँगन मे बैठा हुआ हो और महिलाएं इसे गा रही हो।

विवाह के गीतो मे कही वर अल्पवयस्क है, कही दोनो युवक-युवती है तो कहीं पति बूढा है और पत्नी जवान। उनकी आयु के इन अन्तरो के कारण उनके मनोभावो मे भी बहुत अन्तर है। कही कन्या अपने पति के अल्प-वयस्क होने पर दुःख प्रकट करती है तो कही बूढा होने पर उस पर व्यंग्य करती है। कही वह अपने

पिता से सुन्दर वर ढूढ़ने की प्रार्थना करती है, कही अधिक दूर नगर मे विवाह न करने का निवेदन करती है तो कही दूर नगर मे विवाह होने पर नाई पर क्रोध करती है।

विवाह के गीतो मे शिव जी की वरात और राम-विवाह के उल्लेख वहुधा मिलते है। हास-परिहास के गीतो और गालियो मे समधी के लिये दशरथ, सास के लिये कौशल्या, देवर के लिये लक्ष्मण और वर के लिये राम के नाम प्रयुक्त होते हैं। तुलसी की "वरवै रामायण" और "रामलला नहछू" में से अनेक भाव और अनेक पक्तियाँ लेकर भी कुछ विवाहगीत वनाये गये दिखायी देते हैं।

व्रज मे चतुर्वेदी व्राह्मणो के विवाह मे गाया जाने वाला एक गीत है जो कन्या की विदा के अवसर पर तीसरी वरात के अन्त मे गाया जाता है। ढोलिये से कहा जाता है कि वह जोर-जोर से ढोल वजाये:—

ढोलियरा गहगढ़ ढोल वजाओ
नाऊ कौ जीतौ वोलो दे
वारीकौ जीतौ पातर दे
कुम्हार को जीतौ माँट दे
वावुल को जीतौ भात दे
ढोलियरा गहगढ ढोल वजाओ

विवाह के ही प्रसग मे नवयौवना से सम्वन्धित गीत गाए जाते हैं।

निम्नलिखित गीत वय-सधि काल का है। लड़की मे यौवन के चिन्ह अकुरित हो रहे हैं। उसके मन मे काम-वासना जाग्रत होने लगी है। उसे अपने यौवन को सँभालने वाला चाहिए। वह अपनी सखी से कहती है:—

मेरी उठी भैना छतिया कैसे सपरी
उठती छतिया देख भैन मे मन ही मन सकुचाऊँ
मात-पिता ने व्याह न कीनों कैसे मन समझाऊँ
सोचूँ दिन और रतियाँ, कैसे सपरी
दिन तो देऊँ विताय खेल में रात कूँ वैरिन कोपै
डाटे तें ना डटे वहन हा चढी जवानी मोपे
किनते कहूँ मन की वतियाँ, कैसे सपरी
दिन दिन दूनी चढै जवानी वैरिन मोय सतावै
कहा करूँ कित जाऊँ भैना मोय कोउ न जतन वतावै
ज्वानी करै वुरी गतियाँ, कैसे सपरी

लड़की और बड़ी हुई। वह अब बीस वर्ष की हो चुकी है किन्तु उसका विवाह नही हुआ है। उसकी अन्य सखियो के विवाह हो चुके है किन्तु वह अभी तक कुआरी ही है। वह अपने यौवन के उभार को कैसे सँभाले ? तभी तो वह कहती है—

बीती मइया के जवनियाँ, कैसे सपरी
सोरह, सतरह, और अठारह है गई बीस बरस की
मोरि जवानी डटै न डाटै छतियाँ भरि गई रस की
तगी डारे है मदनिया, कैसे सपरी
सबी सहैली गई सासुरे मैं पीहर मे रोऊँ
सब तो सोवे बलम सग, में हाय अकेली सोऊँ
मोकू पड़े न कलनिया, कैसे सपरी
बिन पीतम के डटे न जोवन कैसे जाकूँ डाटूँ
करवट बदल-बदल के रतियाँ जैसे तैसे काटूँ
मेरी चलै ना बसनियाँ, कैसे सपरी।

लडकी को अपने रूप और उभरते यौवन को दिखाने की इच्छा रहती है। निम्नलिखित पंक्तियो मे वय-संधि काल की सद्य-स्नाता का वर्णन है। विद्यापति की सद्य-स्नाता नायिका से इस लोकगीत की नायिका कम नही—

बाबाजी के कमरे मे बन्नो ठाडी सुखावै केश।
बालाजी बन्नो ठाडी सुखावै केश॥
एक लड़का साहूकारो का, मेरी गली मे नित आवै, नित जाए।
बालाजी वह तो नित आवै, नित जाए॥ बन्नो०
मेवा लावै रूमालो मे, मेरी झोली मे रख-रख जाए।
बालाजी मेरी झोली मे रख-रख जाए॥ बन्नो०
ताऊ जी के कमरे मे बन्नो ठाडी सुखावै केश।
बाबाजी के कमरे मे बन्नो ठाड़ी सुखावै केश॥

कन्या के यौवन मे विकास देखकर घर के लोगो को चिन्ता हो रही है उसके तुरन्त विवाह करने की। तभी तो कहा जा रहा है.—

मडये तेरे बीच, लाड़ो ने केश सुखाये।
बाबा चतुर वर ढूँढो, सुघर वर ढूँढो ;
दादी लेगी कन्या दान, लाड़ो ने केश सुखाये।
बाबुल चतुर वर ढूँढो, सुघर वर ढूँढो,
मइया लेगी कन्यादान, लाड़ो ने केश सुखाये।

नव-यौवना ने शृंगार किया है। वह शृंगार कर किसी को अपना रूप दिखाना चाहती है। स्त्रियाँ उसी के रूप-शृंगार का वर्णन इस गीत में कर रही हैं :—

चाँदनी है रैन बन्नो बैठी है दरखत के नीचे।
झूमर भी पहने बन्नो, किलफें भी पहने,
बिन्दी लगाये सभाँल, बन्नो बैठी है दरखत के नीचे।

वर खोजने के पश्चात् लड़की का मड़वा बनाया जाता है। मड़वा बनाते समय स्त्रियाँ हास-परिहास और व्यंग्य के गीत गाती हैं। वे लड़की की सास-ननद पर व्यंग्य करती हुई गा रही हैं।

भला उमहति आवै सोहाग बिरला।
वाके बाबा नें लगायो सोहाग बिरला,
दादी रानी सींचै भरि मडुआ।
उस मड़वे में बन्नो रानी खेले गुड़िया,
वाकी सास—ननदिया ह्वै गईं बुढ़िया।
उस मड़वे में बन्नो मेरी राँधै लपसी,
वाकी सास ननदियाये ले भए तपसी।
उस मड़वे में बन्नो रानी राँधै लड्डुआ,
वाकी सास ननदिया ये लै गए मडुआ।

बरात द्वार पर आयी किन्तु कन्या गोरी और वह काला है। घर के लोग विवाह करने को तैयार नहीं किन्तु कन्या को तो वह काला ही प्यारा है। वह उसी से विवाह करेगी अन्यथा विष खाकर मर जावेगी। वर कृष्ण है और कन्या रुक्मणी। इन्हीं को प्रतीक मान कर यह गीत है :—

मेरी बन्नो रूप-सरूप तो बर पायौ साँवरिया
बन्नो के बाबा यों उठि बोले नाहिं करोंगो ब्याह
ऊपर ने वह बन्नो बोली खाय जहर मरि जायँ
भाँवरियाँ मेरी हरे-हरे, भाँवरियाँ मेरी हरे-हरे
भाँवरियाँ मेरी जाहि से पड़ें
बन्नो के ताऊ यों उठि बोले नाहिं करोंगो ब्याह
ऊपर से वह बन्नो बोली खाय जहर मरि जायँ
भाँवरियाँ मेरी हरे-हरे, भाँवरियाँ मेरी हरे-हरे
भाँवरियाँ मेरी जाहि से पड़ें

कैसे होयगौ रुकमिणी को व्याह
जुरैंगौ जामे हरे-हरे जुरैंगौ जामे हरे-हरे
जुरैंगौ जामे दल भारी
हाथ जोड़ि बाके बावा ठाडे पत राखौ भगवान

इधर तो वेटी वाले दुःखपूर्ण वातावरण में है उधर लड़के के यहाँ आनन्द मनाया जा रहा है। वह बन्ना बना हुआ तैयार खडा है। उसके रूप और ऐश्वर्य का वर्णन हो रहा है :—

हजारी बन्ना तू भलो आयो रे।
हाथी तौ लायौ बन्ना कजरी देस कौ
घोडा तौ लायौ बन्ना कावुल देस-कौ
नौवत तौ लायौ बन्ना बूँदी देस-की
सोना तौ लायौ बन्ना लका देस कौ
रूपो तौ लायौ बन्ना वादल देस-कौ
मोती तौ लायौ बन्ना-सूरत देस कौ
चुन्नी तौ लायौ बन्ना दरियावाद की
सालू तौ लायौ बन्ना दक्खिन देस-कौ
मिस्सी तौ लायौ बन्ना गुजरात की
दासी तौ लायौ बन्ना चचल देस की
दुलहिन तौ लायौ बन्ना सिहलदीप की।

उपर्युक्त गीत मे देश के उन स्थानो का वर्णन हुआ है जहाँ-जहाँ की वस्तुएँ प्रसिद्ध है। यहाँ लका और सिहलद्वीप को अलग-अलग देश माना गया है। अनेक लोगो का विश्वास है कि लका ही सिहलद्वीप है किन्तु इस गीत मे लका को सोने के लिए और सिहलद्वीप को पद्मिनी नारी के लिए प्रसिद्ध माना गया है।

निम्नलिखित गीत 'शिवजी' की वरात का वर्णन करता है। यहाँ बन्ने को शिव जैसा औघड वताया गया है। उसकी सजी-सजाई वरात मे भी मीन मेख निकाली जा रही है।

वरना हमे न भावै री।
और सवारी भई न पैदा, वैल पै चढि कै आवै री॥
वाघवर को झगा पहरौ, सर्प को मौर झुकावै री।
मुडमाल कर ककन वीछू, नैंम तीनो मटकावै री॥
सीगी सेली नाद चौपिया हरियल भाँग चवावै री।
अद्भुत भेष भूत गण सग मे, नाच कैं गीत सुनावै री॥

यह लोकगीत 'दादरा' मे गाया जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि लोकगीतकारो को ताल-स्वर का भी पर्याप्त ज्ञान रहता था।

जब कोई लडका प्रथम बार किसी बारात मे जाता है तो उसकी मां इस प्रसन्नता में महिलाओ को आमन्त्रित कर गीत गवाती है। ये गीत 'घोडी' के गीत कहे जाते हैं।

लड़के का विवाह होते समय भी जब घुड़चढी होती है तो 'घोड़ी' के गीत गाये जाते है।

निम्नलिखित 'घोड़ी-गीत' आगरा नगर की स्त्रियॉ बहुधा गाती है :—

मेरी बन्ने की घोड़ी ने जुलम किया इन्दर जेल का फाटक तोड दिया।
अपने बावा का हिरदय बस मे किया दादी रानी का हिरदय तोड दिया।
अपने ताऊ का हिरदय बस मे किया ताई रानी का हिरदय तोड दिया।
(आगे इसी प्रकार नाम जोड-जोड़ कर गाया जाता है।)
ऐ घोड़ी ले चल किनारी बाजार ऐ घोडी ले चल बाजार
ऐ घोड़ी आगे तुम चलोगी पीछे से बावा हुसियार।
घोडी ले चल किनारी बाजार।
ऐ घोडी आगे तुम चलोगी पीछे से ताऊ हुसियार। घोडी०
ऐ घोड़ी आगे तुम चलोगी पीछे से बाबुल हुसियार। घोडी०
ऐ घोड़ी आगे तुम चलोगी पीछे चाचा हुसियार। घोड़ी०
ऐ घोड़ी आगे तुम चलोगी पीछे भैय्या जीजा हुसियार। घोडी०

(आगे इसी प्रकार नाम जोड-जोड़ कर गाया जाता है)

बन्ने की घोडी का एक और गीत है। इस गीत मे घोड़ी की वेश-भूषा का वर्णन है। घोडी सजी हुई खडी है। सखियाँ उस घोडी की प्रशसा करती हुई गा रही है :—

बन्ने की घोड़ी तेज बन मे अकेली खडी
शीश तेरे ककरे जी चीरी लडियाँ सँभालू तेरी खडी
गल तेरे सोने का तोडा जुगनूँ सँभालू तेरी खडी
अग तेरे मखमल की चोली झगा सँभालू तेरी खडी
हाथ तेरे सोने की घडियाँ चैन सँभालू तेरी खडी
पैर तेरे रगरेजी जूता मोजे सँभालू तेरी खड़ी
बन्ने की घोड़ी तेज बन मे अकेली खडी।

वन्ने के लिये सुन्दर सजी हुई घोडी लायी गयी है। सब पूछते है कि यह घोड़ी कौन लाया है और किसके लिए लायी है ? उत्तर मे घर के सभी लोगो के नाम लिये जाते हैं :—

क्या चतुर सुन्दरसी घोडी क्या खड़ी बजार मे
किन्ने बुलाई किन्ने सजाई किनके कारण आई है
बाबा बुलाई दादी सजाई वन्ने के कारण आई है
ताऊ बुलाई ताई सजाई वन्ने के कारण आई है
क्या चतुर सुन्दर सी घोडी, क्या खडी बाजार मे।
(इसी प्रकार सबके नाम लेकर यह गीत आगे बढाया जाता है।)

निम्नलिखित गीत मे वन्ने की सजावट के लिये लाई जाने वाली वस्तुओ के नाम लिये गये है। वन्ने को मनाने के लिये अनेकानेक आभूषण मँगाने के वायदे किये जा रहे है —

रूठे मत वन्ने घोडी मे तुझको मँगाय दूँगी
कान तेरे सच्चे मोती कुण्डल से नीलम जडाय दूँगी
गल तेरे रत्नो की माला सोने मे उसे पुवाय दुँगी
कर सोहे सोने को ककंन हल्दी मैं तुझपै चढाय दुँगी
कटि मे पट रेसम का सोहे जामा केसरिया पहनाय दुँगी
सग तेरे वन्नी का डोला वन्नी पै दौलत लुटाय दुँगी
रूठे मत वन्ने घोडी मैं तुझको मँगाय दुँगी।

वन्ना रामचन्द्र जी के समान सुन्दर और श्रेष्ठ है तथा वन्नी सीता जैसी है। स्त्रियाँ वर के रूप मे भगवान राम की ही रूप-माधुरी का वर्णन कर रही है :—

वन्ना रघुनन्दन के कर मे कडे पडे री रत्नो से जडे
दूल्हा बन के मन्डप बैठे दसरथ राजकुमार
वाम अग सीता जी बैठी मन मे खुशी अपार
मन्डप सोने के खडे
पडे री रघुनन्दन के कर मे कडे
वेद रीति से भावर हरि ने ली सीता सग डार
रघुवर गमन अवधपुरी कीन्हो आए कौसल्या द्वार
मात किए दान बड़े
वन्ना रघुवर वनी जानकी जोडी जुगल अनूप

मनमे सुमर सदा तुम लेना अवधपुरी का भूप
भरे दौलत से घडे।
वन्ना रघुनन्दन के कर में कडे पड़े री रत्नो से जड़े।

निम्नलिखित गीत मे वन्ने और वन्नी पर मधुर व्यंगों की बौछारें की जा रही हैं। वन्नी का रूठना और वन्ने का मनाना बड़ा मन-भावना है:—

वन्ना छज्जे-छज्जे डोले, बन्नी मुख ते न बोले
बन्ना हाथ जोड़ता डोले, बन्नी मुख ते न बोले
वन्ना लड्डू लातौ डोलै बन्नी मुख ते न बोले
वन्ना रसगुल्ला लातौ डोलै वन्नी मुख ते न वोलै
बन्ना पेडा लातौ डोलै बन्नी मुख ते न वोले
बन्ना इमरती लातौ डोलै वन्नी मुख ते न बोले
वन्ना खुरचन लातौ डोलै बन्नी मुख ते न वोले
वन्ना छज्जे छज्जे डोलै वन्नी मुख ते न वोलै।

विवाह-गीतो मे वाल-कृष्ण को माध्यम मानकर एक वड़ा मधुर गीत मिला है। इस गीत मे बालक कृष्ण माता यशोदा से कहते हैं कि मेरा विवाह करदे मेरे लिये गोरी सी दुलहिन मगा दे। इस गीत मे वडे सरस रूप मे यह दिखाया गया है कि विवाह के वाद लडका अपनी पत्नी के प्रेम मे कैसा मुग्ध रहता है। वह अपने घर वालो की भी चिन्ता नही करता:—

मैया कर दे री मेरो, व्याह, मँगाय दै दुलहिन गोरी सी।
गोरी गुनवारी होय, भोरी सी विचारी,
झलकारी नथ वारी, वडे गाँव की लली
लली ढूँढ दै री माय, यामे तैरो कहा जाय
झट दुल्हा वनाय, वात मान ले भली
मलि छोटे हाथन वीच, रचाय ते मेहदी थोरी सी
मैया कर दे मेरो व्याह, मँगाय दै दुलहिन गोरी सी।
थोडी सी वरात ग्वाल-वाल पाँच-सात
मल हल्दी मुँह गाल, सिर सेहरो धराय
धाय पूरी कर रीत गोपी गाय लेंगी गीत
दै दै नयो पट पीत वापै रेसमी झगा
धर मुकुट व्याह घर लाऊँ, कछाय दै कछनी कोरी सी
मैया कर दै मेरो व्याह, मँगाय दै दुलहिन गोरी सी।
कोरी करै वात बुरी वलदाऊ भ्रात

ले न जाऊँगो वरात राखै कवहूँ न मेल
राखै कवहूँ न मेल यासै मोरो कहे तू
झट ढूँढ ले री वहू यासै वन जाय खेल
खेलन वा दिन घर आई, काहू की छोरी गोरी सी
मैया कर दै मेरो व्याह, मँगाय दै दुलहिन गोरी सी
गोरी ऐसी ढुँढवाय, जो गोदी मे बिठाय
रूठ जाऊँ तो मनाय, कर राखे वस मन
वात वावा की न मानै, और तेरी हू न मानै
हौले-हौले वतरावै आवै वातन मे रस
रस करकै प्रीत ऐसी होय जैसे चन्द्र चकोरी सी
मैया कर दै मेरो व्याह मँगाय दै दुलहिन गोरी सी

वन्ने के मेहदी रचाई जा रही है। उसके लिए दिल्ली, वनारस और मेरठ से मेंहदी लाई गई है—

वन्ना मेरा फूल गुलावी मैं मेहदी लाई रचने को।
रग रँगीली मेहदी लाई, द्वारे पै ठाडी सितावी ॥ मैं०
दिल्ली से लाई, वनारस से लाई, मेरठ से लाई जवावी ॥ मैं०
वावा वुलाऔ नेग दिलाऔ, लामै तिजूरी की चावी ॥ मैं०
वन्ना मेरो फूल गुलावी मैं मेहदी लाई रचने को ॥ मैं०

वन्ने की मेहदी मे क्या-क्या विशेषतायें हैं, उसके लिए घर के लोग कितने प्रसन्न हैं, इसका एक गीत है—

वन्ना मेरी मेहदी वनी मजेदार।
वन्ना तेरे वावा ने सूत मँगाई, वन्ना तेरी दादी वलिहार
वन्ना तेरे ताऊ ने सूत मँगाई, वन्ना तेरी ताई गई वलिहार
वन्ना तेरे चाचा ने सूत मँगाई, वन्ना तेरी चाची गई वलिहार
वन्ना तेरे भैया ने सूत मँगाई, वन्ना तेरी भाभी गई वलिहार'।

लडके वाले के यहाँ 'वन्ना' गाया जा रहा है तो लडकी वाले के यहाँ 'वन्नी' के गीत होते हैं। लड़की सवकी लाडली है इसलिए उसे 'लाडो' कहा जा रहा है। उसके लिए सुन्दर और योग्य वर ढूँढने के लिए वावा, पिता, ताऊ, चाचा आदि का जाना इस गीत मे वताया गया है—

लाड़ो मेरी फूल चमेली ढूँढ कर वर सुन्दर सा लाना।
लाड़ो के वावा ढूँढन जामे, दादी की गोदी मे खेली। ला०
लाड़ो के ताऊ ढूँढन जामे, ताई की गोदी मे खेली। ला०
लाडो के चाचा ढूँढ़न जामे, चाची की गोदी में खेली। ला०
लाड़ो के भैया ढूँढन जामे, भाभी की गोदी मे खेली। ला०

लाड़ो वड़ी सुन्दर है। वह चाँदनी के समान गोरी और मधुर है। उसके लिये आरसी लाने की वात कही जा रही है। वह घर भर मे सभी की प्यारी है। यह गीत भी एक परम्परा का गीत है। इसमे मौलिकता अधिक नही है। इसमे 'फूल हजारी' शब्द दृष्टव्य है। साधारण फूलो और वडे फूल मे जो अन्तर होता है वही इस लडकी और साधारण लड़की में है :—

लाडो मेरी चन्द उजारी मैं आरसी लाय देती।
वावा की प्यारी, दादी की प्यारी, सुन्दर राजकुमारी। मैं०
ताऊ की प्यारी, ताई की प्यारी, प्यारी है फूल हजारी॥ मै०
चाची की प्यारी, चाचा की प्यारी, प्यारी है नैनन की तारी। मैं०
भैया की प्यारी, भाभी की प्यारी, प्यारी है लाडो हमारी। मै०

लड़की वालो की ओर से पीली चिट्ठी भेजने की तैयारी की जा रही है। पीली-चिट्ठी मे उन सब मगल-कार्यो का वर्णन रहता है जो कन्या के घर वाले करेंगे। वैसे ही मंगल कार्य उन्ही दिनो में लडके वाले के यहाँ इसी 'पीली चिट्ठी' के आधार पर होते है। उस पीली चिट्ठी मे मुख्य-मुख्य वाते क्या हो? इनका उल्लेख किया जा रहा है .—

लाड़ो की पीरी चिट्ठी लिखौ वहु भाँति बनाई।
सिद्धि श्री सिरनामा लिखके, रामनाम की पट्टी। लिखो०
यह रास सूरज चन्द्रमा, सब वृहस्पति की पट्टी॥ लिखो०
कौन जगह राहु वास करत है, कन्या रासकी पट्टी॥ लिखो०
लाड़ो की पीरी चिट्ठी लिखौ वहुभाँति वनाई॥

विवाह से कई दिन पूर्व घर मे ढोलक वज उठती है। रोज़ रात को गीत गाये जाते हैं। ज्यो-ज्यो विवाह का दिन समीप आता है त्यो-त्यो कार्य-क्रम भी परिवर्तित होते चलते हैं। निम्नलिखित गीत 'रतजगे' का है। यह 'रतजगा' कन्या और वर दोनो के यहाँ होता है। रातभर जाग कर स्त्रियाँ मगल गीत गाती है। ऐसा ही यह गीत है :—

सब मगल गाओ भैन हमारे आज रात जगी ।
बाती डारी दिया सम्हारी सुनो हमारे बैन ।
भरके तेल धरौ सरसो का जभी परेगा चैन ॥
सखी सब रात खँगी । सब०
भट्ठी खोद लेउ आँगन मे और जगे कोई है न ।
अपने अपने नेग चुकाऔ करूँ जिगर मे चैन ॥
जेई ढगचार लगी । सब०
आज सवेरे तेल पवैगा जग लेउ सारी रैन ।
करौ बडे बडे पूआ पूरी पतरौ करके फैन ।
खाँड खटसार पगो । सब०
चाचा चाची दादा दादी भैया भाभी भैन ।
नाना नानी मामा माँई मौसी गुँचे द्दैन ।
कुटम परिवार जगो । सब०

लड़के पर हल्दी चढाई जा रही है । घर की सभी स्त्रियो को बुलाकर भिन्न-भिन्न वस्तुएँ मँगाई जा रही हैं । मगल गीतो के बीच हल्दी चढाया जाना बड़ा आनन्दायक लग रहा है—

बरनापै हरद चढ़ाऔरी सब आऔ सहेली ।
हल्दी केसर रोरी मँगाओ, थारी मे धरके लाओरी । सब०
दादी चाची माता बुलाओ, बूआ को तुरत बुलाओरी । सब०
पीला रग सुघड सोने के बाले तुम पहनाओरी । सब०
लाकै हल्दी रोरी खस खस, महअट तुरत लगाओरी । सब०

बन्ने के द्वार पर शहनाई बज रही है । उसके लिये मालिन सेहरा लाई है, दर्जिन वस्त्र सी कर लाई है, मोचिन जूते बनाकर लाई है और तमोलिन पान के बीडे बना कर लाई है । इस गीत मे ये सब बाते बडे भोले और स्वाभाविक ढग से कही गयी हैं :—

नौबत बाजे बन्ने के द्वार ।
बन्ना तेरी मालिन खडी दरवाजे,
बढिया सेहरा किया तइयार । नौहबत०
बन्ना तेरी दरजिन खड़ी दरवाजे,
बढिया जोडा किया तइयार । नौहबत०
बन्ना तेरी मोचिन खड़ी दरवाजे,
बढिया जूता किया तइयार । नौहबत०

वन्ना दरवाजे खड़ी तमोलिनियाँ
वढिया वीड़ा किया तइयार । मौहव्वत०

विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला एक और 'सेहरा' है :—

वन्ने सेहरौ तुम्हारो गूंधि लाई रे मालिनियाँ तिहारे वाग की ।
गेंदा मरुअवा राउ चमेली, चम्पे की कलियाँ लगा लाई रे,
मालिनियाँ तिहारे वाग की ।
कहा रे मोलु सेहरे को मालिनियाँ, कहा रे तू लै जाई रे
मालिनियाँ तिहारे वाग की ।
एकु टका सेहरे को मालिनियाँ, लाखु टका ले जाई रे ।
मालिनियाँ तिहारे वाग की ।
जुग-जुग जिओ अमर जिय जोडी, खुसियाँ मनाईं घर जाईं रे ।
मालिनियाँ तिहारे वाग की ।
बन्ने सेहरो तुम्हारो गूँधि लाई रे । मालिनियाँ तिहारे वाग की ॥

'सेहरा' शब्द की व्युत्पत्ति 'सीस-हार' से मानी जाती है । वर के सिर पर फूलो की लड़ियाँ बाँधने की प्रथा इस्लामी है । इस प्रथा का पता भी मुगलो के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह 'ज़फर' के समय से ही लगता है । मुसलमानो मे नौशा या दूल्हा जब 'सेहरा' बाँधता था तो उसकी प्रशसा मे उर्दू मे 'सेहरा' सुनाया जाता था । उत्तरी भारत के हिन्दुओ मे यह प्रथा मुसलमानो से ही आयी है । हिन्दुओ मे 'सेहरा' वहनोई बाँधता है और उसे बाँधने का नेग भी दिया जाता है । आगरा तो इस्लामी सभ्यता का केन्द्र ही रहा है अत यहाँ के हिन्दू-परिवारो मे 'सेहरा' गाया जाने लगा ।

वन्ने के रूप-लावण्य और शृगार पर स्त्रियाँ न्यौछावर हुई जा रही है । वे उसे अपनी आँखों मे रखना चाहती है । तभी तो वे मुग्ध हो गा रही हैं :—

वन्ने तुझे राखूँ नजरियो के वीच ।
मालिन वनके देखूँ वन्ने को, वन्ने मुझे मिलना वगीचा के वीच । वन्ने तुझे०
धोविन वनके देखूँ वन्ने को, वन्ना मुझे मिलना तलैयों के वीच । वन्ने तुझे०
धीमर वनके देखूँ वन्ने को, वन्ना मुझे मिलना कुअटिया के वीच । वन्ने तुझे०
रसिया वनके देखूँ वरना को, वरना मुझे मिलना सेजरियाँ के वीच । वन्ने तुझे०

वन्ने के एक गीत मे एक सुन्दर व्यग्य उसकी होने वाली पत्नी की ओर से है । वन्ने की पत्नी उससे कहती है कि मेरे लिए मोजे ले आओ क्योकि ठड अधिक पड़ रही है । उसकी इस माँग पर घर की सभी स्त्रियाँ ताने देती है । वह वन्ने से

कहती हैं कि सभी स्त्रियाँ तो सज रही है, यदि मैं भी सजती हूँ तो क्या अपराध करती हूँ—

वन्ना ले दो जुरावें पडे सरदी
तेरी दादी सजी है तेरी ताई सजी
वन्ना मैं सजती तो जुलम करती। वन्ना०
तेरी चाची सजी है तेरी बुआ सजी
वन्ना मैं सजती तो जुलम करती। वन्ना०
तेरी भाभी सजी है तेरी बहना सजी
वन्ना मैं सजती तो जुलम करती। वन्ना०

इस गीत मे 'जुरावें' का प्रयोग उर्दू का प्रभाव प्रकट करता है। लोक-भाषा मे उर्दू के प्रचलित शब्द आ जाना स्वाभाविक ही है।

वन्ने के इत्र लगाया जा रहा है। उसकी सुगन्धि मन को मस्त किए दे रही है। स्त्रियाँ उस मस्ती का वर्णन इस गीत मे करती है:—

इत्र की खुशबू आई हरियाली
क्या तूने इत्र लगाया है—
शीश वन्ने सेहरा सोहै री, लड़ियो पै इत्र-लगाया है,
इत्र की खुशबू आई हरयाली।
कान वन्ने के कुण्डल सोहै री
बुन्दों पै इत्र लगाया है। इत्र०
अग वन्ने के पटका सोहै री, जामे इत्र लगाया है,
इत्र की खुशबू आई हरियाली।
पैर वन्ने के जूता सोहै री, लड़ियो मे इत्र-लगाया है। इत्र०
सग वन्ने के डोला सोहै री, वन्ने के इत्र लगाया है। इत्र०

अब वन्ना सज कर तैयार है। उसके वस्त्राभूषण का वर्णन इस गीत मे बडी सुन्दरता से किया गया है:—

वन्ना पहने वसंती चीरा रे
　　　　कान वन्ने के कुण्डल सौहै,
　　　　कुन्डल में लागे मोती हीरा रे।
अग वन्ने के जामा सोहै,
पटके मे लागे मोती हीरा रे।
　　　　हाथ वन्ने के कँगना सोहे,

कँगने मे लागे मोती हीरा रे ।
सीस वन्ने के पगिया सोहै,
कलगी मे लागे मोती हीरा रे ।

व्रज मे विवाह के अवसर पर 'भातई' का वडा महत्व होता है । लडके या लडकी का मामा अपने वहनोई-वहिन, भान्जे-भान्जी तथा उनके अन्य निकट सम्वन्धियो के लिए वस्त्राभूषण लेकर आता है । वह लडकी के लिए पीली साडी और अनवट-विछुए भी लाता है । निम्नलिखित गीत मे वहिन अपने भातई भाई के न आने से दुखी है । अचानक उसे अपने भाई के आने की सूचना मिलती है । वह प्रसन्न हो उठती है:—

मेरी छोटी सी ननद जगाय काहै को सौओ भौजी अनमनी ।
भाभी उठकर करौ हौ सिंगार गरजत आवै तेरौ भातई जी
मैं तो ससुर को ब्रागौ देहूँ सास कूँ जोडा मखमली
मैं तो जेठ को पगडी देहूँ जिठानी को जोडा वनारसी
मैं तो देवर को टोपी देहूँ दौरानी को जोड़ा अतलसी
मैं तो साहव को सेला देहूँ सौति कूँ चादर रेशमी
मैं तो ननदी कूँ कगन देहूँ तापर दीहल रेशमी
मेरी ननदी ने राखी है मान वीर आगमन सुनाए ।

वहिन अपने भातई भाई को सम्बोधित कर अनेक वस्त्राभूषण लाने का आग्रह करती है । वह अपनी ससुराल के सभी लोगो के लिए विभिन्न आभूषण लाने को कहती है —

चुँदरी रँगि लइयौ मेरे माँ के ज्याये
झाले भी लइयौ भैया कटियाँ भी लइयौ और अलको के
जोटरी मेरी माँ के ज्याये । वाली भी लइयौ भैया पट्टे भी लइयौ
और एरन की जोटरी मेरे माँ के ज्याये । दुलड़ी भी लइयौ भैया
तिलडी भी लइयौ भैया और हरवो की जोटरी मेरी माँ के ज्याये ।
दस्ती भी लइयौ भैया कँगन भी लइयौ भैया और घडियो की
जोटरी मेरी माँ के ज्याये..........

(इसी प्रकार सब जेवरो के नाम ले-ले कर गीत गाया जाता है)

भातई के स्वागत की तैयारियाँ कम नही होती । वहिन अपने भाई के स्वागत के लिए द्वार पर झाडू लगा आई है । उसके अग-प्रत्यग फडक रहे हैं । इनके फड़कने से उसे आभास होता है कि उसका भाई उन अगो के लिए जेवर लायेगा —

दरवाजा बुहार आई रे कि आवेंगे मेरे भातइया
मेरे माथा फड़क रह्यौ रे कि झूमड टीका लावे मेरे भतइया
मेरे कान फड़क रह्यौ री कि झुमकी बुन्दे लावे मेरे भतइया ।

वहिन को अपने भाई पर इतना गर्व है कि वह अपनी पुत्री या पुत्र के विवाह मे व्यय होने वाली प्रत्येक वस्तु को अपने भाई से ही माँगना चाहती है । वह अपने ससुराल वालो को यह दिखा देना चाहती है कि उसके पीहर के लोग कितने धनवान हैं । यदि उसका भाई सभी चीजें नही लायेगा तो फिर उसे क्रोध आ जायगा । वह उससे रूठ कर वैठ जाएगी । तभी तो वह कहती है —

मान करूँगी रे भतइया मैं मान करूँगी
मेरो मान वढावैगो भतइया मैं मान करूँगी
गेहूँ लइयौ रे भतइया तू चावल लइयो रे लइयो वोरी
भराय भतइया मैं मान करूँगी
खाँड लइयो रे भतइया तू घी ले अइयो लें अइयो कुप्पै भराय,
भतैया मैं मान करूँगी ।
तीहल लइयो रे भतैया तू वागे भी लइयो रे
लइयो कुरते सिलाय भतैया मैं मान करूँगी ।
सोना लइयो रे भतैया तू रूपा भी लइयो रे
लइयो डिले भराय भतैया मैं मान करूँगी ।
रुपया लइयो रे भतइया तू मौहरे भी लइयौ रे
लइयो थैली भराय मैं मान करूँगी ।

भातई के आने मे विलम्ब होने पर सास, ससुर, ननद, जिठानी आदि सब व्यग्य कर रहे है । वहिन को ये व्यग्य वडा दुख दे रहे हैं । वह अपने भाई का स्मरण कर सभी के व्यग्यो का उल्लेख करती है—

मेरो सूरज सन्मुख द्वार चन्दन अगन लिपाइए
ज्यो ही लीपि चुकी घर वार जो हेरत अपने वीर को
मैं तो कौठरी के द्वार ससुर ने वोले वोलने
वहू देखी तुम्हारी पौसार अवहू न आए तेरे भातई
वहू आए सास जी के वीर त्यारे वीर त्यारे भात ले रहे
मैं तो हेरूँ विरन की वाट जेठने वोले मोसू वोलने
वहू देखी पौसार अवह न आए तेरे भातई
वहू आए जिठानी के वीर तेरे वीर त्यारे भात ले रहे
मैं तौ ठाड़ी रसोई के द्वार दिवर ने कीन्ही मौसे मसखरी

भाभी देखी त्यारी पौसार अवहूँ न आए तिहारे भातई
भाभी आई-हमारी ससुराल प्यारे वीर त्यारो भात लै रहे
मैं तो ठाड़ी सेज के पास सैयाँ ने बोले बोलने जी
धनि देखी त्यारी पौसार अवहू न आए तेरे भातई
देखो आए सौत के वीर प्यारे वीर त्यारो भात लै रहे
मै तो सोई तन मन मारि चद्दर औढि है चिकन की

भातई जूनागढ के निवासी हैं। उनसे भात लाने को कहा जा रहा है। अब यह 'जूनागढ़' केवल परम्परागत ही प्रयोग मे आता है। भातई चाहे टूँडला से ही आने वाला हो किन्तु उसे कहा जाता है जूनागढ़ का है :—

जूनागढ के रहवे वारे भातु मोकू अच्छो लइयोरे
सलुआ लइयो मिसुरु लइयो हरो रगइयोरे
सुसर मेरे कू स्वाफो लइयो हँसि पहरइयोरे
हँसुला लइयो कठुला लइयो हरवा लइयोरे
बडे जेठ कूँ कुर्ता लइयो हँसि पहिरयोरे
गजरे लइयो पोची लइयो दस्ते लइयोरे
छल्ला छाप आरसी जामे नग जड़ वइयोरे।

जूनागढ का एक ही विशेष प्रयोजन है और वह यह है कि यह गीत इस बात का सकेत करते हैं कि जैन परिवारो से उनका सम्बन्ध है। जैनियो के लिए जूनागढ व गिरनार पर्वत का धार्मिक महत्व है।

भात के सम्बन्ध मे गाये जाने वाले कुछ गीत और भी है। इन गीतो मे बातें तो लगभग सभी एकसी हैं किन्तु तर्जें, पक्तियाँ और शब्द बदले हुए है :—

मेरे लाए अनोखा भात शहर जूनागढ रहने वाले
कघा भी लाये अेकिलये भी लाये झूमर लाये रतन जडवाये
शहर जूनागढ रहने वाले।
एरन भी लाए भैया विजली भी लाए वाले भी लाए रतन जड़वाए।
शहर जूनागढ रहने वाले।
विरन रघुवीर समय पर आना
भैया भी लाना भतीजे भी लाना विरन रघुवीर पिताजी भी लाना
वावा भी लाना, ताऊ भी लाना विरन रघुवीर
दादी को लाना, चाचा भी लाना, वावुल भी लाना
विरन रघुवीर फुआ जी भी लाना जल्दी से आना
विरन रघुवीर भूल नहीं जाना।

भात के सम्वन्ध मे नरसी का भात बडा प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि नरसी भक्त की पुत्री के विवाह मे स्वयं भगवान भात ले कर आये थे। इसी बात का उल्लेख करता हुआ एक भात का गीत है :—

अब खत लिखूँ वीरन मेरे आयो नरसी भात ले अईयो।
भइया भी लाइयो भतीजे भी लाइयो अब मेरे
भावज की जोडी भी लइयो रे।
भइया भात घनेरो लइयो।
कघा भी लइयो भैया किलपें भी लइयो
और मेरे झूमर की जोडी लइयो रे
मेरे भात घनेरो लइयोरे
एरन भी लइयो वाले भी लइयो भैया विजली की जोडी लइयो।
हरवा भी लइयो निकलिश भी लइयो
और मेरे लाकेट की जोड़ी लइयोरे।

वहिन को इस वात की चिन्ता है कि भाई भात ले कर समय पर अवश्य आ जाये। वह यह भी चाहती है कि जव भाई भात ले कर आये तो ससुराल मे सभी को मालूम हो जाये कि उसका भाई वहुत बढ़िया भात लेकर आया है। वह तभी तो कहती है :—

करूँ विनती सुनो मेरे भइया
समय पर भात ले आना
वहन प्यारी के आँगन मे शोर करके दिखला देना।
सास को घोती ले आना
ससुर को वागौ ले आना
अगर कुछ भी न हो भइया तो
खाली हाथ आ जाना।
जिठानी को साडी ले आना
जेठ को दुपट्टा ले आना
अगर इतना भी न हो तो
खाली हाथ आ जाना
समय पर भात ले आना।

इस गीत से मामा का महत्व प्रगट होता है। वह धन लेकर आवे तो अच्छा है। वह भी न ला सके तो मांगलिक कार्यो मे भाग लेने के लिए आ तो जाये।

नरसी के भात का एक और गीत वहुधा गाया जाता है। इस गीत मे नरसी की विवशता और भगवान की कृपा का वर्णन है :—

वावुल कैसा लाए भात अव मेरी हँसी कराने आए ॥
पिताजी कैसा लाए भात अव मेरी..........
टूटी सी एक गाडी लाए वूढ़े से वैल जुडा कर लाए
पिताजी लाए वाई साथ मेरी हँसी कराने आए।
आवत वात किसी ने न पूछी कमरा वैठन जगह न दीन्ही
दीन्हे गड़अन खिरक वताए मेरी हँसी कराने आए।
शाम भई दिन गया छिपन को घर घर नाई वुलावा
देखी अव मेरो थर थर काँपै गात पिताजी हँसी..........
जव नरसिंह वुलावा भेजा, ससुर जेठ मेरे सव जुड़ वैठे
दीन्है मण्डप सव सजवाए मेरी हसी..........
जव नरसिंह खडे भये द्वारे खाली हाथ देख घवड़ाने
अव विनने करी है कृष्ण पुकार मेरी हँसी..........
वावुल कैसा लाए भात मेरी हँसी..........
वनजारा सा लख प्रभु आये सामान भात की सव करलाए
छिड़ मे लाए थाल सजाए मेरी हँसी ..........

वन्ने के लिये मालिन सेहरा वना कर लायी है। उसे सभी ने खरीद-खरीद कर वन्ने को सजाने की तैयारियाँ की हैं :—

मालिन लाई सेहरवा हाल।
वन्ने के दाऊ ने मोल खरीदौ, ताई मे खरचे माल ॥ मा०
वन्ने के दाऊ ने मोल खरीदो, ताई ने खरचे माल ॥ मा०
वन्ने के चाचा ने मोल खरीदो, चाची ने खरचे माल ॥ मा०
वन्ने के भैया ने मोल खरीदो, भाभी ने खरचे माल ॥ मा०

जव लड़का विवाह के लिये 'वर' के वेश में जाने लगता है तो उसकी माँ को यह आशका होती है कि मेरा पुत्र अव एक अन्य लड़की को घर ले आयेगा, उसके प्रेम मे पड़ जायेगा और मुझे तिरस्कार का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। वह कुए मे पाँव लटका कर वैठ जाती है और अपन पुत्र से कहती कि मुझे सेवा करने का वचन दे नही तो मैं कुए मे डूव मरूँगी। पुत्र उससे कहता है कि मैं तेरे लिए सेविका लेने जा रहा हूँ :—

मत फाँसे कुए मे पैर, दुलिहन लाऊँ मै दुलिहन लाऊँ।
सेवा करे तेरी वो आके, खूब उडइयो लहर। दुलहिन०
रोटी खिलावै मलकै न्हलावै, कबहू न माने बैर। दुलहिन०
पलिग नवावै तोसके लगावै, पैर दबावेगी म्हैर। दुलहिन०
छोड कुआ घर को जा मइया, मान कहन अब ठैर। दुलहिन०

कुँआ-पूजा कुछ परिवारो मे विवाह का आवश्यक अग है। इसलिए इस गीत का विशेप सम्बन्ध उन्ही जातियो और परिवारो से है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणो मे वर-यात्रा आरम्भ होने से पूर्व सभी स्त्रियाँ कुँआ पूजने जाती है।

वरात लडकी के द्वार पर पहुँचती है। उस समय के कार्य-क्रम का वर्णन बडी सुन्दरता से इस गीत मे किया गया है:—

घोडा नचावै मेरा लाडला समघी के द्वारे।
सोने का लोटा गगाजल पानी और लगाये रोरी,
लिये आरती आई सखियाँ कोई सामरि कोई गोरी,
टीका लगाओ मेरे लाल के कोई नजर उतारे।
घोडा नचावै मेरा लाड़ला समघी के द्वारे॥
छज्जे ऊपर मगल गाये हिलमिल कोकिल वैनी,
कर सोलै सिगार चली है चन्द्रमुखी मृगनैनी,
घूँघट हटा के मेरी लाडली वन्ने को निहारे।
घोड़ा नचावै मेरा लडका समघी के द्वारे॥
मनहर सइयाँ नैना वरसे वेला विदा की आयी,
वालम के घर चली लाड़ली, वावुल के घर जायी,
मैया रोवै री खडी द्वार पै अव ढाडें मारे।
घोडा नचावै मेरा लाड़ला समघी के द्वारे॥

लडकी वाले के यहाँ वरातियो को प्रेमभरी गालियाँ भी जी भर कर दी जाती हैं। आगरा और दिल्ली के बीच विवाह-सम्वन्ध वहुवा होते रहते हैं। कभी आगरे की लडकी तो कभी आगरे का लड़का। निम्नलिखित गीत मे दिल्ली का लडका है और वरात आगरा मे आयी है। आगरे की स्त्रियाँ लड़के के पिता और सभी वरातियो को गालियो मे सम्मानित करती है। एक गीत है:—

दिल्ली शहर से समघी आए, समघी आए वड़े वढिया रग वरसेगो,
आहा राम रग वरसैगो, समघी तेरी वहन छिनही लगी रहे अठवरिगा।
रग वरसेगो आहा राम०

वड़ी दूर से आए वराती जे सवरे वराती वड़े वढ़िया। रंग०
इनकी वहना वड़ी छिनही लगी रहै अठवरिया। रंग०
वा गुण्डी ने लाला जाओ नाम धरौ जाहरिया। रंग०

(इसी तरह से सवके नाम लेकर यह गाली का गीत गाया जाता है।)

इसी प्रकार गालियो भरा एक और गीत है। इस गीत मे वर का नाम लेकर उसकी माँ, वहिनो, बुआ आदि को गालियाँ दी गयी हैं :—

साजन वडे मनगुनियाँ री वारोठी कराय।
साजन कौ मइया से लागौ है वनियाँ री वारौठी कराय।
साजन की बूआ से लागौ है वनियाँ री वारौठी कराय।
इनकी वहना से लागौ है वनियाँ री वारौठी कराय।
साजन वडे मनगुनियाँ री वारौठी कराय॥

वारौठी द्वाराचार को कहते हैं। जब वरात लड़की के द्वार पर है तो लडकी वाले वर और वरात का स्वागत करते है। द्वार पर वर का तिलक होता है और उसे भेंट दी जाती है। इस अवसर पर महिलाएँ प्रेम भरी गालियाँ गा कर सव का मनोरंजन करती है।

वर के पिता की कम छीछालेदर नही होती। उसे घर मे नौकर रखने के लिये चुना जाता है। उससे महिलाएँ घरेलू काम करने के लिए कहती है। वह उनका नौकर बनकर चक्की पीसेगा, गोबर थापेगा और घास खोदेगा। काम न करने पर उसे हण्टर (कोडे) से पीटा जायेगा। उसे गोबर उठाने को छवरिया (डलिया) दी जायेगी और पानी भरने के लिये उसे धिमरिया (धीमर, कहार) बनाया जायेगा :—

तुझे राखूँगी नौकर वनाय सारे समधी मेरी हवेली मे आना।
महलो वुलाऊँ दानो दरवाऊँ, दूँगी हतेलौ गहाय।
सारे समघी मेरी हवेली मे आना।
महलो वुलाऊँ धानी पिरवाउँ मारूँगी हण्टर घुमाय।
सारे समधी मेरी हवेली मे आना।
महलो वुलाऊँ घास खुदवाऊँ खुरपिया दूँगी गहाय।
सारे समधी मेरी हवेली मे आना।
महलो बुलाऊँ गोबर थपवाऊ दूँगी छवरिया गहाय ;
सारे समधी मेरी हवेली मे आना।
महलो वुलाऊँ पानी भरवाऊँ लूँगी धिमरिया वनाय।
सारे समधी मेरी हवेली मे आना।

वरातियो को स्वादिष्ट और श्रेष्ठ पकवान 'ज्यौनार' में खिलाये जा रहे हैं किन्तु फिर भी लडकी के घर की स्त्रियाँ समधी तथा वरातियों से प्रार्थना करती हैं कि वे यह साधारण सी ज्यौनार ही स्वीकार कर लें। अपनी निर्धनता और समधी की अमीरी का वर्णन इस गीत मे हुआ है :—

हम पै वनी नई जौनार जुगति मे हरे-हरे, प्रेम से
गरीवी मेरी हरे-हरे
लाचारी मेरी जान जाइयो जी।
त्यारै कहिये महल-तिवारे और वनौ चौपाल
हमारे कहिये टूटी झौपडी वाही में करत गुजार
गरीवी मेरी हरे-हरे
लाचारी मेरी जान जइयो रे।
त्यारै कहिये साल दुसाला और गलेफें न्यारी
म्हारे तो कहिये फट्यो निछया वाही मे करत गुजारौ
गरीवी मेरी हरे हरे
लाचारी मेरी जान जइयो रे।
त्यारे कहिये लड़ी-पचलड़ी और गले मे हार
म्हारे तो कहिये काँच की कंठी वही हमारौ सिंगार
गरीवी भी मेरी हरे हरे
लाचारी मेरी जान जइयो रे।
त्यारे कहिये थाली-वेला कचन विलिया न्यारी
म्हारे तो कहिये फूटी सेनकी वाहू को गढन कुम्हार
गरीवी मेरी हरे हरे
लाचारी मेरी जान जइयो रे।

इसी भाव का एक और गीत है। इसमे वातें लगभग वही हैं किन्तु थोड़ा क्रम और ढँग वदल गया है। पहला गीत मैंने एक चमारिन से सुन कर लिखा है। दूसरा गीत वेलनगज मे वैश्य परिवारो मे गाया जाता सुना है। इन दोनो गीतो के शब्दो के भेद स्पष्ट है।

हम पर वन नही पाई ज्यौनार प्रेम से हरे हरे
प्रेम से जीम जइयो।
समधी के तो वाग वहुत है हमरे एको नांय, हमरे तो
एक छोटा वगीचा वाई से करू गुजारा प्रेम से हरे हरे

प्रेम से जीम जइयो।
समधी के तो ताल वहुत हैं हमरे एको नाँय मेरे तो
एक एक छोटी हौदिया वाई मे करू गुजारा, प्रेम से हरे हरे
प्रेम से जीम जइयो।
समधी के तो वेटा वहुत है हमरे तो हैं तीन
वाई मे करू गुजारा, प्रेम से हरे हरे, प्रेम से जीम जइयो।

लडकी के यहाँ की महिलायें समधी पर व्यग्य-वाण चलाती हुई उसकी लाई हुई बरात की आलोचना करती हैं :—

समदी काए कूँ आयो लजाइवे कू साजन के द्वार
वाजौ न लायौ वजाये वे कूँ साजन के द्वार
कुल्लड़ न लायौ छुड़ावे कूँ साजन के द्वार
रडी न लायौ नचाइवे कूँ साजन के द्वार
घोडी न लायौ भजाइवे कूँ साजन के द्वार

एक और गीत मे वे कहती हैं :—

वहुत बुलाए थोरे आयरे समदी परि कुरु कुरु कुरु
गोरे बुलाए कारे आयेरे समदी परि कुरु कुरु कुरु
मैंने जाँमतई पहचाने रे ममदी परि कुरु कुरु कुरु
तैंने घमण्डी की हौपन जानी रे समदी परि कुरु कुरु कुरु

ज्यौनार के निम्नलिखित गीत मे समधिन स्वय दौड़-दौड़ कर वरातियो को भोजन परोस रही है। वह अनेकानेक आभूषणो से भी सुसज्जित है। अपने आभूषणो की तुर्कों के अनुरूप ही वह मिठाइयाँ और अन्य वस्तुएँ परोस रही है :—

महलायत उतारी रे मुडेलिन दारी अजब वनी!
दौरी दौरी समदिन डोले पहरि हाथ मे चूरी
होले होले जेंओ वराती ओरु परोसूँ बूरौ, महलायत उजरी रे

दौरी दौरी समदिन डोले पहिर हाथ मे खडुआ
होले होले जेऔ वराती औरु परोसू लडुआ, महलायत उजरी रे
दौरी दौरी समदिन डोलै पहरि हाथ मे चूरी
हौलें होले जैओ वराती औरु परोसी पूरी महलायत उजरी रे

विवाह के अवसर पर राम और जानकी के विवाह के गीत ही वहुवा गाये जाते है। निम्नलिखित गीतो मे जानकी-विवाह का ही उल्लेख हुआ है। जानकी-विवाह

मे जो वारोठी, भामर, ज्योनार, कलेऊ और कगन-खोलने आदि की रस्मे हुई थी उन्ही सव का उल्लेख आज-कल के विवाहो की विभिन्न रस्मो मे भी होता है। निम्नलिखित गीतो मे विवाह की प्रमुख रस्मो का उल्लेख होने के साथ-साथ सम्य-मधुर गालियो का भी सुन्दर प्रयोग है —

चलो आरत मगल साज सजन आये दरवाजे ।
मगल कलस चहूँ दिस सोहै मौहै वन्दनवार ।
गावे मगल कोकलवैनी मिथलापुर की नार ॥
वजें नौवत वाजे ॥ चलो आरत० ॥
इत मे मिथलापति निम वशी रहे हृदे हरसाय ।
उत मणि-मोती सुत रघुवर पै दसरथ रहे वरसाय ॥
श्वेत गज पर विराजे ॥ चलो आरत० ॥
सिर पर मोहुर गले मुक्ताफल कुण्डल झलकत कान ।
पटका पीत जरकसी जामा दूलेह राम सुजान ॥
छवीले छव छाजे ॥ चलो आरत० ॥
सिंगासन मँगवाय जनक ने मोतिन चौक पुराय ।
पद पखार आसन वैठारे कीयो तिलक सिहाय ॥
वेद धुन मुन गाजे ॥ चलो आरत० ॥
गज रथ अस्प पालकी भूषण वस्त्र अनेक प्रकार ।
छत्र चौर पखा मिथलापति दिये ग्राम भण्डार ॥
राम वरना काजे ॥ चलो आरत० ॥
नाऊ वारी भाट पुरोहित ले धन पावत चैन ।
होत निछावर लेत टेलुआ कहत परस पर वैन ॥
आज दारिद्दर भाजे ॥ चलो आरत० ॥
यह विधि कर वारोटी, लीने रघुवर भवन वुलाय ।
परछन करत सुनैना रानी कचन थार मँगाय ॥
विविध मगल साजे ॥ चलो आरत० ॥

(भामर)

टेक—गामे मगल चातुर नारि भाँमर सिय रघुवर की ॥
माथे मुकट पीत पट जामा श्याम गात रघुवीर ।
सिय के सीस विराजत महुरी झलकत पचरग चीर ॥
नतीय सीय पट तरकी ॥ गामे० ॥
वरनी जनकनन्दनी आगे पाछे वरना राम ।

रघुवर चरण पैंजनी वाजे सीय के पायल पाम ॥
मधुर धुन नूपुर की ॥ गामे० ॥
कचन खंमन जडे जवाहर मणि माणिक नग लाल ।
तिनमे सिय रघुवर परछाई झलकत जुगल विसाल ॥
चमक पाटमवर की ॥ गामे० ॥
उत वशिष्ट इत सतानन्द मुनि कर रहे वेद विधान ।
राम सिया की परत भामरे यथा जोग परमान ॥
वेद वानी झरकी ॥ गामें० ॥
ब्रह्मा शेष महेश देव सव इन्द्रादिक तैंतीस ।
सनकादिक ऋषि मुनि मन हरषे मुख भर देत असीस ॥
उमर होय जुगभर की ॥ गामे० ॥
देव वधू धर भेष त्रियन के हरषें मगल गाँय ।
उझक झरोकन निरख राम छवि फूली न अग समाय
सुनै ना जनक घर की । गामे० ॥
जै जै जै जै होय चहू दिस वाजे वजत अपार ।
नभ से देव फूल वरसामे वीतत अजव वहार ॥
झरन मानो जल धर की ॥ गामें० ॥

## भजन (जौनार)

टेक—अव वैठ गई जौनार जनक नृप के अँगना ।
ऊनी और रेशमी सूती दिये कुसासन डार,
थार गिलास कटोरा गढुआ धोय-धोय धरत अगार ।
अधिक आनन्द मना ॥ अव वैठ० ॥
केरा कमल ढाक पत्रावल दौंना सीकनदार,
परस भोलुआ और सकोरा पानी करत समार ।
हरष मन माँहि वना ॥अव वैठ० ॥
लडुआ पेड़ा वरफी खुरमाँ खजुला फैनी कंद,
वरफ मलाई वालूसाई जेमत होत अनन्द ।
मगद अति घृत मे सना ॥ अव वैठ० ॥
कपूर-कन्द जलेवी घेवर वूँदी पेठा पाग,
मोतीचूर मूँग के लडुआ लगी इमरतिन लाग ।
कै हलुआ सुघड़ वना ॥ अव वैठ० ॥
मठरी गुना पकौड़ी पपड़ी गुजियन भरो कसार,

मक्कलपारे सेव चवेनी हिरखे सावूनी मजेदार।
खात रवेत सजना ॥ अव वैठ० ॥
रेवडी गजक इलायची-दाने गुलाव जामुन चीन,
लुचई पूरी पुआ कचोरी वँदियाँ वडे निमकीन।
तलैमादार चना ॥ अव वैठ० ॥
रवडी दूध मलाई खोया दही लपसी खीर,
वूरो खाँड वतासे फैना जैमत सकल अमीर।
आम इमली के पना ॥ अव वैठ० ॥
मेवा दाख चिरोजी पिस्ता गिरी मीग वादाम,
मूँगफरी है भुनी करेली किसमिस सरस लिलाम।
छुआरे और मखना ॥ अव वैठ० ॥
पके अनार जमीरी कमरख सेव आम अँगूर,
सीताफल और वैल खजूरा जामुन नीवू रसपूर।
जायको का क्या कहना ॥ अव वैठ० ॥
तरवूजे खरवूजे सरदा फूटन उठत सुगन्ध,
हँस हँस जेंमे सकल वराती परसे जनक के नन्द।
मधुर कह कह वचना ॥ अव वैठ० ॥
नुकती किसमिस पोदीना वथुआ रायते अनेक,
सोठ पडाके जीरा पानी परसत पापर सेक।
चटपटे रुचि करना ॥ अव वैठ० ॥
हसराज झिनमा नहा झवदी वासमती कममोद,
सौंधी धान पसाई साठी चामर करत विनोद।
समा कुमनी अजना ॥ अव वैठ० ॥
घृत मिष्ठान भुकावत ऊपर सिखिरन देत वहार,
मोठ मसूर चना अरहरिया मूँग उर्द की दार।
मसाले घृत छुकना ॥ अव वैठ० ॥
गरम मसाले गुना मगोरी वरी पकोरी झोर,
हलकी अति वारीख फुलकिया परसत घृत मे वोर।
सेमरी घृत तलना ॥ अव वैठ० ॥
गोभी फूल रतालू आलू कासीफल कचनार,
कठेर वढ़ेर भट्टा तुरइया डैडस घुइयाँ रसदार।
महर ककड़ी मुमना ॥ अव वैठ० ॥
जिमिकन्द हायीचक गट्ठा कमल करेला सेम

सोआ पालक मैंथी मूरी भाजी वनी अति प्रेम ।
साग वहुविधि लखना ।। अव वैठ० ।।
हर्र आमरे सेव गाजरे विविध मुरव्वा त्यार,
टेंटी मिर्च करोदा नीवू परसत आम अचार ।
तिसाला घट धरना ।। अव वैठ० ।।
सिरका और सिकजवी चटनी वनी चंटपटी ठीक,
मुख मे धरत भरत सिसकारी होत गले विच लीक ।।
कहत वाह वाह वचना ।। अव वैठ० ।।
अदरख वर्ख छुआरे किसमिस नीवू रस मे वोर,
सेंदा नमक इलायची मिर्चे डार जिमावे निहोर ।
मजा इनका चखना ।। अव वैठ० ।।
वस वस वस वस करै वराती अघाय गये हम आज ।
वहुत सुघड़ जौनार तुमारी वनी है जनक महाराज ।
भये पूर्ण सकना ।। अव वैठ० ।।
जल अँचवाय मसाले धर के दिए सुपारी पान ।
हाथ जोड फिर करी वीनती जनक भूप सुज्ञान ।।
आप लायक हमना ।। अव वैठ० ।।

## (गारी)

तुम सुनो राम घनश्याम हमारी गारी प्रेम भरी ।
नना तुम्हारे कौसिल राजा तिनकौ सुनो हवाल ।
कौसिल्या को रचौ सौयम्वर व्याहन गये भूपाल ।।
वीच दस सीस हरी ।। तुम०।।
नृप दसरथ ने यज्ञ रचायौ दई मुनीस्वर खीर ।
खीर खात रहो गरव छिनारन तव जाए रघुवीर ।।
गजव की वात करी ।। तुम० ।।
यह कुल रीति तुम्हारे लालन ऐसी कही न होय ।
दसरथ भूप रहै का हिजरा खीर खाय जने जौय ।।
छिनरिया अति विगरी ।। तुम० ।।
वहन तुम्हारी नाम शाँता अति छवि रूप अपार ।
सो शृंगी ऋषि संग सिधारी निकसी वढ की खुआर ।।
तनक मन मे न डरी ।।तुम०।।

## गारी (कलेऊ)

बैठे रघुवर जैमे जौनार सो गारी गामे कामिनिया।
हिलमिल सग महेलिन गामे लक्ष्मी निधकी रनिया।
लेले ताल उडावत ढोलक वोलत मधुरी वनिया ॥गामे०
कौसिल्या केकई सुमित्रा नृप दसरथ की रनिया।
मुनीस्वरन की खीर खाय सुत जने राम की जनिया ॥ गामे०
दसरथ कन्या नाम शाता रूप रास लावनिया।
सो भृ गी ऋषि सग सिधारी तुमरी राम भगनिया ॥ गामे०

## गारी

मिल गामे जनकपुर नार प्रेम रस की गारी।
दमकन्दर ने पिता भवन से हरलई माय तुमारी।
कैसे वची लाल रावण से कौसिल्या महतारी।
वडी भोरी भारी ॥ मिल गामे०
सामरी सूरत माधुरी मूरत छवियुत अवधि विहारी
कामदेव अति सूध सुनौ के वाके हो औतारी ॥ मोहनी डारी ॥मिल०
रूप सरूप अनूप देख हम तन मन सुरत विसारी।
कैसे वची होयगी तुमसे अवध पुरी की नारी ॥ अचरज भारी ॥ मिल०
जनक भूप की नार सुनैना वोली वचन उचारी।
मुनि सग रहे मुनिन के जाये भोरे राम मुरारी ॥ मत छेड़ो दारी ॥ मिल०

## (कंकन खोलन)

आज अटकी वेढव आय राम ककन खोलो।
ककन गाँठ लाडले कर गही क्यो वैठे चुपचाप।
दसरथ और मुनीश्वर त्यारे सुने हमन दो वाप ॥
न्याय उनको तोलो ॥ आज०
उवटन घुटी गाँठ ककन की छुटी न तुमपै राम।
भूल गए सारी चतुराई पडा आज यहाँ काम ॥
कौशिल्या मातहि वोलो ॥ आज० ॥
छुटो न ककन सिया कुवँरि को गये लालजी हार।
खोले तुरत कहो तुम सुख से जीती जनक कुमारि ॥
क्यो मन भटकत खोलो ॥ आज० ॥

जब बराती भोजन कर जाने लगते है तो स्त्रियाँ उनकी पीठ पर हल्दी की छाप लगाती है। कुछ गाँवो मे तो बेलन और फूँकनी से भी चोटे करती है। इसी सम्बन्ध में एक गीत है.—

सखी लैलेऊ बिलनदा को हाथ चल रहौ बनममियाँ।
बेलन लैलैऊ पटली लैलैऊ लैलैऊ सखीन को साथ। चलि०
घूँसा मारौ थप्पड़ मारौ सूखे बराती जात। चलि०
माको गाऔ बूअकौ गाऔ हल्दी लगाओ माथ। चलि०

निम्नलिखित ज्यौनार-गीत में उन सभी मिठाइयो का वर्णन है जो उत्तर प्रदेश और विशेष रूप से आगरे मे बनती है। भारत के अन्य प्रदेशों मे ज्यौनारें इतनी अच्छी नही होती जितनी पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे भी आगरे की ज्यौनारो से बढकर कही की ज्यौनारे नही। यहाँ एक-एक पंगत मे कई-कई सौ आदमी एक साथ भोजन करते है —

तुम परसौजी ज्यौनार सजन जैमन आये।
पाम पखार पावटे डारौ आसन देउ बिछाय।
सब बरात के सरदारो की पगत देउ बनाय॥
विनय कर समझाये॥ तुम०॥
परसौ पातर सिंपी सकौरा दौना सुबरन थार॥
कचन के गड़ुआ जल झारी झुक झुक धरौ अगार॥
ललित सीतल छाये॥ तुम०॥
पूरी परस कचौडी परसौ मठरी मोमन दार।
मट्ठे गूँजा सेव हतौना परसौ बारम्बार॥
मलाई बल बल खाये॥ तुम०॥
लुचई परस लुचाई परसौ, परसौ मालपुआ।
बुड्ढे डुकरन परसौ खोआ खुरमा हलुआ॥
पोपलन पच जाये॥ तुम०॥
खजुला खुरमा खोआ खुरचन परसौ मोहन भोग।
कलाकन्द बेसन के लड्डू माखन चाखन योग॥
इमरती रस लाये॥ तुम०॥
सरस अंदरसे राजभोग और गुड गुपचुप गुलकद।
रसगुल्ला गुलगुला जलेबी गुलजामन मकरद।
मधुर मृदु मन भाये॥ तुम०॥
फैनी बूँदी मेवा डारो खीर दही और बूरौ।

रवडी लच्छेदार वतासे मिश्री से रस रूरौ ॥
मिठाई मिठ छाये ॥ तुम० ॥
दही-पडाके मोठ मगौरी सोंठ मसालेदार ।
नुकती बूँदी और फिरोरी दीने हींग घुमार ॥
रायते अर्राये ॥ तुम० ॥
आलू अरवी गाजर गोभी वैंगन भिंडी साग ।
परसौ पालक मैथी मूरी सवहिं सहित अनुराग ॥
चरपरे चित लाये ॥ तुम० ॥
गोभी गाँठ वद गोभी और कारौ गोभी लोध
मिर्च करौंदा नीवू टेंटी[1] आम आमरौ सोध ॥
अचारन छवि छाये ॥ तुम० ॥
पापर परस मुरव्वा परसौ खाते ही हरैं विकार ।
षटरस छप्पन परसौ व्यंजन मुरमुर धरौ अगार ॥
खाय सव हरषाये ॥ तुम० ॥
मोरछली के पखा लेकें ढोरो सव की व्यार ।
छज्जन पै सें वैंठी वैंठी गारी गामे नार ॥
सुनत सव सरमाये ॥ तुम० ॥

कुँवर कलेऊ मे वर अपने साथ अन्य कुआरे लड़को को लेकर कन्या के घर जाता है। वहाँ उसके सामने सुंदर थाल मे भोजन परोसा जाता है। वर अपना नेग माँगता है और नेग मिलने पर ही भोजन करता है। निम्नलिखित गीत मे सखियाँ वर से आग्रह करती है कि वह भोजन करले.—

तुम खाय लेउ कुमर कलेऊ लला मति सरमाओ ।
पूरी लेउ कचौरी ले लेउ लड्डू वढिया लेउ । लला०
पेडा लेउ जलेवी ले लेउ वरफी खुरचन लेउ । लला०
बूँदी लेऊ इमरती ले लेउ वालूसाई लेउ । लला०
साग अचार रायते ले लेउ सोंठ पडाके लेउ । लला०

पलिकाचार मे वर-वधू एक नए पलग पर वैठते है और वधू पक्ष की महिलाये वर का टीका कर उसे भेंट देती है—

सव जुर मिल कें ए नार करन टीकौ आई ।
पचरग पलिग विछौ आँगन मे वैठे राजकुमार ।

---

१ टेंटी का अचार आगरा मे विशेष रूप से अच्छा बनता है।

दादिया सास करि रही टीको रुपया दिए कलदार ।।
करन टीको आईं ।। (ऐसे सबके नाम लेकर गाती हैं।)।

बन्ने पर टोना लगने का भी एक गीत बड़ा आनन्द पूर्ण है:—

मेरा टोना बता देना बरना टोने ने जादू डारा ।
टोना हमारा माथे से लागा अँखियो से लागा ।
गालो के मालो पै चित धरना । टोने०
टोना हमारा होटो से लागा दाँतो से लागा ।
पावो की लाली पै चित धरना । टोने०
टोना हमारा छाती से लागा सीने से लागा ।
जोवन दिखाने पै चित धरना । टोने०

(इसी तरह सब अंग मे नाम लेकर कहा जाता है)

आगरे मे कजड़ो और भगियो के विवाहो मे एक और ही रग रहता है। कई बडी-बडी डेगचियो मे खूब गोश्त पकता है, तथा मदिरा पी जाती है और नाच-गानो का समाँ बँध जाता है। इसी वातावरण से सम्बन्धित एक गीत है—

मँगाय लै भरि-भरि कै प्याले,
तिहारी दुल्हिन पीवैगी।
खुलाय दै बोतल मतवारे,
तिहारी प्यारी पीवैगी ।।
महुआ की तू खैंच रसीली,
अगूरी भरि आज,
मटकिया भरि लइऔ प्यारे,
तिहारी निरिया पीवैगी।
लटपट चाल चलौ मतवारी,
लिपटो-चिपटो खूब,
मिला कै हौटन ते प्याले,
तिहारी कमसिन पीवैगी।

लडकी की विदा के समय दहेज दिया जाता है। उस दहेज में अनेकानेक वस्तुओ के साथ वस्त्राभूषण प्रमुख होते हैं। इन सब का प्रदर्शन कराया जाता है। इसी रस्म से सम्बन्धित एक गीत है—

समधी देखौ हमारो ललमनियाँ !
दुल्हा की सारी ठाडी, सरहज ठाड़ी, समधिन ठाडी दिखाय रही ललमनिया।

हार हमेल गुलीवन्द सौहे और सौहे पचमनियाँ। सम०
वाँह वरा वाजूवन्द मौहे और मौहे काँकनियाँ। सम०
साती जात नाच रही ठाडी और ठाडी नाहिनियाँ। सम०

विदा के समय एक रस्म 'मिलनी' की होती है। इस अवसर पर लड़की का पिता सभी वरातियो को भेंट मे रुपये-नारियल आदि देता है। वर-वधू के पिता समधी-रूप मे गले मिलते हैं। एक गीत इसी रस्म से सम्वन्धित है —

मिलनी पै है रए ठाडे री तुम साजन लेउ रुपइया।
सव सखियाँ गारी गाँमे समधी को गाय सुनामें।
सोच जिगर मे वाढ़ेरी ॥ तुम साजन०
हिया से हिया मिलाओ, मत दिल मे दहशत लाओ।
आडे मे मिल गये पाडेरी ॥ तुम साजन०
उडत गुलाल भीर भई भारी, छज्जेन पै ठाडी नारी।
मिलनी पै हैं रहे ठाडे री। तुम साजन०

कन्या का विवाह दूर के नगर मे होता है। कन्या को दूर जाने मे वड़ा दु:ख होता है। वह अपने पिता से पूछती है कि उसे इतनी दूर क्यो भेजा जा रहा है? वह अपनी परवशता का उल्लेख कर कहती है कि कन्या चिडिया, गाय, कली और गुडिया सी होती है। उसे जहाँ—जिसको भी दिया जाता है वह चुपचाप चली जाती है:—

काहे को व्याही विदेस, सुन वावुल मेरे।
हम तो वावुल तेरे वागो की कोयल, कूकत पर घर जाये। सुन०
हमतो वावुल तेरे खेतो की चिडियाँ, चुग्गा चुगत उडि जाये। सुन०
हमतो वावुल तेरे वेले की कलियाँ, जित माँगे चली जाये। सुन०
हमतो वावुल तेरे खूँटे की गइयाँ, जित हाँको हँक जाये। सुन०
आले की वावुल गुडियाँ छोड़ी, तो छोड़ा सहेलियो का साथ। सुन०
महल तले से डोला निकला, तो भाई ने खाई पछाड। सुन०
आम तले मे डोला निकला, कोयल ने की है पुकार। सुन०
तू क्यो रोवे मेरी कोयलिया, हम तो चले परदेस। सुन०
नगे पैरो वावुल वीरा भागे, साजन का डोला चला जाय। सुन०

यह गीत वैसे तो उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलो में भी गाया जाता है किंतु आगरा नगर तथा कस्वो मे यह वहुधा गाया जाता है। कही 'सुन वावुल मेरे' के स्थान पर 'लक्खी वावुल मेरे' भी कहा जाता है।

यही गीत दूसरे ढग से भी गाया जाता है। इस गीत मे भाव तो पहिले गीत जैसा ही है किंतु कुछ बातो का हेर-फेर है —

काहे को ब्याही विदेस, सुन बाबुल मेरे।
हम तो बाबुल तेरे खूँटे की गइयाँ, जित हाँको हँक जाये। सुन०
हम तो बाबुल तेरी वन की चिड़िया, जिधर उडाओ उड़ जाये। सुन०
किनको छवाये बाबुल महल-तिवारे, किनको रच्यो विदेस। सुन०
बेटा को छवाये बाबुल महल-तिवारे, बेटी को रच्यो विदेस। सुन०
जब डोली छज्जो से निकली, दादी ने खाई पछार। सुन०
छूट गई सब सँग सहेली, छूटो आपनो देस। सुन०
खोलि पर्दा जब देखन लागी, आयो परायो देस। सुन०

लडकी कि विदा पर वर पर व्यगो की बौछार पडती है। उससे कहा जाता है कि तू अपने स्वार्थ के लिए हमारी शोभा का हरण कर रहा है। लडकी के जाने से रसोई, आँगन, माँ की गोद, पनघट आदि सब सूने हो जायेंगे।

तू तो चूल्हा की सोभा लै चलो बरने
तू तो अगना की सोभा लै चलो बरने
तू तो डेरा की शोभा लै चलो बरने
तू तो घर भर की सोभा लै चलो बरने
हमारी गोदी की सोभा लै चलो बरने
हमारी बगिया की सोभा लै चलो बरने
हमरे पनघट की सोभा लै चलो बरने
हमरे मनुआ की सोभा लै चलो बरने
अपनी मैया को सोभा लै चलो बरने
अपने बाबुल की सोभा लै चलो बरने।

यह गीत करुण रस का सुन्दर उदाहरण है। शकुन्तला की विदा पर कालिदास ने जो करुण दृश्य अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया था लोकगीतो मे भी उसी प्रकार के भाव आते रहे है।

करुणा के साथ हास्य भी है। यह वास्तव मे कन्या को सान्त्वना देने के लिए है। सखियाँ परिहास करती हुई लडकी से कहती है कि तेरे प्रीतम तुझे बडी शान से लेने आने वाले है। वे तुझे उडन खटोले मे लेने आयेंगे, तुझे 'मोहन-भोग खिलाया करेंगे और तेरे लिये बढ़िया-बढिया कपडे लायेंगे —

अब तोय प्रीतम लैवे आवेगे
साँची मान सहेली।

इक्का वेहनी वे नही लावे
अव वे उडन खटोला लावेगे
साँची मान सहेली, अव तोय·····–·········
लड्डू जलेवी वे नही लावे
अव वे मोहन भोग लगावेगे
साँची मान सहेली अव तोय ······
सलुआ मिसरी वे नही लावे
अव वे चटक चुनरिया लावेगे,
साँची मान सहेली, अव तोय ······
साड़ी जम्फर वे नही लावे
अव वे शाल दुशाला लावेगे
साँची मान सहेली, अव तोय
हँसुला खटुला वे नही लावे
अव वे मोहन माला लावेंगे, साँची मान·········
अव तोय प्रीतम लैवे आवेंगे।

वधू को लेकर लडका अपने घर आता है। इस अवसर पर वधू के स्वागत मे गीत गाए जाते हैं। एक गीत इस प्रकार है :—

## वधू आगमन

कै गुन सरसो पीअरी, कै गुन करुओ तेल
सुसर घर राज, ववुल घर सोहिलो
कै गुन सरसो पीअरी, कै गुन करुओ तेल
जेठ घर राज, विरन घर सोहिलो
कै गुन सरसो पीअरी, कै गुन करुओ तेल
दिवर घर राज, विरन घर सोहिलो
कै गुन सरसो पीअरी, कै गुन करुओ तेल
साजन घर राज, विरन घर सोहिलो।

वहू के स्वागत मे गीतो के साथ नाच भी होता है। पहिले तो घर की स्त्रियाँ वहू को गोद मे लेकर नाचती है, फिर अकेली नाचती है और अत मे वहू को नचाती

हैं। इस सम्बन्ध मे एक गीत है :—

लल्ला की वहुअल नचावत-चौं नाँइ ए
हँम तौ नचावत, छिनरी नाँचत नाँइ ए
नाँचत कूदत जी चग नाँइ ए।
लल्ला की वहूअल नचावत चौं नाँइ ए
हम तो नचावत, सुसरी नाँचत नाँइ ए
नाचत कूदत जी चग नाँइ ए
सुसरी–छिनारी, विगड़े खानदान की
हमतो नचावत, छिनरी नाँचत नाँइए

सुहागरात यौवन की वहारो की प्रथम रात होती है। इस रात को दो युवा हृदय अपनी समस्त उमगो और आशाओ के साथ एक-दूसरे से मिलने को उत्सुक होते हैं किंतु वधू को अभी लाज आ रही है, उसे भय लग रहा है। वह अपने पति से प्रार्थना करती है कि उससे छेड़-छाड़ न करे। निम्नलिखित लोकगीत विचपुरी (आगरा) ब्लॉक के अँगूठी गाँव मे एक विवाह के अवसर पर सुनकर लिखा गया है:—

मेरी गगरी का नीर राजा छलकि न जाय।
मिर गोरी के टीका सोहै
मेरी भूमर की आव राजा विगड न जाय।
नार गोरी के टीका सौहै
मेरी निकलस की आव राजा बिगड न जाय।
हाथ गोरी के दस्ते सोहै
मेरी चुड़ियो की आव राजा विगड़ न जाय
कमर गोरी के पेटी सोहे
मेरी झालर की आब राजा विगड़ न जाय।
पैर गोरी के जूते सोहै
मेरी सेडिल की आव राजा विगड़ न जाय।

सुहागरात के वाद वधू की लज्जा कम हो गई। वह अव अपने पति के साथ कुछ खुल कर प्रेमालाप करने लगती है। बादल की गरज और विजली की चमक से घवरा कर वह अपने प्रीतम से लिपट जाना चाहती है। वह हर रूप में अपने पति से मिलने को उत्सुक है—

विजली चमके घटा के वीच।
मालन वनके ढूँढूँ सैयाँ को, सैयाँ मेरे पैयौ वगीचा के वीच
धोविन वनके ढूँढूँ राजा को, राजा मेरे पैयो तलैया के वीच
धीमर वनके देखूँ छैला को, राजा मेरे पैयो कुअटिया के वीच
रनियाँ वनके देखूँ राजा को, राजा मेरे पैयो सेजरिया के वीच

गाँवो मे कम वय की लडकियो के विवाह भी वहुधा हो जाते हैं। उनका गौना कुछ वर्षो वाद तव होता है जव उनका यौवनागमन होने लगता है। इस समय तक वधू भोली और नासमझ ही रहती है। ऐसे मे जव उसका पति उससे प्रेमालाप करता है, उसका आलिगन करता है, उसके साथ रति-क्रीडा करता है तो वह भय-भीत हो जाती है। ऐसी ही एक वधू अपनी सखी से अपने गौने की रात का वर्णन कर रही है—

जिय गौने की हाय रात कहे मुस्किल भैना।
गौना करके लाए पीया। जवई से घवडायौ जीया।
मेरो थर थर काँपे गात पडेगा दुख सहना। जिय०
मरी जाउँ मे डरकी मारी, कोमल गात उमर की वारी।
रही सखी के साथ जानती कुछ मैं न। जिय०
सचरी वात कहूँ मे मन की जानूँ नाँय सार सेजन की।
मोपै धरौ पिया ने हाथ जुवन की ले सेना॥ जिय०
जो कछु वीती कही न जावे, दुसमन मोको राम दिखावे॥
मोतै करी ननद ने गात अकेली तज के ना॥ जिय०

प्रथम वार की रति-क्रीडा से नव-वय वाली वधू अत्यधिक भयभीत हो गयी है। उसके मारे शरीर मे पीडा हो रही है। वह अपने पति से प्रार्थना करती है कि उसके उपचार का शीघ्र प्रवन्ध किया जाये। आगरा दिल्ली पास-पास है। दिल्ली के वैद्य-हकीम भी प्रसिद्ध और योग्य माने जाते हैं अत वह वधू दिल्ली से किसी वैद्य को वुलाने का आग्रह करती है —

हाय जरा दिल्ली से वैंच वुलाय रँग रसिया मरी दर्द की मारी।
पहलौ दर्द मेरे गालो पर आयो,
चूमाचामी मे दिल घवडाय रग रसिया, मरी दर्द की मारी।
दूजो दर्द मेरे पेडू पर आयो,
खोला खाली मे दिल घवडाय रग रसिया, मरी दर्द की मारी।
तीजौ दर्द अर्रांटे पै आयौ,
झगडा झगड़ी मे दिल घवडाय रग रसिया मरी दर्द की मारी
जरा दिल्ली से वैद्य·······

एक अन्य नवोढा वधू का वर्णन निम्नलिखित गीत मे है। उसके यौवन का पूर्ण विकास हो चुका है। उसके अग-प्रत्यग से मादकता टपक रही है —

आई गौने कूँ दुलनियाँ कैंसे सपरी।
गौने को जव दुलहन आई ओढि के चूँदर पीली,

जोवन मे भरपूर वाम नारंगी दोऊ रसीली,
वारी उमरि की ललनियाँ, कैसे सपरी ।
होठ गुलाबी, गाल कटोरा, नैना मिरगा कैसे
माथे ऊपर वेंदी चमके दामिन चमकै जैसे
चले गज की सी चलनियाँ, कैसे सपरी
नख-सिख गहने पहन कामिनी नागिन सी लहरावै
भोलानन मुखड़े पै, वाला सोवन मे मुस्कावै
हरवा पहिरावै मलिनियाँ, कैसे सपरी ।

रति सम्वन्धी एक और गीत है। इस गीत मे वधू की लज्जा, उसका भय और उसकी परिस्थिति का चित्रण वड़े सीधे-सादे किन्तु सरस शब्दो मे किया गया है। इस गीत मे 'सपरी' का प्रयोग भी वड़ा सुन्दर और अनुकूल हुआ है। सपरी का अर्थ है व्यतीत होना, निवटना। आगरा मे 'सपरी' का प्रयोग कर अनेक गीत चल पड़े हैं जो वडे सरस और लोक प्रिय हैं।

सैयाँ खेंचत हमे कुठरिया कैसे सपरी ।
मात-पिता को पीहर छूटो, संग सहेली छूटी,
हाथ पकरि कै हमकूँ खीचत सारी चुरियाँ फूटी,
द्वारे देखत है दिवरिया, कैसे सपरी ।
वतियाँ मान हमारी गोरी काहे को सरमावै,
काहे तू तरसावै मोहे, काहे तू घवरावै,
जल्दी आजा वीच सिजरिया, कैसे सपरी ।
खेंचातानी तुमनें करिके खोलि मोरी सारी,
जल्दी छोड़ौ सैयां मोरे, अभै उमर है वारी,
मोरी कसकत है कमरिया, कैसे सपरी ।
नेकु दया अव कर दै प्यारी काहे को तरसावै,
छलकी जो गागरिया रस की काहे नाँहि पियावै,
अरजी सुन ले प्रान पिअरिया, कैसे सपरी ।
मन मे धीरज धार सजनिया गई कुठरिया डरकें,
सैया लूटे मजा राति भर, सोये अटरिया पर कें,
दोनो हैं जागें दुपरिया, कैसे सपरी ।

पति ने रात भर रति-क्रीड़ा की है। दिन निकलने पर भी वह अपनी नयी-नवेली दुलहिन को नही छोड रहा। दुलहिन रात भर की रति-क्रिया से प्रसन्न तो है

किन्तु उसे घर के अन्य लोगो से लाज लगती है। वह अपने पति से कहती है कि अब सवेरा होने पर तो छोड दो। 'दई मारे' और 'फजर' शब्दो का प्रयोग वड़ा सुन्दर और स्वाभाविक है ,—

छोड दई मारे फजर ह्वै गई रे।
भोर भई चिडिया चौहचाई मुल्लवा ांग दई रे।
गायन के तो वन्धन खुलगए दूव मे परगई रई रे।
जेठ मेरा जागे जिठानी भी जागे,
आन स्याने देवरा ने कूक दई रे। छोड०
तडप तडप सब रैन विताई
आंखिन मे निंदिया छाई रे॥ छोड़०

इस गीत मे कही कही 'दई मारे' के स्थान पर 'वज मारे' का भी प्रयोग होता है।

प्रथम वार की रति-क्रीडा से नव-वय की वधू को वडा कष्ट हुआ है। उसके सारे शरीर मे पीडा हो रही है। वह पीडा से कराहती हुई इधर उधर लोट लगाती है। उनका शरीर वडा कोमल और दुवला-पतला है। उसे अपने शरीर पर आभूषण वडे भारी लगते हैं। इस सुकुमारता के आगे विहारी की नायिका भी लजा जायेगी :—

लोट विलैया ले गई दर्द की मारी।
मैं लोटी लोटी डोलूँ दर्द मारी॥
अंगुली मोरी हल्की अंगूठी मोरी भारी। मैं०
एडी मोरी हल्की पायल मोरी भारी॥ मैं०
टूंडी मोरी हल्की कि पेडू मोरा भारी॥ मैं०
कलाई मोरी हल्की और चूडी मोरी भारी॥ मैं०

विवाह के वाद धीरे-धीरे वधू को रति का अभ्यास हो गया है। उसे अव अपने पति के साथ आनन्द आता है। वह अव पूरी तरह अपने पति के वश में है। वह उसके इशारो पर काम करती है। वह उस पर जी-जान से न्यौछावर है। उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने के लिये वह सदा तत्पर रहती है। तभी तो वह कह रही है ,—

नैनो के सामने है और भई तोवा ही तोवा।
तेरी उड़ाई मैं तो ऐसी उडी रे वावा।
जैसे पतग विच डोर, भई तोवा ही तोवा॥ १॥

तेरी नचाई मैं तो ऐसी नाची हाँ जानी प्यारे।
जैसे जंगल विच मोर रे, भई तोवा ही तोवा ॥२॥
तेरी भटकाई मैं तो ऐसी भटकी हाँ जानी।
जैसे चन्दा विना चकोर, भई तोवा ही तोवा ॥३॥
तेरे बुलाई मे तो ऐसी वोली हो।
जैसे कोयलिया करती गोर रे, भई तोवा ही तोवा ० ॥४॥

थोड़े ही दिनो की रति-क्रीड़ा और फिर गर्भ की पीडा। गर्भ ठहर जाने पर अव वधू का हाल वेहाल हो रहा है। उसका प्रत्येक महीना कोई न कोई नयी वात लेकर आता है। निम्नलिखित गीत में गर्भिणी के प्रत्येक माह की परिस्थितियो का वर्णन है। नवे महीने मे जव वालक जन्म लेता है तो गर्भिणी अपने सारे कष्ट विस्मृत कर आनन्द मे डूँव जाती है :—

वहन मेरी, वालम के वसमे परी मेरौ करौ हाल वेहाल।
मेरे पहलौ महीना गर्भ को,
कोई दूजे में भयौ खयाल। वहन०
मेरे तीजौ महीना दिल फिरे,
कोई चौथे मे खुगी कमाल। वहन०
पाँचयौ महीना मन चाट पै
कोई छटए मैं माँगे अनाल। वहन०
सातए महीना सव ठौर से,
कोई आमें सिहोरा माल। वहन०
आठए महीना दिन गिनूँ,
कोइ नौए मे जनमो लाल। वहन०
खुशी भई सव नगर, कोई गामे वधाई हाल। वहन,

पति-पत्नी की कभी-कभी अनवन भी हो जाती है। ईस अनवन का कोई विशेष कारण नही होता। छोटी-छोटी वातो पर भी एक दूसरे से रूठ जाया करते हैं। निम्नलिखित गीत शुद्ध ग्रामीण-जीवन का है। पत्नी अपने पति के दुर्व्यवहार पर रूठ कर पीहर चली जाती है। उसका पति उसे मनाने पहुँचता है—

कोरी कलसिया शीतल पानी,
रोटी देवे चाली रे।
रोटी उतार मेड़ पर रख लई,
गाजर खोदन लागी रे।
खोद खाद सिर पर रख लई,

पीछे पडो भिखारी रे।
एक टूक मैंने वाको फेंको,
आय गये बलम हजारी रे।
एक थाप मेरे मुख पै मारी
टूटि परी नथ वारी रे।
आठ दिना मैंने अन्न न खायो,
दस दिन सोय गई न्यारी रे।
कोठे ढूँढ़ कुठरिया ढूँटी जा पकडो महतारी रे।
ऊँची अटारी झझन किवारी,
जामे सोय तेरी घरवारी रे।
मइया सोय गई बबुलई सोय गये
गोरी को बगदावे।
मुँह पर डाल रुमाल गोरी के अगरो छेरी
कितनओ अन्न लुट्यो मेरी घरवारी रे
लौट चलो घर अपने को।
नन्दो सोय गई नन्दोई सोय गये राजा कौन मनावे रे
गज भर घुँघटा मार के
राजा के अगाई छेरी रे
कितनी मार लगाइयो मेरे राजा जी
लौट चलो घर अपने को।

शीतकाल मे सास का अपनी बहू से कथन —

अरि जा जाडे को जोहरते बहुअलि लैदीजो
खाट कुठरिया मे।
साल अब गए बीस की आय
जोर जाडे ने दियो लगाय,
सौरि डइया की लेउ भरवाय।
सो जाडे में ठिठरंगे बालक तू दैलीजो खोर किवरिया में।
अरि जा जाडे ...... ... ....
कै जाडो परि रह्यो वेसुमार
चौ तरफ मचि गयो हाहाकार
मारि दये लहये और अरहार
सो खेतनमे ते झारि पताई लऱ्यो बाँधि गठरिया में।
अरि जा जाडे .. ... ........

भीत से खेत करे बिसमार
न बाकी छोड़ी एकउ घार
परैगी कैसे जाने पार
सतौ जौर भेरावती मारौ है गयौ पार नगरिया मे ।
अरि जा जाड़े की ·····

भाभी-देवर के हास-परिहास का कभी-कभी बुरा परिणाम होता है। देवर कभी-कभी भाभी के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है । ऐसी परिस्थिति भाभियो के सामने बहुधा आती है । एक भाभी अपने देवर को समझा रही है :—

हम कूँ छेड़ौ ना दिवरिया वारी उमरिया कच्चे जोवन
देवर कही मान ले मेरी मति करि झंगा झोटी
नरम कलाई मुरकि जाइगी पई न जागी रोटी
जाफिल होवैगी उँगरिया, कैसे सपरी ।
खेंचातानी करौ न देवर मन मे हैं रयो खटका
झटका मार दयो जोवन मे चोली भरि गई चटका
लचका खावै है कमरिया, कैसे सपरी ।
भोर होत सासुर से दिवरा करूँ सिकायत तेरी
विन के पीछे तूने जालिम जान अकेली घेरी
तैंने समझी मैं छिनरिया, कैसे सपरी

इस दूसरे गीत में एक भाभी अपने देवर से अनुचित सम्बन्ध जोड़ बैठी है। एक रात रति-क्रिया मे भाभी की अँगूठी देवर की सेज पर गिर गयी और उसके हाथ की अँगुली भी घायल हो गयी । वह खीझ कर अपने देवर से कहती :—

सुनि ले छोटे से दिवरिया कैसे सपरी
जोरूँ हाथ परूँ मैं पइयाँ सुनि ले दिवर हजारी
राति तेरी सेजन पै दिवरा गजव है गयो भारी
खुई गई सोने की मुदरिया, कैसे सपरी
मेरी मोकूँ देउ मूदरी करौ न नैंक अवारी
सासुलिया सुनि गारी देवे करै हमारी ख्वारी
सोटा मारेगी ववुरिया, कैसे सपरी ।
भौत कही पै एकु न मानी, कीनी झिंगा-झोटी
मुरकि कलाई गई हमारी तयी न जावै रोटी
घाइल है गई रे उँगरिया, कैसे सपरी

एक विरहिणी अपने पति के बाहर जाने पर तड़प-तड़प कर उसकी याद कर

रही है। सावन का मास स्त्री के मन मे काम-वासना और अधिक उद्दीप्त कर रहा है। वह अपनी सखी से कहती है —

वीतौ जावै रे मवनवा, कैसे सपरी
सावन बीतौ जाय सखीरी याद पिया की आवै
धरु ँ हिया मे धीर कहाँ तै वैरी मदन सतावै
मोरे आये न सजनवा, कैसे सपरी
बँधै न मन मे धीर गुजर दिन वाट देखते जावै
विन पीतम प्यारे के मोकू ँ नीद न छिन भर आवै।
मोकू ँ आवै न कलनियाँ, कैसे सपरी।

## मृत्यु-गीत

हिन्दुओ मे षोडश मस्कार माने जाते है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सस्कार लगभग सभी जातियो मे किसी न किसी रूप मे माने जाते है। मृत्यु मानव-जीवन का अन्तिम सस्कार है। हमारे देश मे हर सस्कार मे गीत गाने की प्रथा है। मृत्यु के समय भी गीत गाने की प्रथा है। इन गीतो मे विपाद और वेदना की गहराई होती है।

ऋग्वेद मे मृत व्यक्ति के प्रति शोक प्रकट करने के अनेक सूक्त मिलते है। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग जायगी, उसकी रक्षा को कौन से रक्षक रहेगे, आदि का वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओ मे वडे रोचक ढग से किया गया है। मृतात्मा के लिये कहा गया है :—

प्रेहि प्रेमि पथिमि पूर्व्येभि
यत्रा नः पूर्वे पितर परेयु।
उमा राजाना स्वधया मदन्ता।
यम पश्येयासि वरुणं च देवम्।[1]

रामायण और महाभारत मे विशेप व्यक्तियो की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसग आये है। ऐसे प्रसगो को मृत्यु-गीतो की श्रेणी मे रखा जा सकता है। कालिदास ने कुमारसभव मे रति का वडा हृदयस्पर्शी विलाप कराया है। 'रघुवश' मे भी महाकवि ने इदुमती की अकाल मृत्यु पर राजा अज का जो शोक व्यक्त किया है वह विश्व-साहित्य मे अद्वितीय है। उर्दू साहित्य मे 'मर्सिया' के रूप मे शोक-गीत मिलते है। 'मर्सिया' काव्य का एक विशिष्ट प्रकार है।

---

१ ऋग्वेद १०।१४।७।

व्रज मण्डल मे मृत्यु-गीत नही के वरावर है। कही-कही ये गीत सुनाई देते है। इसका कारण यही है कि यहाँ आनन्द के अवसरो पर ही गीत-योजना स्वीकार की गयी है। आगरा जिले की भी यही स्थिति है। यहाँ मृत्यु-गीतो का प्रचलन नही है। हाँ, कुछ आगरा वासी चतुर्वेदियो मे मृत्यु-गीत अवश्य प्रचलित हैं। ये गीत विना किसी वाद्य-यन्त्र के गाये जाते है। इन गीतो मे मृत व्यक्ति के विविध प्रिय पदार्थों के नाम ले-लेकर विलाप किया जाता है। कभी-कभी बिना गीतो के भी विलाप होता है। जैसे :—

हाय ! कटोरदान मे पराँठे धरे छोड़ गयो रे !
हाय ! अँगौछा खूँटी पै टँगौ रहि गयो रे !

चतुर्वेदियो का एक मृत्यु गीत निम्नलिखित है :—

काए के कारन जौ बए, और काए के हरे-हरे वाँस।
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।
लाला धरम के कारन जौ बए,
मरन के काजे हरे-हरे वाँस।
वेटी न व्याही अपनी,
मढहे न लीपौ कन्यादान।
साजन न झुलसे द्वार,
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।
काए के कारन गऊ दई
काए के दीए गऊ दान
पार के कीजे गऊ दई,
और तारन कूँ दए गऊ दान।
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।

## २—ऋतुओं, महिनों और धर्म के आधार पर तीज-त्यौहारों के गीत

भारतीय लोक-सस्कृति मे तीज-त्यौहारोका बडा महत्त्व है। किन्तु व्रज मे तो राधा-कृष्ण के कारण भी तीज-त्यौहार आये दिन हुआ ही करते है। यहाँ सदा ही कोई-न-कोई व्रत, पर्व या त्यौहार होता ही रहता है। आगरा जिला व्रज-मण्डल का अग है, फिर यह इन सब विशेपताओ से अछूता कैसे रह सकता है? आगरा को राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की सीमाएँ स्पर्श करती हैं और नागरिक जीवन पर इस्लामी सभ्यता तथा भाषा ने भी पर्याप्त प्रभाव डाल दिया है। आगरा की इस प्रकार अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ है। नगर की सास्कृतिक परम्पराओ को बनाए रखने का अधिकाश श्रेय यहाँ की नारियो को है। नये युग की पढी-लिखी नारियाँ अपनी प्राचीन परम्पराओ को भूल सी रही हैं। वे तीज-त्यौहारो पर फिल्मी गाने गाकर ही सतुष्ट हो लेती है किन्तु अपढ और बूढी महिलाएँ अब भी अपने समस्त तीज-त्यौहार मनाती हुई प्राचीन परम्पराओ की कडी जोडे रखती है। समय-समय पर होने वाले अनुष्ठानो, तीज-त्यौहारो मे अब भी जो गीत गाये जाते है वे अद्‌भुत उल्लास, स्वाभाविक उद्‌गार और सरस भाव लिये होते है।

कृष्ण लीलाओ का सर्वाधिक गान जन्माष्टमी पर होता है। यह जन्माष्टमी व्रजभूमि का विशेप उत्सव है। यही वह भूमि है जहाँ योगीश्वर और लीलामय कृष्ण ने जन्म लिया था। आज भी कण-कण मे उनकी ही अलौकिक लीलाओ की सुमधुर स्मृतियाँ व्याप्त है। सम्पूर्ण व्रज भगवान कृष्ण के जन्मदिवस पर कृष्ण के प्रेम से विभोर हो झूमझूम उठता है। भगवान पालने मे झुलाये जाते है। स्त्रियाँ भगवान को पालने मे झुलाते हुए मातृत्व स्नेह की भावनाओ से हर्षित होकर गीत गाती है तो एक बार समस्त वातावरण गूँज उठता है और कल्पनाएं साकार हो उठती है :—

जसौदा जायो ललना,
मैं जमुना पै सुनि आई।

इसके बाद राधाष्टमी का त्यौहार होता है। राधिका के नाम मे कुछ ऐसा जादू है जो हमे प्रेम के झूले मे झुला देता है। राधा प्रेम की पुजारिन सरल हृदया साक्षात स्नेह की प्रतिमा है तथा आल्हादिनी शक्ति भी है। "राधा प्यारी जन्म लियौ है" कह-कह कर व्रजवासी नाचते गाते फिरते है। ऐसा भी माना जाता है

कि इस दिन हरिदास जी का भी जन्म हुआ था। इस उपलक्ष मे हरिदास जी की साधना-स्थली टट्टी स्थान पर एक मेला लगता है जिसमे सगीत समाज की व्यवस्था होती है और मथुरा के चौवे स्त्री-पुरुप सहस्रो की सख्या मे वडे उल्लास से सम्मिलित होते है। इसी दिन रावल मे भी धूमधाम से मेला लगता है। आगामी माह मे श्राद्ध, नवरात्र, दशहरा, टेसू के गीत तथा वालिकाएँ झाँझी के गीत गाती है।

व्रज की लोक-सस्कृति के चार अमूल्य तत्व है—रस, रास, रसिक और रसिया। व्रज के अणु-अणु मे आनन्द व्याप्त है जिसको रसिक जन रास एव रसियो के माध्यम से पान करते रहते है। व्रज के लोकजीवन मे रास का विशेप महत्व है जो एक प्रकार से खुला रगमच है। रास एव नाट्य के विकृत रूप भी व्रज मे विशेप व्याप्त है जिनमे भगत, नौटकी, खोइया आदि उल्लेखनीय है। रसिया व्रज का लोकप्रिय गीत है। शास्त्रीय सगीत का प्राचीनतम केन्द्र होते हुए भी लोकसगीत के लिए भी व्रज प्रसिद्ध है। होली-गीत के रूप मे रसिया का प्रादुर्भाव हुआ है। कौन सहृदय इस रसिया पर झूम नही उठता —

मेरो वारो सो कन्हैया,
कालीदह पै खेलन आयौ रे।
ग्वाल वाल सव सखा सग मे।
गेद को खेल मचायौ रे।
मेरौ वारौ सो कन्हैया ......

अन्य तीज-त्यौहार भी मनाए जाते है जिनमे प्राय स्त्रियो का ही प्राधान्य रहता है। कृष्ण से इतर जाहरपीर, देवी आदि अनेक स्थानीय देवी-देवताओ की भी मान्यता विशेष है। डा० सत्येन्द्र ने लिखा है कि ये व्रतानुष्ठान ही वास्तविक लोकतत्व से युक्त लोकमानस का रूप प्रस्तुत करते है। ये वस्तुत हमारी सस्कृति की नीव है और इनमें अत्यन्त प्राचीन अवशेप आज भी विद्यमान है। लोक-जीवन मे इन सभी त्यौहारो का विशेष स्थान है। भारतीय सस्कृति रूपी स्वास्तिक की एक भुजा यह लोक जीवन और आचार है जिसके अनुष्ठानो मे मागलिक भावनाओ से ओतप्रोत समृद्धि की भावनाएँ व्याप्त रहती है। लोक जीवन मे हम इन्ही से प्रेरणा प्राप्त कर अमगलो और कष्टो, एव विघ्नो से वचने की भावना प्राप्त करते है। व्रज प्रकृति की सुरम्य वाटिका है जिससे कलाकारो को भी प्रेरणा मिलती रही है। मन्दिरो के रूप मे स्थापत्य कला, भित्ति चित्रो के रूप मे चित्रकला एव शास्त्रीय सगीत का तो पर्याप्त विकास हुआ ही पर लोक-सगीत, साँझी एव वगला वनाने की कलाए व्रज की अपनी निजी एव सर्वथा अनूठी कलाए है। लोक सगीत मे रसिया विशेप उल्लेखनीय है। व्रज की साँझी एक

प्रसिद्ध कला है जिसका प्रारम्भ पौराणिक दृष्टि से राधारानी को प्रसन्न करने के लिए श्री कृष्ण ने किया था। सवसे पहिले शरद ऋतु की सध्या को यह फूलो से वनाई गई थी, इसीलिए इसका नाम साँझी पड गया। आज यह सारे व्रज मे आश्विन कृष्ण पक्ष मे वनाई जाती है साझी का यह लोकोत्सव आश्विन मास की प्रतिपदा से पितृपक्ष भर चलता है। इस कला मे तेल, पानी, सूखे रग आदि अनेक प्रकार की विधियाँ है। मदिरो मे फूलो से विशेप प्रकार की सजावटे वगले के रूप मे प्रसिद्ध हो गई है। व्रज की यह झाँकी जिसमे व्रज की अमराइओ, यमुना की कछारो एव करील की कु जो की अप्रतिम शोभा की एक झलक एक साथ मस्ती भर देती है—जिसको,

ज्यो ज्यो हरि निहारिए नेरे ह्वै नैनन
ज्यौं-त्यौ खरी निकरै निकाई

क्वार का महीना अनेक धार्मिक त्यौहारो और उत्सवो से युक्त होता है। इस महीने का प्रथम पक्ष श्राद्ध-पक्ष होता है। दूसरे पक्ष मे प्रतिपदा से नव-दुर्गा पूजन आरम्भ होता है। क्वार का महीना लडकियो के खेलो का महीना भी कहा जा सकता है। नव-रात्रि मे नौ-दिन न्यौरता खेला जाता है। मिट्टी का एक छोटा सा घर वनाया जाता है। उसमे देवी की एक पूरी प्रतिमा दीवार पर वनाई जाती है। इसे कौड़ियो ओर चूड़ियो आदि से सजा कर नित्य प्रात. सूर्य निकलने से पूर्व तारो की छाया मे ही लड़कियाँ और स्त्रिया इस पर मिट्टी की 'गौर' चढ़ाती है और गीत गाती है—

गौरी रे गौरा,
खोलौ रे किवरिया।
वेटी गौरन दे
खेलन आई।
खेलौ हो खिलतरि
वेटी, कहा-कहा लाई।
लौंग लकरिया की
दाँतौन लाई॥
भरि गडुआ जल
अछवन लाई॥

इस गीत मे गौरी-गौरा से पिता का राज्य, भाई की जोडी, भाभी की गोद की शोभा भतीजा, छोटा देवर, हरी चूडियाँ, मोती भरी माँग द्वारा सुहाग की कामना और प्रार्थना की जाती है। इस गीत मे पुत्र-प्राप्ति की कामना भी है। इसी अवसर पर सांझी रखी जाती है। साँझी के अनेक रूप प्रचलित हैं।

## कुँवारी कन्याओं का व्रत

इसमे कन्याएँ प्रतिदिन गोवर से लीपकर सूर्यास्त के पूर्व साँझी तैयार कर लेती है। लोक मे सहज प्राप्त उपकरणो-गोवर, मिट्टी, फूल, पीतर-पन्नी आदि की सहायता से दीवालो पर चित्राकन करती है। गोवर की पृष्ठभूमि पर विभिन्न फूलो द्वारा अनेक प्रकार की आकृतियाँ वनाई जाती है। ये आकृतियाँ प्रतीकात्मक भी होती है। जैसे—

'साँत्या' या सतिया या स्वस्तिक—कल्याण वाचक।
सात विन्दियाँ—सप्त ऋषि
केला जैसा पेड—रुद्र पूजा

ये कलाकृतियाँ अपनी-अपनी सूझ-वूझ की द्योतक होती है और अन्तिम दिन कोट बनाया जाता है जिसमे कला का विशेष चमत्कार प्रदर्शित होता है। विवाहोपरात पहले वर्ष कन्या को साँझी खेलने का अधिकार होता है। साँझी के इस लोक प्रचलित त्योहार मे 'कला' के साथ 'गीत' का भी सयोग रहता है।

सायकाल 'साझी' बना कर कन्याएँ मिल कर साँझी के गीत गाती है। साँझी का एक अति प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है —

मैं तोसे पूँछू साँझी भैना कै तेरे भाई
पाँच री पचास मेरे नौ-दस भाई
नौ-दसो के अण्डर-वण्डर साँझा मेरा भाई
मै तोसै पूछूँ साँझी भैना कै तेरे भाई
पाँच री पचास मेरे नौ-दस भाई
नौ-दसो का अण्डर-वण्डर ··· मेरा भाई

(रिक्त स्थान पर लडकियाँ अपने भाईयो के नाम लेकर यह गीत दुहराती जाती है।)

साँझी को विदा कराने एक लगडा वामन आया है, उसका परिहास करती हुई लडकियाँ उससे पूछती है कि तू साँझी के लिये क्या-क्या आभूषण लाया है ? वह अनेक आभूषण वताता है। लडकियाँ इससे सन्तुष्ट न होकर ऐसे आभूषणो के नाम लेती है जिन्हे वह नही लाया है। यह गीत इस प्रकार है —

चल-चल रे लगडे वामन तू साँझी लेने आया।
मेरी साँझी को वता क्या-क्या तू लाया ?

कुण्डल लाया, झुमके लाया, वाले क्यो नही लाया ?
चल-चल रे ·····.
कटियाँ लाया, झूमर लाया, टीका क्यो नही लाया ?
चल-चल रे·······
हरवा लाया, माला लाया, गुलूवन्द क्यो नही लाया ?
चल-चल रे ·········
अनवट लाया, विछुए लाया, पायजेव क्यो नही लाया ?
चल-चल रे लगड़े वामन तू साँझी लेने लाया ।

## रंगों से निर्मित 'साँझी'

यह साँझी का दूसरा रूप है जिसका प्रचार विशेषत. वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरो मे है । इसमे किमी वडे अथवा छोटे चवूतरे पर विभिन्न रगो से, जो सामान्यत: सूखे होते हैं, कृष्ण की लीलाओ का चित्राँकन किया जाता है । यह अपेक्षाकृत अधिक सुसस्कृत एव कलात्मक है । इसमे हर रंग के लिये कागज के चित्र काटे जाते है और अनेक रग के व्लाक की छपाई की भाँति अनेक कटे हुए चित्रो की सहायता से चित्राँकन किया जाता है । यह चित्राँकन मन्दिरो तक ही सीमित नही है वरन् घरो मे भी वालक छोटी-छोटी चौकियो पर इन्हे वनाते है और अपनी रुचि तथा प्रतिभा के अनुसार चित्रो को चुन-चुन कर काटते हैं । इसमे लोक-रुचि के अनुसार अव सामाजिक चित्र भी प्रस्तुत किये जाते है । कृष्ण की लीलाएँ तो केवल मन्दिरो तक ही सीमित रह गयी हैं ।

चवूतरे के अतिरिक्त तेल या पानी पर भी रगो की सहायता से चित्राँकन की प्रथा है किन्तु यह विधि वहुत कम प्रचलित है ।

## वंगला

व्रज क्षेत्र कृष्ण की जन्म-भूमि के कारण मन्दिरो की नगरियो से युक्त है । एक समय था कि जव पूरे व्रज-मण्डल का प्रत्येक घर मन्दिर वना हुआ था । ठाकुर जी को विशेप ताप से वचाने के लिये फूल-वगले वनाये जाते हैं जिनमे फूल-पत्तियाँ और केले का विशेप प्रयोग किया जाता है । कृष्ण की विभिन्न लीलाओ को उनकी पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत कर मोहक दृश्य उपस्थित किये जाते है । इन वगलो के निर्माण मे सामान्यत. फूलो का आधिक्य रहता है जिसमे श्वेत रंग के सुगन्धित पुष्प वेला और चमेली प्रमुख होते हैं । यमुना-कुँज, कदम्व के वृक्ष और नौका-विहार आदि अनेक दृश्य उपस्थित किये जाते है ।

## थापे

आगरा मे सभी मागलिक कार्यो तथा त्यौहारो पर घरो मे थापे वनाने की प्रथा है । ये थापे व्रतानुष्ठानो तथा सस्कारो के अवसरो पर भी वनाये जाते हैं । डा० सत्येन्द्र ने इन थापो को आठ भागो मे विभाजित किया है—१. चीतने, २ थापे, ३. धरने, ४ भरने, ५ काढने, ६ लिखने, ७ खोदने, ८ जमाने । इनमे चीतनो और थापो मे विशेष दक्षता दिखाई देती है । लोक-जीवन मे कलाएँ वहुत गहराई तक प्रवेश कर गयी है । इन कलाओ के साथ मिलकर लोकगीत और अधिक सरस, सुन्दर तथा प्रभावपूर्ण बन जाते है ।

## नौरता

'नौरता' प्रतिपदा से नवमी तक खेला जाता है और दशहरा से लडकियाँ झाँझी अथवा झेझी खेलती है । झाँझी के अनेक गीत है । एक गीत द्रष्टव्य है .—

यहाँ सरकण्डे की ओबारी
यहाँ सरकण्डे .. ...
झकझरिया लाल किवार
नागर वेले की ।
यहाँ जाई मे श्रीकृष्ण पौड़िऔ .... ...
यहाँ जाई मे . ....... .
व्हौरिया ढोरे व्यार
नागर वेले की ।
यहाँ ढोर ढुरतरि ज्यो कहे...........
यहाँ ढोर .. ......
मोहि हँसुला देउ गढाई,
नागर वेले की ॥

झाँझी के दिनो मे गाँवो की लड़कियाँ गाँवो से बाहर जाकर दगरो-खेतो मे खेल खेलती है । उस समय हास-परिहास तथा व्यंगो से युक्त गीत गाये जाते है । आगरा के गाँवो मे 'फूहरि पीसै पीसनो मेरी रावरिया' नामक गीत बहुत प्रसिद्ध है ।

फूहरि पीसै पीसनो मेरी रावरिया
जैसे गिरारे कौ रेत, भले मेइ रावरिया
फूहर छानै छाननी मेरी रावरिया
जैसे कटुआ रेत, भले मेइ रावरिया ।
फूहर पावै पावनो मेरी रावरिया

जैसे कुम्हरा कौ चाकु भले मेरी रावरिया।
तऊ न सिकैं म्हैचग, भले मेरी रावरिया

सात बिटौरा वरि गये मेरी रावरिया
जव कहुँ सिके म्हैचग भले मेइ रावरिया।
पहलौ कुप्पा खोलती मेरी रावरिया
तऊ न चुपरे म्हैचग भले मेरी रावरिया।
सातौ कुप्पा खोलती मेरी रावरिया
जव चुपरे म्हैचग भले मेरी रावरिया
ठाडे वैठी डोलती मेरी रावरिया
मटकि लाए म्हैचग भले मेरी रावरिया।

एक और गीत भी वडा लोक-प्रिय है। यह 'पारेबरिया' के नाम से प्रसिद्ध है :—

माँ भइया कहाँ-कहाँ व्याहे-पारेबरिया
माँ भाभी को मुखडो कैसो—पारेबरिया
नाक चना सी, म्हो वटुआसौ,
घू घट मे धुर्राई—पारेवरिया
माँ रोटी कितनी खावै—पारेबरिया
थोरौ खानी, वहौत कमानी—
चई की चई उड़ावै—पारेबरिया
माँ दरवज्जे कहा-कहा लाई—पारेवरिया
आठ विलैयाँ, नौ चकचू दरि—
सोल्है मूसे दीए—पारेवरिया

आगरा नगर मे भी फूहड स्त्री के सम्बन्ध मे एक गीत झेझी खेलते समय गाया जाता है। इस गीत मे असभ्य और असस्कृत नारी का स्वाभाविक चित्र है .—

फूहर आई घर मे नारि धन्य भाग्य तेरे भरतार
सूद साद रक्खे नही घर की आले मे है पड़ी अगरखी
एक ताक मे रुपया धरा दूजे मे है गहना पड़ा
दो दो दिन मे लगती सोहनी घर मे ढ़ेरी लगी है दूनी
चावल दाल वधी है पोट वही पोटरी भु इ मे लोट
छवडे मे जो पापड धरे चूहे ले ले भिट मे पडे
विखरे वरतन विखरी दाल उघरे घर मे सारे माल
आँगन वीच मे चरखा पड़ा घूरे उलटा पीरा पड़ा

हरदम घर के खुले किवाड कुत्ते विल्ली करे उजाड़
रोटी टुकुडे जहँ तहँ पड़े कौवे उड आँगन में गिरे
चून चान घर विखरा पडा मालिक देखे टुक-टुक खड़ा
जव फूहर ने रोटी करी आधी कच्ची आधी जरी
नमक पड़ा है वे तादाद साग दाल नाही कछु सवाद
जो पूछो लड़ने का हाल तामें पूरा करैं कमाल
ध्यान लगा लड़ने मे सारा इसी सवव भिनका घर द्वारा
अच्छा मिला अगर घरवाला अपना घर उन आप सँभाला
जो मिल गए ऊत के ऊत मारन लगे पड़ापड़ जूत।

एक लडकी का आगरा मे विवाह हुआ है। उसे ससुराल मे भाँति-भाँति की असुविधाये और व्यथाएँ सताती रहती हैं। अपनी इन परिस्थितियों पर वह झीखती रहती है। उसे झाँझी खेलना भी अच्छा नही लगता। वह अपनी एक सखी से कहती है·—

कैसे खेलूँगी वैहनाँ आगरे की झेझी
जा घर की तौ कुतिया वुरी है
खानें की पोत कौर टूक यहाँ खा जाइ
घूँसने की पोत कूँ पराए घर जाय। कैसे ······
जा घर की तौ भैंस वुरी है
खाने की पोत न्यार फूँस यहाँ खो जाइ
दूध काढने की पोत कूँ जेठ घर जाइ
जा घर की तौ चकिया वुरी है
नेहना पीसूँ उड़ उड जाइ, मोटी पीसूँ सास चिल्लाई कैसे···—

एक ओर तो वालिकाएँ झेझी खेलती है दूसरी ओर वालक 'टेसू' खेलते हैं। टेसू के गीत प्राय. विनोदात्मक होते हैं। इन गीतों मे अद्‌भुत, मनोरजक और व्यगपूर्ण लघु-कथाएँ होती है। ये गीत छोटे-छोटे होते है किन्तु वडे सधे हुए और सीधी चोट करने वाले होते हैं। टेसू के गीत मे टेसू का वडा विनोदात्मक ढग से वर्णन किया गया है। वह 'महैरी' (मठा और वाजरे के आटे से वना दलिया जैसा वह भोज्य-पदार्थ जिसे किसान वहुधा जाडो मे खाते है) खाते-खाते ऊव गया है। रोटियाँ पटकने की आवाज़ सुन कर वह वार-वार उठता है :—

महेरी को मारयौ रे
मसा रूठि गयौ
ओरु रहयौ पटा तन सोई—

रह्यौ पटा तन तोई
तौ रोटिन के घमके सुनै
सोई उठि-उठि वैठौ होइ
भल भले भले, ता थेईअ
थेअ ता थेईओ ।

यह गीत ऐसे भी है :—

इमली की जड़ से निकली पतंग
नौ सौ मोती झलके अग
अग-अग के टके भुनाये
भीलड़ियो मे टटे आये
देख सूम मेरी चतुराई
मेहरी ने मार्यौ रे अपना मसा
रोटिन के वमके सुने
तौ उठौ हाठ-म्हो धोय ।

टेमू का एक अन्य गीत है :—

टेसू की गैया हो गच पैदानियाँ
औरु असी झालि मुमुखाइ
तौ सिगरे ताल कौ पानी पी गई
तऊ नही प्यास वुझाई
भल भले भले, ता थेईअ थेईअ
ता थे ई ओ ।

वालकों की टोलियाँ टेसू को लेकर घर-घर घूमती है और गाती है :

टेसू मेरा यही अड़ा
खाने को माँगे दही वडा
दही वडे मे मारी लात
जा पडी गुज़रात
गुजरात की वीवी मोटी
वो खाये चने की रोटी
मियाँ ने पिया घी
वीवी का निकला जी ।

कोई एक वालक पहले एक पक्ति कहता है, अन्य वालक उसे दोहराते है ।

आस-पास के सुनने वालो की भीड़ लग जाती है। गा-गा कर बालक बहुत से पैसे एकत्र कर लेते हैं। वे और आनन्दित होकर गाते हैं —

टेसू रा कै सात बहुरियाँ
नाचे-कूदे चढ़ै अटरिया
नौ मन पीसे, दस मन खाये
बडे मल्ल से जूझन जाये
मारूँगा वे मारूँगा
जा दिल्ली पुकारूँगा
दिल्ली के रो काले कोस
मार सिकन्दर पहली चोट।

टेसू के गीतो मे एक फूहड और काम-चोर स्त्री तथा उसके वश मे रहने वाले पति का एक रोचक वर्णन इस प्रकार है:—

हाट ते मैं बीज लायौ
बोवेगी के नाँय रे ?
नाँय मोरे भोले सैयाँ बोयो न जाय रे।
बोय वाय तेरे आगे रक्खो
काटेगी के नाय रे ?
नाय मोरे भोले सैयाँ काटो न जाय रे।
काट-कूट तेरे आगे रक्खो
फटकेगी कै नाँय रे ?
नाँय मोरे भोले सैयाँ फटकोऊ न जाय रे।
फटक-फटकू तेरे आगे रक्खो
बीनैगी के नाँय रे ?
नाँय मोरे भोले सैंया बीनौऊ न जाय रे।
बीन-बान तेरे आगे रक्खो
पीसैगी के नाँय रे ?
नाँय मोरे भोले सैयाँ पीसोऊ न जाय रे।
पीस-पास तेरे आगे रक्खो
माडेगी के नाँय रे ?
नाँय मोरे भोले सैयाँ माडौऊ न जाय रे।
माँड़-मूड़ तेरे आगे रक्खो
सेकैंगी के नाँय रे ?

नाँय मोरे भोले सैयाँ सेकौऊ न जाय रे।
सेक-साक तेरे आगे रक्खो
खावैगी कै नाँय रे?
हाँ-हाँ मोरे भोले सैयाँ खऊँगी तौ सई।

टेसू के वारे मे अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कोई उसे अर्जुन पुत्र बभ्रूवाहन कहता है तो कोई उसे कही का राजा वताता है। २९ सितम्वर सन् १९५७ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे श्री चन्द्रशेखर शास्त्री के नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमे टेसू को मौर्वी-पुत्र वताया गया है।

टेसू के खेल तो अवसर विशेष पर होते हैं किन्तु वालको के कुछ खेल ऐसे भी हैं जो वारहो मास खेले जाते है। ये खेल आगरा तथा व्रज-मण्डल मे वहुत प्रसिद्ध है। 'कोडा जमालसाई' खेल मे कुछ वालक एक घेरा वना कर वैठ जाते है और एक वालक कपडे का कोडा वनाकर उन सवके पीछे चक्कर लगाता है। अगर किसी के पीछे कोडा रख दिया जाता है और वह उसे नही उठाता है तो चक्कर काटने वाला उसे कोडे से मारता है। यदि वह उठा लेता है तो चक्कर काटने वाले के पीछे कोडा लेकर दौडता है। चक्कर काटने वाला खाली जगह पर वैठ जाता है और कोडा पाने वाला वालक अन्य वालको के पीछे चक्कर लगाता हुआ कहता जाता है :—'कोडा जमाल-साई, पीछे देखै मार खाई।' इसी प्रकार एक अन्य खेल मे किसी एक बालक के सिर पर चुपचाप कोई चीज रख दी जाती है। चीज रखने वाला वालक कहता है—

काहू के मूँड पै चिल मदरा
कौआ पादै तऊ न उडा।
मैं पादूँ तो झट्ट उड़ा।

जिस वालक के सिर पर वह चीज रख दी जाती है वह चोर कहलाता है। ऐसे ही खेल आगे चलता है।

छोटे-छोटे वच्चो के साथ खेले जाने वाले अनेक खेलो मे से एक खेल ऐसा हैं जिसमे उस वच्चे की हथेली पर अगुली रख कर उसकी वाहो पर उसे चलाया जाता है और कहा जाता है :—

चली विलइया
हिन्न विड़ाई
मूसे खात
चली विलइया
हिन्न विडाई
मूसे खात
काऊ ऐ गइया पाई होइ नौ दीजौ वीर

(काँख मे गुदगुदा के 'पाय गई' और वच्चा खिल-खिला कर हँस पडता है)।

एक अन्य खेल इस प्रकार है कि सभी खेलने वाले वालक एक घेरे मे वैठते है। ये सव उलटे हाथ रख कर वैठते है, खिलाने वाला हाथ मार-मार कर कहता है :—

थपरी के थपरा, फोरि मारे (खाए) खपरा
मियाँ बुलाए
चमकत आए
पकरि विल्ली कौ कान
(एक दूसरे के कान पकड कर)
चैऊँ-मैऊँ, चैऊँ-मैंऊँ

(सव सो जाते है। उन्हे जगाने पर जो जल्दी वोल पडता है वह भगी बनाया जाता है। सवको खाना मिलता है। सवको दूध-दही और भगी को सूअरिया का दूध या झूँठन दी जाती है।) सव उसका मजाक उडाते हुए कहते है —

भगी की पातर भिनिन-भिनिन
एक और खेल है—
चुन-चुन मूँगा।

(बालक मुट्ठी वाँध कर हाथ वाहर निकालते है। एक वालक हाथ मे कँकडी या और कोई चीज लेकर हरेक की मुट्ठी पर अपनी मुट्ठी रखता है और कहता है ·—

चुन चुन मूँगा
भान कनूँगा
कोठी मे पुरानौ मूँगा

(एक की मुट्ठी मे चुपचाप ककडी डाल देते हैं। चोर पकडने पर 'सेर ले गया पसेरी' कह कर जोर का मुक्का मारा जाता है।)

एक अन्य खेल मे वालक घेरे मे वैठ जाते हैं। एक वालक वीच मे वैठता है। उससे एक-एक वालक कहता है –

वावा-वावा आम देउ
आम है सरकार के
हम भी है दरवार के
एक आम उठा लो
वावा जे तो खट्टा है
दूसरा उठा लो
दोऊ मीठे-दोऊ मीठे।

एक अन्य खेल मे एक लडका अलग खडा होता है और दूसरे लडके उससे प्रश्न करते है —

हरा समुदर
गोपी चन्दर
मछली मछली
कित्ता पानी ?

(घेरे मे एक लडका मछली वनकर खडा होता है और धीरे-धीरे चोटी तक पानी वताता है। समुद्र की सीमा मे से जो निकलता है उसे छूता है।)

एक अन्य खेल मे एक वालक बुढिया वनकर धरती टटोलता है। दूसरे वालक उससे प्रश्न करते है और वह वुढिया के रूप मे उत्तर देता जाता है —

वुढिया (या डुक्को) का ढूँढति ऐ ?
सुई
सुई कौ का करैगी ?
कोथरी सिऊँगी।
कोथरी कौ का करैगी ?
रुपया धरूँगी
रुपैयन कौ का करैगी ?
भैसि लुँगी
भैसि कौ का करैगी ?
दूध पीऊँगी
दूध के नाम मूत पीलै।

वालक का मन बहलाने के लिये खाट या जमीन पर लेट कर उसे टाँगो पर लिटा कर हिलाया जाता है। इस प्रकार हिलाते हुए कहा जाता है —

भू भू के पामू के
अटरियन के वटरियन के
नीम विटिया नीम चाली
नीम ते निवौरी लाई
काची-काची आपु कूँ
पाकी-पाकी जेठ कूँ
जेठु गयौ चोरी
लायौ सात कटोरी
एक कटोरी फूटी

सासुल की टाँग टूटी
आरे मे स्याँपु
टिपारे मे बीछू
डुकरिया बासन-कूसन सम्हारि
राजा की भीति आँमत्यै

और बालक को टाँगो पर ऊँचा उठाकर हल्के से ऐसे गिरा दिया जाता है जैसे कोई दीवार गिर रही हो।

अथवा—

झूझू के
पाँऊँ के
लकनी-लकनी भाड मे
(पान पचासी के, सरवर हाँडी के राजा की छान
कैसे गिरी ? कैसे गिरी ? अरररर धम्म !)
लका सोने के किवाड मे
(लक्का सोने की सारि मे)
बुढिया अपनौ सामान उठइयौ
(डुकरिया अपके बासन भाँडे उठइयो)
राजा की भीति गित्ति ऐ – अररररर धम्म !

झुलाने वाला ऊपर पाँव उठाकर गिरा देता है। बुढिया कहती है—

ऐ पूत मेरौ चकला रैह गयौ
ऐ पूत मेरौ बैलन रैह गयौ

बच्चे को बहलाने के लिये माता बहुधा चन्दा दिखा कर गाती है —

चन्दा मामा ऊल के, फूल के
भरी छबरिया फूल के
(भरी छबरिया टूल के)
आप खामे थारी मे
हमे खिलामे प्याली मे

एक और खेल है जिसमे सब बालक मुट्ठियाँ बाँध कर बैठ जाते है। एक बालक सब की मुट्ठियो पर हाथ रखता जाता है और किसी एक की मुट्ठी मे चुपचाप एक कंकड डाल देता है। वह कहता जाता है —

ककरी मुँदरिया
ककरइ चोर
जो पावै सो
लै उडि जाय

(जिसकी मुट्ठी मे ककड डाला जाता है वह भागता है, उसे पकड़ने सव भागते है।)

वच्चो को हँसाने के लिये 'गाय गुप्प' या 'गाउ-गुप्प' का भी एक खेल है। वच्चे का नीचे वाला होठ पकड कर उससे कहा जाता है —

'कहो गाय'
वच्चा कहता है —गाय
"कहौ गाय का वच्चा"
' गाय का वच्चा"
"गाय गुड खाय"
"गाय ........(दोनो होठ मिला दिये जाते है) गुप्प"

इस प्रकार के अनेकानेक खेल गीतो के साथ खेले जाते है। इन गीतो का कोई विशेप अर्थ नही होता। ये केवल ध्वनियो के आधार पर ही वन गये है। इधर-उधर की उल्टी-सीधी वाते जोड कर वालको को खिलाने और प्रसन्न करने के लिये ही खेलो के ये गीत स्वत ही वन गये है।

## नव-दुर्गा-पूजन

व्रत तथा तीज-त्यौहारो के गीतो मे देवी के गीतो का भी वहुत महत्वपूर्ण स्थान है। क्वार शुक्ला प्रतिपदा तथा चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक देवी का पूजन होता है। इसी को नव-दुर्गा-पूजन कहते हैं। नौ दिनो तक देवी पर घट चढाये जाते है और भक्त-जन देवी की जात (यात्रा) करने करौली आदि जाते। करौली आगरा से भरतपुर (राजस्थान) के मार्ग पर एक गाँव है। यहाँ की देवी वहुत प्रसिद्ध है। यहाँ दूर-दूर से भक्त-जन देवी की पूजा करने आते है और उससे वरदान माँगते है। यहाँ की देवी मे अपार शक्ति, वरदायिनी उदारता और सकट-हारिणी सामर्थ्य मानी जाती है। देवी के गीतो मे 'लाँगुरिया' मुख्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध गीत है। इस लोकगीत मे वडी मधुरता, तन्मयता और प्रभावोत्पादकता है। 'लाँगुरिया' की टेक अन्य गीतो मे भी लगने लगी है। इससे इस गीत की लोकप्रियता ही प्रकट होती है। एक गीत है —

कारी सिल पै न्हाइ मैं
जाडेनि मरि गई बारे लाँगुरिया
हँसलऊ धोयौ मैंने कठलऊ धोयौ,
हरवा धोयौ मलि-मलि कै।
कारी सिल पै न्हाइ मैं
जाडेनि मरि गई बारे लागुरिया।

देवी के गीत 'भेंट' के नाम से भी प्रसिद्ध है। ये गीत भगत लोग गाते है। देवी के पुरुष-भक्तो को 'भगत' कहा जाता है और स्त्री-भक्तो को 'जोगिनी'। १२-१३ वर्ष तक के क्वारे लड़को को 'लगुरा', लाँगुरा' या 'लाँगुरिया' के नाम से पुकारा जाता है। यह 'लाँगुरिया' गीत इसी 'लाँगुरा' को प्रतीक मान कर गाया जाता है। भगत लोग भेंट के गीतो मे देवी की मनौती, भवन, शोभा आदि का चित्रण करते है। 'भेंट' का एक गीत है :—

भमानी मेरे आइ विराजी अँगना—
भमानी मेरे आइ बिराजी अँगना।
कौन चढाए मैया धुजा औ नारियर
कौन चढाए चोलना—
भमानी मेरे आइ विराजी अँगना।
राजा चढाए मैया धुजा ओ नारियर
रानी चढाए चोलना—
भमानी मेरे आइ विराजी अँगना।

देवी की जात (यात्रा) का एक गीत भदावर के क्षेत्र मे बहुत प्रसिद्ध है। इसे ढोलक-मजीरे पर नाच-नाच कर गाया जाता है। यह इस प्रकार है :—

जोगनी पल्लौ लटिकै रे जोगनी पल्लौ लटकै।
सीधौ है जा लाँगुरा मोरा करिहाँ मटकै ॥

माता तेरी गैल मे एक लाँबो पेड़ खजूर,
तापै चढि कै देखिओ मेरी माता कितनी दूर.
जोगनी पल्लौ लटकै ...... ....

माता तेरी गैल मे चार जोगनी जाँयँ
दो गोरी दो सामरी और सोलह पूरी खाँयँ
जोगनी पल्लौ लटकै ........ ....

देवी की जात का एक और गीत 'लाँगुरिया' भी आगरा जिले के लगभग सभी गाँवों में सुना जा सकता है :—

अरी कहाँ गयो ठेकेदारु सडक पै ठाड़ी
लुटि गई लाँगुरिया
अरी साडी पै जाने रेल चलाई
औरु साया पै चलाय दई खड़ खड़िया
कहाँ गयौ ठेकेदार ·· ···
खडुआ पै जाने रेल चलाई
पौंची पै चलाय दई खडखडिया
कहाँ गयौ ठेकेदार ·· ·······
हँसुली पै जाने रेल चलाई
नथुली पै चलाय दई खडखडिया कहाँ ······ ··· ···
पायल पै जाने रेल चलाई
बिछुअन पै चलाय दई खड खडिया। कहाँ गयौ ·· ··· ··

कैला देवी की यात्रा और उपासना मे 'लाँगुरिया' का विशेष स्थान है। 'लाँगुरिया' का एक अर्थ तो कुआरा वालक है ही, दूसरा अर्थ कैला देवी के द्वार पर खडे हनुमान जी से भी है। हनुमान जी भी कुआरे ही थे अत यह लाँगुरिया इनके लिये भी उपयुक्त हो सकता है। यह 'लाँगुरिया' 'लगूर' से भी वना कहा जा सकता है। अस्तु, लाँगुरिया के माध्यम से देवी की जात के अनेक गीत प्रचलित है। कुछ गीत इस प्रकार है :—

कैला माई का लाँगुर, महावीर है।
अपने भक्तो की छिन मे, हरै पीर है ॥ टेक० ॥
मेरी मैया भवानी, वडी भोली है
भीख देती उन्ही को, करी झोली है।
अपनी भिक्षा का पात्र, विचारा मुझे ॥ कैला० ॥
कैला माई मैं परसूँ, तुझे प्रेम से।
तेरे चरन पखारूँ, वडे नेम से।
अपनी पूजा का करले, सहारा मुझे ॥ कैला० ॥
भूलजाना नही मात, मुझको कभी।
लेना, मेरी खवर आपदा हो तभी।
मैया देना है वेशक, सहारा मुझे ॥ कैला० ॥

इस गीत मे कैला देवी की पूजा के महात्म्य को वताया गया है। मैया अपने भक्तो पर सव प्रकार से कृपा करने वाली है।

कैला मैया तो भक्तो पर कृपा करती ही है, लाँगुर महावीर की कृपा भी कम नही होती। भगत जन कैला के साथ लाँगुर की भी उपासना करते है। ऐसा करने से उन्हे अपने कल्याण का पूरा विश्वास हो जाता है। लाँगुर महावीर की प्रशसा का एक गीत है :—

कैला माई का लागुर महावीर है।
अपने भक्तो की छिन मे, हरै पीर है। टेक।
कैला लाँगुर पियारा, तेरा हो गया।
दीन जन को सहारा खरा हो गया।
भूखे लोगो को देता, दही खीर है॥ कैला०॥
कैला लाँगुर वड़ा, वीर तेरा वना।
उन निपुत्री जनो को, हजारो गुना।
प्यार पैदा हुआ, मुन्ना तस्वीर है॥ कैला०॥
कैला तेरी शरण, लागुर की सरन।
मैं तो धोऊँ हमेशा, तुम्हारे चरन।
मोह ममता की काटो, यह जजीर है॥ कैला०॥

कैला मैया के भक्त गाँवो मे भी है और नगरो मे भी। इसी लिये कैला जी के गीतो मे ग्रामीण और शहरी वोलियो का प्रभाव भी पड़े विना नही रहा। निम्न-लिखित गीत नगर और कस्वो मे गाया जाने वाला है। इसके शब्दो मे नागरिकता की छाप है :—

कैला माय वुलावैं, लाँगुरिया आजाना।
अपने अपने भजन, कीर्तन गा जाना॥ टेक॥
सव मिल जुल के, लाँगर गाओ।
कैला माँ का, मन वहलाओ।
मन्दिर से परसाद, सभी जन पा जाना॥ कैला०॥
दै दै ताल, लँगुरिया नाचे।
मन उद्गार, भये सव साँचे।
अपने मन की वात, सभी जन पाजाना॥ कैला०॥

भगतो और जोगनियो की भारी भीडे कैला मैया की जात के लिये लगी हुई है। एक वडा भारी मेला लगा हुआ है। जगह-जगह तवले, ढोलक, मजीरे, घण्टियो की धुनक-धुनक और टुनक-टुनक सुनाई दे रही है। निम्नलिखित गीत मे लाँगुरिया की प्रशसा की गयी है। लाँगुरिया की प्रसन्नता से भी मनोकामना पूरी हो सकती है :—

हाँरे लाँगुरिया जात करन तेरी हम आये।
हम ठाडे तेरे द्वार लाँगुरिया, जात करन तेरी हम आये॥ टेक॥
तेरी मूरति कैसी प्यारी है, तेरी सूरत पै वलिहारी हैं।
रे लँगुरिया अरज करन तेरी हम आये॥ हाँ॥
तेरी परकम्मा मे भीर रहे, सव लोग लुगाई नाचत है।
रे लँगुरिया हम हू नाचन कू आये॥ हाँ॥

सब भोग लगावे तोही कूँ, ये जोत जगावें तोही कूँ ।
रे लँगुरिया अरग ढारिवे हम आये ।। हाँ ।।
तेरी ढोक लगावे चरणन मे, नहिं कपट हमारे कछु मन मे ।
रे लँगुरिया भगत तिहारे गुन गाये ।। हाँ ।।

लाँगुरिया के प्रसन्न होने पर फिर उससे प्रार्थना की जाती है कि वह कैला मैया के दर्शन करा दे । कैला मैया वास्तव मे नव दुर्गा का ही एक रूप है । कैला जी के गीतो मे उन्हे भवानी, दुर्गा, भगवती आदि कहा गया है । जोगनियाँ और भगत लोग लाँगुरिया से प्रार्थना कर रहे है :—

दरसन कैला के भवन मे करवायला लाँगुरिया ।
वहुत दिनन से लग रही मोय दरसन की आस ।।
अरज करूँ कर जोर लाँगुरिया मैटै मन की त्रास ।
करवायला लाँगुरिया ।। १ ।।
सिंहासन पै भगवती रे वैठी आसन मार ।
मतना करै अवेर लाँगुरिया खुलौ भयौ दरवार ।
करबायला लाँगुरिया ।। २ ।।
पान सुपारी धुजा नारियल लौंग धूप धर थार ।।
पैरायवे ले चलूँ लागुरिया माता जी कौ हार ।
करबायला लाँगुरिया ।। ३ ।।
मन इच्छा बर दैवे वारी सब की सुनै पुकार ।
सब कोउ कहै रहौ करै जाको निज भगतन पै प्यार ।।
करवायला लाँगुरिया ।। ४ ।।

जोगनियाँ लाँगुरिया की भक्ति से बावरी हो रही है । लाँगुरिया के बिना उनका जीवन व्यर्थ हो रहा है । उन्हे दिन-रात वेचैनी रहती है । लाँगुरिया को दुर्गा । देवी का पुत्र मानकर उसके दर्शन की लालसा मे जोगनियाँ छटपटा रही है । निम्नलिखित गीत में इसी व्यथा की कथा है :—

तेरी छवि मेरे मन बसी वावरी है गई लाँगुरिया ।
भोली सकल मोहिनी मूरत दिल मे गई समाय ।
हिय मे उठे हिलौर हमारे घर-आँगन न सुहाय ।।
बावरी है गई लाँगुरिया ।। १ ।।
दिन को चैन रात को कल ना मन मेरौ घबडाय ।
आइजा तोइ दुरगे के छैया छाती लेउ लगाय ।।
वावरी है गई लाँगुरिया ।। २ ।।
प्यार करूँ पुचकारूँ तोकूँ गोदी लेउँ उठाय ।

निरमोही वनि खड़ो दूर क्यो हमको रहौ रिझाय ।।
बावरी है गई लाँगुरिया ।। ३ ।।
भूखौ होई तौ भोजन खायले पानी देउँ पिलाय ।
देखत नयना थके हमारे दरसन दे नेक आय ।।
बावरी है गई लाँगुरिया ।। ४ ।।
मारि कटारी मरूँ कन्ठ मे जो सुधि देउ भुलाय ।
बार बार समझाऊँ मन की तपती देउ बुझाय ।।
बावरी है गई लाँगुरिया ।। ५ ।।

देवी की सेवा मे लाँगुरिया सदैव लगा रहता है । जोगनियो के निम्नलिखित गीत मे लाँगुरिया के सेवा-कार्य का वर्णन है । वह देवी को झूला झुला रहा है । देवी के इतने समीप रहने वाले की उपासना अवश्य लाभप्रद होगी । जोगनिया तभी तो लाँगुरिया पर मुग्ध हो गा रही है :—

देवी रही भवन मे झूल, झुलाय रहो ठाडौ लाँगुरिया ।
जाती ठाडे दुआर पै रे दोऊ कर अपने जोर ।
भवन बीच मे है रही भारी घटन की घनघोर ।।
झुलाय रहौ ठाडौ लाँगुरिया ।।
पान सुपारी धुजा नारियल रहे तेरी भेट चढाय ।
अटल छत्र जैकारौ बोले फूल रहे बरसाय ।।
झुलाय रहौ ठाडौ लाँगुरिया ।।
ऊँचे परवत भवन बनौ जाकी सौभा कही न जाय ।
रही जोगनी नाच लाँगुरिया मन मे मोद मनाय ।।
झुलाय रहो ठाडौ लागुरिया ।
सख चक्र और गदा हाथ मे है कर मे तिरसूल
सब कोउ तेरी आस लगावे भगतन को मति भूल ।।
झुलाय रहो ठाड़ौ लागुरिया ।।

यही गीत दूसरे ढँग से भी गाया जाता है :—
मेरी झूलै कैला माय, लागुरिया झोटा दै रयौ ।। टेक ।।
पचरगी झूला रेशम कौ, जामे डरौ पालनौं सुवरण को ।
जामे हीरालाल जडाय ।। लागुरिया ०।।
पानन सो पलना छाय रह्यौ, सुख अखियन मे वर्षाय रयौ ।
मेरौ उमगै जीया हाय ।। लागुरिया० ।।
सब लोग फूल वर्षाय रहे, दर्शन करके हर्षाय रहे ।
यो सभी भगत गुन गायँ ।। लागुरिया० ।।

झूले का ही गीत कही-कही निम्नलिखित प्रकार से भी गाया जाता है .

झूलना झुलावैं लाँगुर, कैला मैया झूलैं ॥ टेक ॥
सोने के पलना मे रेशम की डोरी ।
रतन जडाऊँ डोला जामैं दुर्गे झूलैं ॥ झूलना० ॥
धूप दीप नई वैद्य अगरवा ।
पान सुपारी हू चन्दन फूलें ॥ झूलना० ॥
लाँगुरा भवानी झोटा, अचक पचक दे ।
भगतन को मन वेझा ऊलैं ॥ झूलना० ॥

"लाँगुरिया" के गीतो मे आधुनिक युग की भी झलक आने लगी है। आज के युग का वर्णन इन गीतो मे होने लगा है। लाँगुरिया की टेक और धुन लोकप्रिय होने के कारण इसके द्वारा आज की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो का चित्रण भी होता रहता है। स्वतन्त्रता के बाद की दशा इस "लाँगुरिया" गीत मे है .

लँगुरिया तेजी कौ जमानो आय गयौ भारत मे
अव कैसे होय गुजरान ॥ लँगुरिया० ॥
लँगुरिया वाँट गिराँम के चलि गए ।
कोई समझे चतुर सुजान ॥ लँगुरिया० ॥
लँगुरिया गाँव गॉव नेता वने
कर रहे हैं जनता कूँ वहुत हैरान ॥ लँगुरिया० ॥
लँगुरिया वे तनखा के नौकर कुरसी पै ।
जै वैठे तो दिखाय रहे सान ॥ लँगुरिया० ॥
लँगुरिया दीन गरीवन की जग मे ।
अव लज्जा तो रखेगे भगवान ॥ लँगुरिया० ॥

कैला जी की आरती हो रही है। सव भगत हाथ जोडे खडे है। पूजा की सामग्री सामने रखी है। पण्डित लोग वेद-पाठ कर रहे है, लाँगुरिया आरती कर रहा है .

घन्टा जाती रहै वजाय आरती कर रहौ लाँगुरिया ।
पण्डित वेद विचारते रे देवी के दरवार ॥
कैला मइया भवन वीच मे वैठी आसन मार ।
आरती कर रहौ लाँगुरिया ॥१॥
हरियल पीपल द्वारि भवन पै लाल ध्वजा फैराय ।
कारी सिल के परवत की मौपै सौभा कही न जाय ॥
आरती कर रहौ लाँगुरिया ॥२॥

पान सुपारी और बतासे लौंग धूप धर थार ।
नरियल भेंट चढाते अस्तुत करते वारम्वार ॥
आरती कर रहौ लाँगुरिया ॥३॥
मन-इच्छा फल देने वाली सुन ले मेरी पुकार ।
भगत आज पग परसन आयौ ले फूलन कौ हार ॥
आरती कर रहौ लाँगुरिया ॥४॥

आरती करने के बाद कैला मैया की उपासना मे भजन गाये जाते है। इन भजनो मे मैया की प्रशसा होती है और उसके भक्तो की श्रद्धा-भक्ति तथा उसके प्रभाव का वर्णन होता है। एक भजन इस प्रकार है

कैला माई मेरे मन भाई तेरी मूरति छवि निहार रे,
पार लगा मेरी नैय्या ॥टेक॥
मधुर मधुर मोहनियाँ मूरति मेरे मन कौ भाई ।
दुर्गे माई तोहि निहारन सब दुनियाँ जुरि आई ॥
तेरे दर्शन को तेरे परसन को यह दुनियाँ रही पुकार रे ॥ कैला० ॥
कदम कदम पर कैला माई भीर पडे अति भारी ॥
दर्सन कैला माय निहारूँ मन मे त्रस्ना जारी ॥
तैरे चरनन को तैरे उबटन को ये दुनियाँ रही निहार रे ॥ कैला० ॥

मैया की प्रशसा सुनकर दूर-दूर से लोग उसकी जात करने आये है। केवल एक झलक पाकर ही भक्त आत्म-विभोर हो उठते है। मैया की पूजा करने को स्थान-स्थान पर उसकी मूर्तियाँ स्थापित कर दी गयी है। मैया के द्वार पर खड़े भक्त उसकी प्रशसा मे गा-गाकर कह रहे है '

लीजो लीजो री खवार कैला माय, द्वार तैरे हम आये ॥ टेक० ॥
जतन अनेक किये मेरी मैय्या, तब दर्शन को आये हैं ।
बहुत दिनन की लगी त्रास को, अब की बार बुझाये हैं ।
परसन को तैय्यार खड़े हैं, झाँकी तनक दिखाय ॥ द्वार० ॥
दुर्गे तेरी सुनी प्रशसा दुनिया मे हमने भारी ।
लग गई लगन तभी से माई, अँखियन सो आँसू जारी ।
दया यही कर मात भवानी, अपने चरण धुलाय ॥ द्वार० ॥
ठौर ठौर पर मैय्या तेरी, जात लगै प्रति वर्ष बड़ी ।
सुन लीजो एक अर्ज हमारी, मन को देती हर्ष बड़ी ॥
जात करन माँ हमे बुलइयो, जाते मन सुख पाय ॥ द्वार० ॥

लाँगुरिया, लाँगुर या लगुरा इतना प्रसिद्ध हो गया है कि कैला देवी के अतिरिक्त अन्य स्थानो और कार्यो मे भी उसके नाम का प्रयोग होने लगा है।

'लाँगुरिया' की टेक पर अनेक गीत चल पडे है। 'लागुरिया' किसी भी नायक का प्रतीक वन गया है। इस नाम की आड़ मे चाहे जो कुछ कह दिया जाता है। आगरा के जाटवो मे लागुर का एक गीत निम्नलिखित रूप मे प्रसिद्ध है :

नसा मे लागुर आवैगौ
नैक डौड़ी-डौडी रहियौ
वाई पै देखे भरै-भरै सलुआ (चद्दर), वाई पै चोट उडावैगौ
ताई पै देखे भरै भरै हसुला, बाई पै चोट उडावैगौ
नैक डौड़ी डौड़ी रहियौ
जाई पै देखी भरी भरी लडिया
वो तो वाई पै चोट उडावैगो, नैक डौड़ी-डौडी रहियौ
वाई पै देखे भरै भरै बजुआ
वो तो बाई पै चोट उडावैगौ
नैक डौडी डौडी रहियौ

लँगुरा किसानी भी करता है। वह अन्य किसानो से अलग है। कोई तो ज्वार-वाजरा वोता है किन्तु लँगुरा नारगी का बाग लगाता है। लँगुरा की इसी विशेषता को दिखाने वाला एक गीत इस प्रकार है .

दुनिया बुवावै जौडरी[1] बाजरौ, मेरौ लँगुरा बुवावै नारगी
चल पटना की हाट लँगुरिया वजनी लै दऊ सारगी
दुनिया नरावै जौडरी वाजरौ
मेरौ लाँगुर नरावै नारगी, चल··· ·····
दुनिया रखावै जौडी वाजरो
मेरौ लागुर रखावै नारगी, चल ······· ··
दुनिया कटावै जौड़री बाजरौ
मेरौ लागुर कटावै नारगी, चल ··· ·· ··
दुनिया ढुवावै जौडरी बाजरौ
मेरो लागुर ढुवावै नारगी, चल ·· ······
दुनिया कुटावै जौडरी वाजरौ
मेरौ लागुर कुटावै नारगी, चल ··· ·····
दुनिया जैमे जौड़री वाजरो
मेरो लागुर जैमे नारगी, चल ·· ··

विन मौसम बरसात होने पर एक स्त्री लगुरिया के माध्यम से अपनी

---

१ ज्वार

परिस्थिति का वर्णन करती है। उसके ससुर, जेठ और देवर तो देवी की पूजा करने गये है, घर पर वह स्त्री और लँगुरिया ही रह गये है। इस गीत मे स्त्री अपने पति को ही लँगुरिया के रूप मे सम्वोधित कर रही है। जिस प्रकार ताश के पत्तो मे 'जोकर' होता है और उसका प्रयोग किसी भी पत्ते के रूप मे किया जा सकता है वैसे ही 'लागुरिया गीतो' मे लाँगुरिया है। उसका प्रयोग किसी भी रूप मे किया जा सकता है :—

ए रे लँगुरिया ससुर गये देवी झाले पा
अनरुत को वरस गयो मेहु लँगुरिया
हम-तुम भीजे दोऊ गैल मे, रे
पुरवा देसन वदरा वाये
और पच्छिम देस को मेहु लँगुरिया
जेठ गये देवी झाले पा
अनरुत को वरस गयो मेहु लँगुरिया
हम तुम भीजेँ दोऊ गैल
देवर गये देवी झाले पा
अनरुत को वरस गयो मेहु। हम तुम ···· ·· ······ ····

लड़की को विवाह के बाद अब ससुराल ही अच्छी लगने लगी है। भाभी ने यदि कुछ कह दिया तो ननद तुरन्त ही ससुराल जाने को तैयार हो जाती है। वह 'लँगुरिया' के रूप मे अपने पति से कहती है कि मुझे शीघ्र ससुराल ले चलो। पीहर मे मुझे कष्ट है, सासुरे मे हँसते-खेलते दिन वीतेगे :—

ए रे लँगुरिया अव न रहेऊँगी मैया वाप के
भौजइया ने वोले है वोल लँगुरिया, अव न०
देस वुरो मेरे-वाप को लँगुरिया
अरु ता ठाडी ता दोस लँगुरिया, अव न०
देस भलौ मेरौ सासुरो लँगुरिया
और हँसत-खिलत दिन जाय लँगुरिया
अव न रहेऊँगी मैया-वाप के।

कैला देवी का प्रभाव इतना अमिट है कि स्त्रियो की इच्छा स्वत ही उसके दर्शन करने की होने लगती है। उनका मन उड-उड कर कैला मैया के दर्शन करना चाहने लगता है। मन की ऐसी विह्वलता अन्य किसी देवी-देवता के लिये नही देखी जाती। इस विह्‌वलता का रूप इस गीत मे स्पष्ट है —

सो पडित मेरे निरमल घरिया विचारि
मेरो मन मैया को भयौ है उदास

अव मोये भूँक लगै नाई प्यास
मेरो मन मैया को भयो उडास
अव मोये तिल-तिल होत अवेर
मेरो मन कैला को भयौ उडास
अब मेरे बाबुलै लैऊ बुलाय
अव मेरो मन देवी कौ भयौ उडास .
अब बाबुल मेरे पूरौ सौ खरचु बँधाय
मेरी मन मैया कूँ भयो है उडास
अव मेरी मैया है लेऊ वुलाय
मेरो मन माई जी कौ भयौ उडास
माइल मेरी मीठे से लड्डुआ बँधाय
मेरो मन माई जी कौ भयौ है उडास
अव मेरे वीराने लेऊ वुलाय
मेरो मन केला ए भयौ उडास
वीरन मेरो अच्छो सो अब देवी पूजन जाउँ, मेरो मन०

दुर्गा देवी के रूपो मे पथवारी देवी का भी एक रूप है। आगरा नगर मे पथवारी नाम का एक मोहल्ला है। इसमे पथवारी देवी का मन्दिर है। इसकी भी बड़ी मान्यता है। जो लोग करौली नही जा पाते वे इस देवी को ही पूजकर सतुष्ट हो लेते है। पथवारी देवी के नाम की व्युत्पत्ति पथ पर मिलने वाली देवी से है। अपनी इष्ट देवी को पूजने जाते समय ग्राम या नगर के मार्ग मे जो देवी मिलती है उसे पथ वाली देवी या पथ वारी देवी कहा जाता है।

लँगुरिया के गीतो मे पथवारी देवी का उल्लेख कर अन्य अनेक बातें कही जाने लगी हैं। एक स्त्री लाँगुरिया से कहती है कि मैं पथवारी पूजने जा रही हू लेकिन मेरे पाँव की पायल कही गिर पडी है। 'झुमका खोया रे' की भाति पायल खोने का यह गीत भी प्रसिद्ध है —

पथवरियाए पूजन जाऊँ रे लँगुरिया पाँय की नइयाँ[1] मोरी गिर परी।
लीजो-लीजो लँगुर ढुँढवाये लँगुरिया, पाँय की नइयाँ ..............
तेरे वाग विच मेरो रे बगीचो
केला ते केला मिलावै मति रे लँगुरिया, पाँय ...........
देख दिन छुट आयो
तेरे ताल विच मोरी रे तलैया

---

१ पायल।

पार ते पार भिरावै मति रे
दिन खुट आयो, लांगुरा हँसै मति रे
तेरे कुआ विच मोरी रे कुइया
मरुए ते मरुए भिरावै मति रे
तेरे महल विच मोरी रे कुठरिया
खिरकी ते खिरकी भिरावै मति-रे
दिन खुट आयो, देख दिन खुट आयो
लाँगुरा हँसि मति रे
तेरे पलिंग विच मेरौ खटोला
पाटी ते पाटी भिरावै मति रे, दिन खुट आयो।

आगरे में 'कुआ वाला' भी वड़ा प्रसिद्ध है। इसकी वडी मान्यता है। कुआ वाले का मेला वड़ी धूम-धाम से लगता है। इसके वारे मे एक किंवदंती है कि एक युवक एक लड़की पर मोहित हो गया था। लड़की के मां-वाप और आस-पास के लोगो ने उसे चरित्रहीन कह कर वहुत मारा-पीटा। वह कुए मे कूद कर मर गया और भूत वन कर लोगो को सताने लगा। लोगो ने भय से उसकी पूजा आरम्भ कर दी। पूजा से वह प्रसन्न हो गया और लोगो का कल्याण करने लगा। 'कुआ वारे' की प्रशंसा मे अनेक गीत गाये जाते हैं। एक गीत इस प्रकार का है :—

जंगल कौ वासी रे पिरेत जगल कौ वासी पिरेत मेरे जंगलिया
तोहि घाम लगैगी रे पिरेत मेरे जंगलिया
तोकूँ पेड़ लगाय दऊँ रे पिरेत मेरे जगलिया
जगल कौ ..................
तोये गरम लगैगी रे पिरेत मेरे जंगलिया
तोकूँ पखा लगाय दऊँ रे पिरेत मेरे जंगलिया। जंगल कौ०
तोये प्यास लगैगी रे पिरेत मेरे जंगलिया
तोकूँ लोटा भराय दऊँ रे पिरेत मेरे कंगलिया। जंगल को०
तौये भूँक लगैगी रे पिरेत मेरे जगलिया
तोकूँ पुरियाँ सिकाय दऊँ रे पिरेत मेरे जंगलिया
तोकूँ लड्डू मँगाय दऊँ रे ... ...
तोये नींद लगैगी रे पिरेत मेरे जगलिया
तोकूँ पलिगु विछाय दऊँ रे पिरेत मेरे जंगलिया

**शीतला देवी :—**

चेचक की बीमारी को शीतला या शीतला माता के नाम से पुकारा जाता है। ऐसी भयंकर बीमारी को देवी किन कारणो से मान लिया गया ? इस प्रश्न का उत्तर

देना सरल नही किन्तु हिन्दू धर्म मे लगभग सभी आपदाओ, विघ्नो अथवा आनन्द और सुख को अलौकिक शक्तियो के आक्रोश अथवा प्रसन्नता के फलस्वरूप ही माना जाता है। डा० तारापुरवाला ने 'एलिमेंट्स आव दि साइन्स आव लैंग्वेज' मे लिखा है कि मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणो को महाराज (बहुत बडा राजा) कहा जाता है इसी प्रकार इस भयकर बीमारी को शीतला कहने लगे हो तो कुछ आश्चर्य नही। कुछ काल के अनन्तर इसी शीतला देवी को अधिक महत्व देने के लिये माता देवी के नाम से पुकारने लगे। सारी बीमारियो मे सभवत· चेचक ही ऐसी बीमारी है जो देवी या देवता के रूप मे पूजी जाती है, इसका कारण सभवत. इसकी भयकरता ही है। शीतला देवी का वाहन गदहा है जो उनकी भयकरता तथा बीभत्सता को सूचित करने के लिये पर्याप्त है।

ग्रामीणो तथा रूढिवादी अन्य नागरिको मे यह प्रवृत्ति है कि वे इस बीमारी की कोई औषधि नही देते। बीमार आदमी देवी माता की दया पर ही छोड दिया जाता है। देवी माता की पूजा कर, उनके गीत गाकर, उनकी प्रशसा कर उस बीमार को स्वस्थ करने की प्रार्थनाएँ की जाती है। रोगी की झाड-फूँक के लिये मालिन नीम की डाली या टहनी का प्रयोग करती है। वह टहनी से रोगी को हल्के-हल्के झाड़ती है ताकि माता प्रसन्न होकर बीमार को रोग-मुक्त कर दे। मालिन से झडवाने का एक कारण है। मालिन को देवी की सेविका माना जाता है इसलिये उसके द्वारा की हुई झाड़-फूँक से रोगी के नीरोग होने की आशा होती है। शीतला देवी की पूजा के गीतो मे मालिन का नाम बार-बार इसीलिये लिया जाता है।

जिस घर के किसी व्यक्ति पर शीतला माता का प्रकोप होता है उस घर मे अनेक कडे नियमो का पालन किया जाता है। उस घर मे कोई हजामत नही बनवाता, दाल मे हल्दी नही डाली जाती, शाकभाजी नही छौंकी जाती, जूते नही पहिने जाते, किसी को प्रणाम नही किया जाता, स्त्री-पुरुष एक साथ नही सोते और कोई उत्सव नही होता। इन नियमो के पालन करने से आशा की जाती है कि देवी माता इससे प्रसन्न होती है और रोग दूर करती है। शीतला का एक गीत है—

चलौ भैना सीतला पूजन को।
माता देवी को आऔ पूजन कौ॥
जाकी दया से सकट नासे,
दुख-दारिद सब जासे त्रासे,
ऐसी मैया को आऔ पूजन को।
चलौ भैना सीतला पूजन को॥
छत्तीस व्यजन लाई बनाई

सोने के लोटा मे जल भर लाई
हिलमिल के चलो मात पूजन को ।
चलौ भैना सीतला पूजन को ।।

**विजया दशमी :—**

विजया दशमी का दिन भी आगरा के लोक-जीवन मे एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस दिन गाँवो मे घोडे की पूजा होती है। कुम्हार मिट्टी का एक "रैमतु' बनाता है। इस रैमतु मे भात भरा जाता है। चौक पूर कर उस पर घोडे खडे किये जाते हैं, गुड़ बँटता है और स्त्रियाँ गीत गाती है :—

तुम लेउ जसरथ मोल,
वछेरा रुरि खूँदैगौ ।
तिहारे कुँमर रामचन्द जोग—
वछेरा रुरि खूँदैगौ ।
जिन दई ऐ अजुध्या मे नीव
वछेरा रुरि खूँदैगौ ।
जिन मारे वैरिन के मान
वछेरा रुरि खूँदैगौ ।

**करवा-चौथ :**

भारतीय लोक-परम्परा मे करवा-चौथ को विशेष महत्व दिया गया है। कार्तिक कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी के दिन 'करवा-चौथ' का पूजन होता है। यह व्रत सौभाग्यवती स्त्रियो के लिये होता है। इस व्रत के द्वारा पति के स्वस्थ और दीर्घ जीवी होने की कामना की जाती है। विवाहिता स्त्रियां इस दिन कच्चे चावल पीसकर, दीवार पर 'करवा-चौथ' रखती हैं। इसे वे वर भी कहती हैं। इस वर में वे पति के विविध रूपो को अंकित करती हैं। सुहाग-सम्बन्धी वस्तुएँ, जैसे चूड़ी, त्रिन्दी, बिछुआ मेहदी, महावर, वस्त्राभूषण आदि भी उसमे अंकित की जाती हैं। दुधारू गाय, करवा बेचने वाली कुम्हारी, महावर लगाने वाली नाइन, चूडी पहिनाने वाली मनिहारिन भी इसमे बनाई जाती है। सात भाइयो सहित उनकी इकलौती बहिन भी अंकित की जाती है। करवा-चौथ की पूजा मे इस एकलौती बहिन की कथा भी कही जाती है। इसके व्रत से द्रवित होकर भाइयो ने पेड पर चढकर चलनी मे दीपक दिखा दिया था जिससे वह समझे कि चौथ का चन्द्रमा निकल आया है और पूजा करके भोजन प्राप्त करले। बहिन व्रत खंडित होने पर विधवा हो गई और फिर साधना कर अपना पति जीवित करने मे सफल हो गई।

'करवा-चौथ' मे सूर्य, चन्द्रमा, गौरा-पार्वती आदि देवी-देवता भी अंकित किये जाते हैं। विवाहित स्त्रियाँ निर्जला व्रत रखकर पति के लिये मंगल-कामना करती है।

पीली मिट्टी की 'गौर' बना कर स्थापित की जाती है और करवा-चौथ की कहानी कही तथा सुनाई जाती है। रात्रि को चन्द्रमा निकलने पर मिट्टी के करवे से उसे अर्घ्य दिया जाता है तथा घर के लोगो को भोजन करा कर फिर स्वय भोजन किया जाता है। यह व्रत बडा कठिन होता है। यह स्त्री की पति-भक्ति का परिचायक है। इस अवसर पर अनेक गीत भी गाये जाते हैं। ये गीत भक्ति-प्रधान या संस्कार सम्बन्धी होते है। एक गीत है —

कहाँ लगाइ आओ तोइ
अरे नारियरे के विरवा।
जे बिरवा रामचन्द की सेजरिया
बहूअ सिया जी की गोद
अरे नारियरे के विरवा।

एक अन्य गीत इस प्रकार है—

करुवा ले, करुवा ले
वीर पियारी करुवा ले
बाप भाई की खट्टी खानी
करुवा ले, करुवा ले
धौले नाडे, धौले साढ़े
तेरा जनम जाइयो,
करुवा ले करुवा ले
अधूरे चाँद खानी
करुवा ले, करुवा ले।
मैया प्यारी करुवा ले
बाप भाई की कमाई खानी
करुवा ले, करुवा ले
धौला नाडा, धौली साढी
करुवा ले, करुवा ले
अधूरे चाँद खानी।
करुवा ले, करुवा ले॥

"करवा-चौथ" के गीतो मे 'वधाए' भी गाये जाते है। ये वधाए वहुधा राम-कृष्ण के जन्मो से सम्बन्धित होते है। इनके गाने की शैली अन्य लोकगीतो से भिन्न होती है। एक वधाया है—

धनि धनि हो कौसिल्या की कूँखि
जिन जाए रामचन्दु से पूत

वधाओ राजा जसरथ कौ।
जिन दई ऐ अजुध्या मे नीव
वधाओ राजा जसरथ को।
जिन मारे रावन के मान
वधाओ राजा जसरथ को।

वैसे तो वधाए पुत्र-जन्म पर गाये जाते है किन्तु ये वधाए अन्य अवसरो पर भी गाते है। इनमे सामाजिक आस्था भी निहित रहती है। एक और वधाया है:—

आजु दिन सौने को ऊऔ महाराज
सौने को सव दिन रूपे की राते
सोने के कलस धरैयौ महाराज
आजु दिन सौने को ऊऔ महाराज।
पहलो वधाऔ ससुर घर आयौ
सासुलि ने लीयौ भरि गोद महाराज
आजु दिन सौने को ऊऔ महाराज।

नगर की स्त्रिया खडी बोली मे करवा-चौथ के गीत गाकर पूजा करती है—

आज है करवा चौथ सखी री, माँग ले सुख का दान हो।
अपने सपनो के स्वामी का, धरके मन मे ध्यान हो॥
जनम-जनम तक तेरे घर मे नित्य रहे खुशहाली,
जब तक चमके चाँद-सितारे माँग रहे ना खाली,
पति के साथ रहे तेरा भी जग भर मे सम्मान हो।
आज है करवा चौथ सखी री, माँग ले सुख का दान हो॥

### अहोई आठें या अगोही अष्ठमी:—

करवा चौथ के वाद अहोई आठे आती है। कार्तिक कृष्ण अष्टमी को पुत्रवती स्त्री व्रत रखती है। सायंकाल दीवार पर आठ कोष्ठक की एक पुतली वना कर उसकी पूजा की जाती है। व्रत रखने वाली मातायें कहानियाँ सुनाती है। चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन किया जाता है। दूध-भात का भोग लगाया जाता है। इस व्रत से छोटे वालको के अनिष्ट निवारण का प्रयास किया जाता है। अहोई देवी के चित्र के साथ ही सेई और सेई के वच्चो की आकृति वनाकर पूजा की जाती है। इस पूजा के साथ एक कहानी भी कही जाती है जिसमे वताया जाता है कि एक ननद-भौजाई एक मिट्टी की खान मे मिट्टी खोदने जाती है जहाँ स्याहो (सेई) के वच्चे मर जाते है। वह उन्हे वापिस तभी आने देती है जव ननद उसे अपने वच्चे देने का वचन देती है। जब-जव ननद के वच्चे होते हैं 'स्याहो' उन्हे ले जाती है। वह इससे वडी

दुखी रहती है। अन्त मे वह किमी के कहने पर 'स्याहो' की सेवा करती है। स्याहो प्रमन्न होकर उसके सारे वच्चे लौटा देती है।

भित्ति चित्र की पूजा का आरम्भ कव से हुआ, यह नही कहा जा सकता। जातक कथाओ मे 'स्याहो' जैसी ही एक कथा मिलती है जिसमे हारीतो यक्षिणी लोगो के वच्चो को उठा कर ले जाती थी और उन्हे खा डालती थी। भगवान बुद्ध ने उसके वालको को छुपा दिया तो वह उनके दुःख मे विलाप करने लगी। भगवान बुद्ध ने उसे उपदेश देकर उसके वच्चो को वापिस कर दिया। तव से वह वालकों की सरक्षिका देवी वन गई। इसकी पूजा के वहुत से गीत हैं—

अहोई आठे पूजो सखी हिल मिल कै।
'स्याहो' माता को पूजो सखी हिल मिल कै॥
लीप पोत दीवार वनाओ भाँति भाँति के रूप
चन्दा तारे मोर वनाओ सतिया धरौ अनूप
वच्चन की माँगो खैर सखी हिल मिल कै।

## दीपावली

दीपावली हमारा एक महान् सास्कृतिक त्यौहार है। इस त्यौहार को मनाने के अनेक कारण वताये जाते है। कोई इसे राजा वलि से जोडता है, कोई रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक से इसका सम्वन्ध वताता है, कोई इसे समृद्धि और वृद्धि का त्यौहार मानता है। अस्तु, आदि काल से ही मानव की विकासोन्मुख चेतनाओ ने आनन्दोल्लास के लिये त्यौहारो का सर्जन किया, क्योकि किमी देश के त्यौहार वहाँ की सामाजिक चेतना के, प्रारम्भिक विकास के, ऐतिहासिक सस्मरण होते है। उन्ही सामाजिक चेतनाओ से आपूरित होकर सामूहिक नृत्य, सामूहिक गान तथा सामाजिक भोज आदि का सूत्रपात हुआ जो कालान्तर मे उत्सव और त्यौहारो मे परिणत हो गये। वे ही धर्म तथा परम्पराओ से सम्वन्वित होकर जाति और राष्ट्र के सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक वन गये। ये सभी उत्सव एकता का अमर सन्देश अव तक निर्वाध रूप से दे रहे है।

आदि काल मे मनुष्य प्रकृति के सन्निकट था। अत प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य पर मानव की सहज आसक्ति ने ही उत्सवो के निर्माण की प्रेरणा दी। मनुष्य प्राकृतिक सौन्दर्य का उपासक था। सूर्य, चन्द्र, वसुधा, आकाश, जल तथा तेज आदि उसके उपास्य थे। ऋग्वेद मे उषा, सूर्य, यम आदि का वर्णन यही वात प्रकट करता है। मनुष्य ऋतुओ की उपासना किया करता था। यही षड् ऋतुओ की उपासना त्यौहारो के रूप मे आगे आयी। मधु ऋतु के स्वागत में होली और शरद ऋतु के स्वागत मे दीपावली, सुखद ऋतुओ के अभिनन्दन की प्रतीक है।

भारतीय संस्कृति में दीपावली एक महत्वपूर्ण त्योहार है। हमारे लोक गीतो मे दीपावली का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है उससे इस त्योहार की अनेकानेक विशेषताये प्रकट होती है। दीपावली का त्यौहार पाँच दिन तक मनाया जाता है—धन तेरस से दौज तक। इन अवसरो के लिये विभिन्न लोकगीत हैं। इन लोकगीतो में सामाजिक, पारिवारिक तथा नैतिक चर्चाएँ रहती है। आगरा जिले मे गाये जाने वाले दिवाली के गीतो मे पारिवारिक घटनाओ के चित्रण अधिक होते हैं।

दीपावली के साथ जो अनेक कथाएँ जुडी हुई है उनमें सबसे प्रमुख कथा भगवान श्री कृष्ण के गोवर्द्धन-धारण की है। दीपावली के अवसर पर धन की अधिष्ठात्री देवी का पूजन विशेष रूप से किया जाता है। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को एक स्थान पर गोवर्द्धन का थापा वनाया जाता है। घर की स्त्रियाँ 'गोधन' थापती है। उस समय 'गोवरिया' नामक लोकगीत गाया जाता है। इस लोकगीत मे एक सामाजिक घटना का चित्रण है। गृहपति कुछ खिन्न होकर गाय-बछडो को साथ लेकर विदेश जाने लगता है। उस समय उसकी माँ कहती है कि बेटा बहू को भी कुछ धैर्य बँधाता जा। वह पत्नी को सलाह देता है कि ससुर को पिता और सास को माँ समझ कर उनकी सेवा करती रहे उससे यह भी कहता है कि वह काम-काज मे अपना मन बहलाती रहे। वह विदेश जाने के वाद वहुत दिनो तक जव नही लौटता है तो उसकी पत्नी उसके पास सन्देश भेजती है। वह लिख देता है कि मैंने तो दूसरा विवाह कर लिया, अब नही आऊँगा। इसी कथा को स्त्रियाँ "गोवरिया" मे गाती है। यह गीत "प्रबन्ध-गीत" है। इसमे वडी मार्मिकता है। इसका कुछ अंश निम्न-लिखित है—

गोवरिया गोवर चली
मेरौ हाँक्यौ री, मेरौ हाँक्यौ
मल्हैया ऐ साढ़ हो गोवरिया।
धौरी री हाँकी धूमरी
मेरी हाँकी ऐ हो, मेरी हाँकी,
राजन-पाटन गाइ हो गोवरिया।
जौ तुम गोवर जात हौ पूत,
धनीएँ हो, पूत धनीएँ-
कछु वुध देउ हो गोवरिया।
धनीआँके मैया न वापु
पूत नाने हो, पूत नानें—
सहोदर नीर हो गोवरिया।
सुसुरु वबुल कहि टेरिओ

धन सासु हो धन सासु—

माहिलि कहि टेरौ हो गोबरिया।

बहन द्वारा भाई का टीका करने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। द्वापर मे भी यह प्रथा प्रचलित थी। पाडवो के अज्ञातवास के समय कीचक का अपनी बहिन के यहाँ टीका कराने जाना, वहाँ दासी का छद्म वेश धारण करने वाली द्रौपदी पर मोहित होना और फिर महाबली भीम द्वारा मारा जाना इसी दिन की घटना है। दौज के दिन स्त्रियाँ व्रत रखती है। इस दिन 'द्यौजरो' नामक एक गीत गाया जाता है। यह गीत स्त्रियाँ भाई-दौज की कहानी सुनने के बाद गाती हैं—

आज द्यौज कौ है द्यौजरौ।
द्यौज पूजत मेरे मन सुख भयौ॥
भूरी सी हथिनी, जरद अम्बारी
जाइ चढ्यौ आवै मेरौ वीरु हजारी।
श्री कृष्ण से वीर, तुम सोवत है कै जागत है?
तुमनि सोवत त्यारे भैयनि सुख पायौ।

श्री कृष्ण सहोद्रा कै जाई
थारु सजोई सहोद्रा ऐ लाई
करति विरन कौ टीकौ
टीकौ करत जिनने सुख पायौ॥

इस अवसर पर 'वधावा' नामक एक और लोकगीत भी गाया जाता है। ये वधाये प्राय. वही होते हैं जो पुत्र-जन्म के समय गाये जाते है। जैसे—

आजु दिन सोने कौ ऊग्यो महाराज।
सोने कौ सबु दिन रूपे की राति—
सोने के कलसा धरैयौ महाराज
आजु दिन सोने कौ ऊग्यो महाराज।
पहलौ वधाऔ सुसर घर आयौ—
सासुलि ने लियो भरि गोद महाराज—
आजु दिन सोने को ऊग्यो महाराज।
दूजो वधाओ जेठ घर आयौ—
जिठानी ने लियो भरि गोद महाराज—
आजु दिन सोने कौ ऊग्यो महाराज।
तीजौ वधाऔ दिवर घर आयौ—
दौरानी ने लियौ भरि गोद महाराज—

आजु दिन सोने को ऊग्यो महाराज ।
चौथो बधाऔ साहब घर आयौ—
सौतिन ने लियौ भरि गोद महाराज—
आजु दिन सोने कौ ऊग्यो महाराज ।

गोवन (गोवर्द्धन) का आह्वान करने वाला दिवाली का एक और गीत है—

गोवन आवत मैं सुने
अरु जमना पल्ली पार
डारौ अर्जुन नाव री,
नाव री गोवन लेउ उतारि
आवत डारौं गोवन पाँवडे
और अरघ दहीन के दैउ
चामर राँधौं गोवन ऊजरे
औरु हरीऊ मूंगल धोआ दारि
सोरन थारु परोसिऔं
औरु अचरा झकोरति ब्यारि
जैऊंर जूठौ गोवन रुचि भरो
औरु मुख भरि देउ असीस ॥

दिवाली का त्यौहार एक 'साव' लेकर आता है। इसमे माता का ममत्व, बहन का स्नेह-दुलार तथा प्रियतमा का पवित्र प्रेम होता है। दिवाली का त्यौहार आनन्द और उल्लास से पूर्ण रहता है। दाम्पत्य-सुख की चाहना लेकर दिवाली आयी है, प्रियतम परदेश से लौटे हैं, सारे घर मे आनन्द मनाया जा रहा है। पत्नी मुग्ध हो घूम रही है। वह घर-बाहर दीपको से जगमगा देती है। दिवाली के प्रज्ज्वलित दीप उसके हर्षोल्लास को प्रकट करते है। जब उसका प्रियतम गोधन पूजता है तो वह गा उठती है—

गोधन आवत मैं सुने
और गंग जमुन पहेली पारि पै
तुम डारौ ओ अरजुन नावरी ।
नावरी, गोवनै लेउ उतारि कै
आवत डारौं गोवन पाँमड़े—
पाँमड़े और अरघ दहीनि के दैउ
चन्दन चौकी बैठनो
दूध पखारोंगी पाई

चामर राँधौ गोधन ऊजरे
ऊजरे, और हरीअ मू गल धोआ दारि
सोरन थारु गोधन परोसिऔ
परोसिऔ, औरु अचरा झकोरौगी व्यारि ।
जेंऊर जूँठी गोधन रिचु भरे
रिचु भरे औरु मुख भरि देउ असीस ।

गोधन के इन दोनो गीतो मे बाते एक सी कही गयी है किन्तु दोनो मे कुछ शव्दो का हेर-फेर है । पहले गीत मे 'अरु जमना पल्ली पार' कहा गया है और दूसरे मे "और गग जमुन पहैली पारि पँ" कहा गया है । इसी प्रकार प्रत्येक पक्ति मे शब्द वदले हुए है । यह अन्तर आगरा और मथुरा का है । प्रथम ढग का गीत मथुरा और उससे लगे हुए गाँवो मे गाया जाता है । यह गीत रुनकुता और सिकन्दरा तक मे सुना जा सकता है । दूसरा गीत फतिहावाद, शमसावाद औंर किरावली मे तथा उनके आसपास सुना जा सकता है ।

दौज को सायकाल गोधन-पूजा होती है । परिवार और गाव के लोग एकसाथ मिलकर गोधन-पूजन को एकत्र होते है । गोधन के मुख मे दूध-भात भरा जाता है, उसकी परिक्रमा दी जाती है और जय वोलते है । बालक पटाखे छुड़ाते है और स्त्रियाँ मगल गीत गाती हैं—

हो हरि गोधन पूजन आए ।
हरे-हरे गोवरनि अगन लिपाए
औरु मुतिअनि चौक पुराए—
हो हरि गोधन पूजन आए ।
मीठे-मीठे दिवला सिकाए
औरु मोअन भोग वनाए—
हो हरि गोधन पूजन आए ।
ताती जलेवी दूध के लाड़ू
और सव पकवान वनाए—
हो हरि गोधन पूजन आए ।
गगा-जमुना नीर मँगाए
औरु गिरवर उवटि न्हवाए—
हो हरि गोधन पूजन आए ।
सोने को दिवला, कपूर की वाती
औरु गऊअ के घिरत जराए—
हो हरि गोधन पूजन आए ।

सात कोस की दई परिक्रम्मा
और चरननि सीस नवाए
हो हरि गोधन पूजन आए।
धूप दीप लै करीऐ आरती
और षटरस भोग लगाए—
हो हरि गोधन पूजन आए।

उपर्युक्त गीत मे "हरे-हरे गोवरनि अगन लिपाए" कहा गया है। स्कन्दपुराण के एक श्लोक मे भी ठीक यही बात कही गयी है। उसमे गोवर का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि गोवर मे परम पवित्र सर्व मगलमयी धन की अधिष्ठात्री देवि श्री लक्ष्मी जी नित्य निवास करती है। गोवर लीपने का महत्व सम्भवतः इसी लिये अधिक माना गया है। सभी मगल कार्यो मे गोबर से घर-आँगन लीपना आवश्यक और पवित्र माना जाता है। लोकगीतो मे गोबर का उल्लेख इसीलिये बार-बार किया जाता है। दिवाली का त्यौहार है भी गोबर और गोवर्द्धन की पूजा का। "स्कद-पुराण" मे कहा गया है—

**"लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं
पवित्रा सर्व मंगला
गोमयालेपनं तस्मात
कर्तव्यं पान्डुनन्दन : ॥"**

गोवर्द्धन की पूजा दिवाली के ठीक दूसरे दिन होती है। गोवर्द्धन पर्वत को गिरिराज या गिर्राज भी कहते है। प्राचीन युग से इसकी पूजा बड़ी धूम-धाम से होती चली आ रही है। श्री मद्भागवत मे लिखा है कि "द्रोणाचल सुत श्यामगिरि गोवर्द्धन वरम्" मथुरा से आठ कोस दूर है। इसका सबसे स्पष्ट वर्णन "वाराह पुराण" मे मिलता है। इस पुराण मे कहा गया है—

**माधवीलतिका पुष्पं फलभारसमन्वितम् ।
निर्झरेनादितं शान्तं कदरामंगलायनम् ॥**

गोवर्द्धन की पूजा के विषय मे एक अनुश्रुति है कि ब्रज मे पहिले इन्द्र की पूजा होती थी। भगवान कृष्ण ने गोवर्द्धन की पूजा की स्थापना की। इन्द्र ने इससे कुपित होकर भयकर वर्षा कर गोवर्द्धन को वहाने का प्रयास किया किन्तु भगवान कृष्ण ने गोवर्द्धन को एक अगुली पर उठा कर गोवर्द्धन और ब्रज दोनो की रक्षा की। गो-धन की रक्षा के कारण ही इसका नाम गोवर्द्धन पड़ा है।

इस पूजा के दिन अन्न के विशाल ढेर यहाँ लगते हैं। इसी कारण इस त्यौहार को अन्नकूट भी कहते है। ब्रज मण्डल के घर-घर मे गोवर्द्धन-पूजा के दिन गोबर के ढेर की गोवर्द्धन की भावना से ही पूजा की जाती है। कार्तिक मास की अमावस्या

के दूसरे दिन प्रात व्रजनारियाँ विविध वस्त्राभूपणो से सुसज्जित हो गाती-नाचतीं गोवर्द्धन-पूजा को जाती है। एक ओर तो गिर्राज जी पर भक्तो की भीड लगती है दूसरी ओर व्रज के घर-घर मे गीतो और नृत्यो के साथ गोर्धन या गोवर्द्धन की पूजा होती है। स्त्रियाँ समवेत स्वर मे गाती हैं—

चलौ चलौ री सखी सब हिलमिल कैं, श्री गिरिराज पुजावन को।
रोरी अच्छत पुस्पन माला, सग लै भेट चढावन को॥
धूप दीप नैवैद आरती, कर वाँके वा गावन को।
छप्पन भोग वतीसो व्यजन, गिरवर भोग लगावन को॥

गोवर्द्धन-पूजा का निम्नलिखित गीत व्रज-मण्डल मे वहुत प्रसिद्ध है। आगरा के गाँव-गाँव और नगर मे यह गीत बड़ी धूम से गाया जाता है—

नाँइ माने मेरौ मनुआ
मैं तो गोवरधन कूँ जाऊ मेरी वीर।
सौमोती कौ न्हानु पर्यौए,
परमी न्हाइवे जाऊँ मेरी वीर।
पाँच सेर की करूँ कोथरी,
पेड़-पेड पै खाऊँ मेरी वीर।
राधा कुंड की राधारानी,
कुसुम सरोवर न्हाऊँ मेरी वीर।
गोवरधन, आन्यौर, पूँछरी,
जतीपुरा लौटि जाऊँ मेरी बीर।
जतीपुरा ते आय गोवरधन,
मानसी गग न्हाउँ मेरी वीर।
गोबरधन ते राधाकुंड मे,
पायन-पायन जाऊँ मेरी वीर।
सात कोस की दै परकम्मा,
वाम्हन न्यौति जिमाऊँ मेरी वीर।

रसिया की तर्ज पर श्री गिरिराज जी की पूरी कथा और पूजन के महात्म्य का वर्णन इस प्रकार है—

## रसिया गिरिराज को

नख पै धर के श्री गिरिराज नाम गिरधारी पायी है।
सुरपति पूजन वन्द करायौ

श्री गोवरधन को पुजवायी
नन्द वावा और जसुदा मात
सग मे वलदाऊ जी भ्रात
सकल परिवार कुटुम लै साथ
करी पूजा विध सो निज हाथ
एक रूप ते पूजत है, एक ते रहे पुजाय
सहस भुजा फैलाय के, माँग-माँग कै खाय
सवा लाख सामिग्री कौ भोग लगायौ है। नख पै० ॥
ब्रजवासी ब्रज गोपी आई
वहि पकवान डला भर लाई
चली कोउ उलटी पटिया पार
चली कोउ इक दृग अजन सार
नाक में नथनी झलकेदार
कान मे करनपूल लये डार

दोहा—उल्टे-सीधे अग मे, गहने लीने धार
उल्टे पहिरे वस्त्र सव, उल्टौ कर श्रृगार
प्रेम मगन बस भई वदन कौ होस गँवायो है। नख पै०।

पूजन कर परिकम्मा दीनी
कर दडौत अस्तुती कीनी
सबन मिल वोली जब जैकार
बढौ सुरपति को क्रोध अपार
मेघ मालो ते कहै ललकार
व्रज को कर देउ पनिया ढार

दोहा—उमड़ घुमड कर घेर व्रज, उठी घटा घनघोर
चम-चम चमकै वीजरी चौके व्रज के मोर
मूसलधार अपार मेह सुरपति वरसायौ है। नख पै०।
व्रजवासी मन मे घवडाये
कृष्णचन्द्र के जौरे आये
कोप इदर ने कीयौ आज
सहाई कीजे अव महाराज
छोड़ व्रज कहाँ को जामे भाज
आपके हाथ हमारी लाज

दोहा—लाज आपके हाथ है व्रज को लेउ बचाय
जो उपाय कछु ना करौ, पल मे व्रज बह जाय
श्री गिर्राज मुकट वारे ते ध्यान लगायो है।

व्रजवासिन मन धीर धरायौ
सबरौ व्रज इक ठौर बुलायौ
लियौ गोवरधन नख पर धार
दाऊ हल मूसल रह्यौ सम्हार
सग मे गोपी गऊ और ग्वार
कियौ गिर तले व्रज निस्तार

दो०—सात रात औ सात दिन, बरसौ मेघ अघाय
जैसे ताते तवा पै बूँद छुन्न ह्वै जाय
गोप करे आनन्द नॉय छीटा तक आयो है। नख पै०।

मधुर-मधुर बाँसुरी बजाई
सब व्रज मे आनन्द रह्यौ छाई
इन्द्र ने नारद लियौ बुलाय
खबर तुम व्रज की लाऔ जाय
चले मुनि मृत्युलोक को धाय
व्रज की लीला देखी आय

दोहा—व्रज की लीला देखि कै, उल्टौ कियौ पयान
इन्द्रपुरी मे जाय कै, मुनि ने कियो बखान
तीन लोक करतम के करता ने वैर बढायौ है। नख पै०॥

इन्द्र ने सिंहासन छोडौ
सुर ने स्याह करन ले कै घोडौ
चलौ अहरापति हाथी साथ
इन्द्र मन थरर-थरर थर्रात
जहाँ तिरलोकी दीनानाथ
इन्द्र ने जाय नवायौ माथ

दोहा—चरनन मे जब गिर परौ, क्षमा करौ अपराध।
हे जगकर्ता आपकी, लीला अगम अगाध। नख पै०॥

गिरिराज जी की परिक्रमा का महत्व कम नही। सच्चे मन से उनकी पूजा और परिक्रमा करने से शुभ फल अवश्य मिलता है। निम्नलिखित रसिया मे इसी का उल्लेख है—

साँचे भाव भक्ति की, परिक्रमा श्री गोवर्द्धन की है
प्रथम करौ इसनान मानसी जी
सकल पाप कट जाँय आनसी जी
प्रेम ते पूजौ श्री गिरिराज
साज पूजा कौ सकल समाज
करिंगे पूरन मन के काज
सदा राखें भक्तन की लाज

दोहा—गोवर्द्धन को पूज कें, उद्धवकुण्ड गये आय
भंग मिरच बादाम लैं, बूटी लई बनाय
घोट—छान कें चले तिरख छवि गऊ बछरन की है। साँचे ।।

इसके पश्चात राधाकुण्ड, विसाखा, ललिता जी के कुण्ड, बलदेव जी की बैठक गोविन्द गोपीनाथ की झाँकी, कुसुम सरोवर, नारद कुण्ड, ग्वाल पोखरा, किलोल कुण्ड राजा की छतरी के ब्रह्म कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, अपसरा कुण्ड, नवल कुन्ड, पूछरी ग्राम में पूछरी के दर्शन, सुरभि कुण्ड, कदम खण्डी, अहिरापति हरजी कुण्ड, चकलेश्वर आदि की परिक्रमा होती है।

## नव वर्ष या अन्न कूट

भारतीय लोक परम्परा में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा नव वर्ष का प्रथम दिन है। नव वर्ष के नव संकल्प और वर्ष भर की कुछ निश्चित योजनाएँ इसी दिन बनती हैं। गोवर्द्धन की पूजा का भी यही दिन है। गोवर के गोवर्द्धन बनाए जाते हैं। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को ही अन्नकूट का महोत्सव होता है। गाय, भैंस, बैल आदि पशुओं की पूजा होती है। प्रातः इन्हें स्नान कराया जाता है और मेंहदी के साँतिए, चन्द हूला आदि इनके शरीरों पर अंकित किये जाते हैं। सींगों को हिरमिच या जंगाल से रंग दिया जाता है और इनके गले में कंठी या गण्डे बाँध दिये जाते हैं। गोधन-पूजा के समय विविध अनुष्ठान किये जाते हैं। स्त्रियाँ गोवर्द्धन की पूजा कर उसे प्रार्थना करतीं हैं कि अपनी मुक्ति का दान दे कर सबको आवागमन के चक्र से वचायें । एक प्रार्थना है—

जय गोवर्द्धन महाराज नाथ तुम भक्तन हितकारी
दान घाटी वारे गिर्राज
रखियो जन अपने की लाज
आय हौ भक्तन के सिरताज
कृपा आपकी से प्रभू अन्न धन धौर कुटुम्व ।
मुक्ती की मुक्ती करें धन्य तरहटी भूमि ।

पूजा लई छिनाय इन्द्र गर्व कियो भारी
जय गोवर्द्धन महाराज नाथ तुम भक्तन हितकारी ।
बीच मे भरी मानसी गग
लहर की अद्भुत उठै तरग
करें इसनान पाप हो भग
बच्छासुर को कृस्न नें दीनो धरन पछार ।
बाही के कारन प्रभू तन ते प्रगटी धार ॥
कातिक वदी अमावस्या को दीपदान भारी ।
करें जो एक रात जागरन,
कभी ना होवै जनम मरन ।
जाय के श्री कृस्न की सरन ॥

## भैया-दूज

दिवाली के बाद द्वितीया को भइया-दूज का त्यौहार होता है । इस दिन वहिन भाई के टीका करती है और भाई अपनी बहिन को उपहार देता है । यह त्यौहार भाई-बहिन के पवित्र स्नेह का प्रतीक है । इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती है, गोवर या मिट्टी की 'गौर' बनाती' है और भाई-दूज की कहानियाँ सुनती-सुनाती है । इस अवसर पर वधाए गाये जाते है । जैसे—

मेरे अगना मे मँदिरु बनवइयो मोरे राजाजी
करौ गनेस की पूजा ।

इस अवसर पर मुख्य रूप से "चौजरौ" लोकगीत गाया जाता है एक लोक-गीत और वहुत प्रसिद्ध है जो इस अवसर पर गाया जाता है—

जाकी लटकि-लटकि, जाकी—
मुरकि-मुरकि छाया आवे,
हो मोहि विरछु नरियरौ न भावे
मोहि ऐसी सासु नही चाहिए,
मोढिलनि पैते हो—
मोढिलनि पंते हुकमु चलावैं,
हो मोहि विरछु नारियरौ न भावैं ।
मोहि ऐसे ससुर नही चाहिए
अथइनि पैते हो
अथइनि पैते हुकमु चलावै
हो मोहि निरछु नारियरौ न भावैं ।

## देवठान या देव-प्रबोधिनी

देवठान (देव-उठान या देवोत्थान) कार्तिक शुक्ला एकादशी को मनाया जाता है। इस दिन सारे घर को लीप-पोत या धो कर कच्चे पिसे हुए चावल या खड़िया मिट्टी पानी मे घोल कर सारे घर के फर्श पर भाँति-भाँति के चित्र वनाए जाते है। बीच-बीच मे गेरू के चित्र भी अकित किए जाते हैं। पशुओ के खुर और मनुष्यो के पाँव भी चित्रित किए जाते हैं। आँगन मे एक चौक पूर कर उस पर चौकी रखी जाती है। चौकी पर घी का दीपक जलाया जाता है और ऋतु के अधिकांश फल और सब्जियाँ उस पर रख कर चार-पाँच गन्नो का उस पर मन्डप छाया जाता है। इस दिन लोग सिंघाड़े, सकरकदी, बेर आदि विशेष रूप से खाते हैं। चौकी पर रखे दीपक मे देवताओं का आवास मान कर घर के पुरुष और बालक उसकी पूजा करते है। ऐसा कर वे देवताओ को जगाते है। पूजा के समय दो व्यक्ति आमने सामने खडे होकर चौकी उठाकर धीरे-धीरे हिलाते हुए कहते हैं—

उठो देव, वैठो देव
आँगुरिया चटकाओ देव।
क्वारेनि के व्याह करौ
व्याहेनि के गौने करौ।
रीते भरौ, भरे लुढकाऔ,
उठो देव, वैठो देव
आँगुरिया चटकाओ देव।

"देवठान" के दिन से ही विवाह, गौने तथा अन्य मगल कार्यो का होना शुभ माना जाता है। जब तक देव सोते रहते है तब तक कोई मंगल कार्य नही किया जाता। रात्रि को पूजन का चौक किसी डलिया से ढँक दिया जाता है। लोगो मे यह विश्वास है कि कोई क्वारी कन्या या लड़का सूर्य निकलने से पूर्व ही प्रात. यदि इस चौक पर वैठ जाये तो उसका विवाह शीघ्र हो जाएगा। देवठान पर स्त्रियो का भी एक गीत है—

वगला पान फूलनि सौ छायौ
सबरे देव मिसिल सो वैठे
तौ माता मैया काहे नही आई,
वगला पान फूलनि सो छायौ।

इस एकादशी को "देव-प्रबोधिनी" एकादशी भी कहते हैं। आषाढ शुक्ला एकादशी से देव शयन करते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशी को उठते हैं। इस प्रकार देवता चार मास तक शयन करते हैं। कार्तिक शुक्ला एकादशी का दिन इसी-लिये देवठान या देवोत्थान का दिन कहा जाता है।

## कार्तिक-स्नान और व्रत

कार्तिक स्नान शरद पूर्णिमा से आरम्भ हो जाता है और वटेश्वरी पूनो अर्थात कार्तिक पूर्णिमा तक पूरे एक महिने नित्य प्रात ब्रह्म मुहूर्त मे स्त्रियाँ स्नान करती हैं। स्त्रियाँ और लडकिया प्रातः चार-पाँच वजे से समूहो मे गीत गाती हुई अपने पास के सरोवर, कुए, नहर, नदी आदि तक जाकर स्नान करती हैं। स्नान के बाद पूजा-पाठ होता है और कार्तिक स्नान के महत्व की कथायें कही जाती है। हर रविवार को व्रत रख कर राई दमोदर (राधा-दामोदर) की पूजा की जाती है। पूजा मे जो गीत गाए जाते है उनमे यह गीत प्रमुख है—

राधा-दामोदर बलि जइए।
राधा बूझे बात किसन
हरि कैसे कातिक न्हैयो ॥

कार्तिक स्नान का महात्म्य स्नान, व्रत और इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतो मे ही मिलता है। स्नान के पश्चात गृह-देवियो के कल कण्ठ से जो गीत गाए जाते है उनमे आध्यात्मिकता भी रहती है। भरत के राम के पास आने का एक गीत है—

उठि मिलि लेऊ राम भरतु आए।
भरत के सग चरतु आए। उठि०
गङ्गा जी की विन सिढियन पै रामा,
बिनहू ने बैठि भले न्हाए। उठि०
हाथी के हौदा पै चारो भैया आए रामा,
ऊपर चौर ढुरत आए–हाँ ढुरत आए। उठि०

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे ब्रह्म का रूप झलकता रहता है। "राम के गीत" मे वडा सुन्दर वर्णन है—

लै लीयौ हरि को नाहुँ आँगे–आँगै गैल कठिन की।
अरे गैल कठिन की·····················
आँगे-आँगे गङ्गा वहति ऐ— अरे गङ्गा वहति है,
करि लीयौ असनान— आँगे-आँगे गैल कठिन की।
आँगे-आँगे तुलसी को बिरवा—अरे तुलसी को विरवा,
करि लीयौ पूजा-पाठ— आगे-आँगे गैल कठिन की।
आँगे-आँगे गउएं चरति एँ—अरे गउएं चरति एँ
लै लीजो गऊदान—आँगे-आँगे गैल कठिन की।
आँगे-आँगें कन्या खेलतिएं— अरे कन्या खेलतिएं

लै लीजौ कन्यादान—आँके—आँगै गैल कठिन की ।
लै लीयौ हरि कौ नाउँ – आँगै-आँगै गैल कठिन की ।

कार्तिक मास की अन्तिम एकादशी को तुलसी–शालिग्राम का विवाह किया जाता है। इस अवसर पर भक्ति-परक गीत गाये जाते है —

मगन भईं तुलसा राम गुन गाइकै ।
राम गुन गाइकैं, हरि गुन गाइकैं,
मगन भई तुलसा राम गुन गाइकै ।
सवु कोउ चालै डोली पालकी
रघु जुरवाई कै,
साधु चालै पाँपाँ पइयाँ चैटी सौ वचाइकै ।
मगन भई तुलसा राम गुन गाइकै ।

इसके वाद हेमन्त ऋतु मे कोई पर्व नही है । इस मास मे विवाह अधिक होते हैं। अत· शृङ्गारी गीत ही गाए जाते है ।

## वसंत

वैसे तो भारत मे ऋतु-सम्वन्धी उत्सव मनाये ही जाते है किन्तु वसतोत्सव सवसे अविक प्रभावपूर्ण, सरस तथा आनन्दमय होता है इस ऋतु मे धरती पर यौवन आ जाता है । वृक्ष नवीन कोपलो, कलिकाओ और पुप्पो से श्रृंगार कर नायिका से आकर्षक हो जाते हैं । नवीन लतिकाये और वल्लरियाँ मन मे सरसता उत्पन्न करती है । सरसो की क्यारियाँ किसी नव-वधू के समान पीली चूनर ओढ़े मन मोहती है । पक्षियो का कलरव, भ्रमरो का गुजन और कोकिल की कूक से हृदय मुग्ध हो जाता है । प्रकृति-चित्रण से भारतीय साहित्य परिपूर्ण है । कवियो ने प्रकृति के जो मनोरम चित्र अपने काव्य मे अकित किये है वे साहित्य मे अपना विशिप्ट स्थान रखते है किन्तु लोकगीतो मे प्रकृति के वर्णन जितने हृदय-ग्राही, सरस, मधुर और विमुग्धकारी हुए है उतने अन्य कही नही देखे जा सकते । व्रज-वाणी एक तो वैसी ही मधुर होती है, जव वह स्वाभाविक गीतो मे निःसृत होती है तो उसमें और अविक मधुरता आ जाती है । लोकगीतो मे प्रकृति भी वहुत अधिक निकट दिखाई देती है । आगरा का प्रत्येक गाँव अपनी सरस वाणी मे प्रकृति की सुन्दरता को सजा-सजा कर रखता आया है । यहाँ के लोकगीतो मे एक स्वाभाविक प्रवाह, मिठास और आकर्षण है । यहाँ का कवि प्रेम-मग्न हो गा उठता है—

माह महीना लग्यौ है कोइल कूक रही वन मे ।
घर-घर वँधे वसत, फूलि रही सरसो खेतन मे ।।

डरे मो घर सूने पलना
राम-कृस्न के विना सखी मोहि कैसे हूँ कल ना
रभावै गैया सी महतारी
विन गोपाल उजरि गई जीवन फुलवारी ।

वसंत की अनीति पर कोई विरहिन रो–रो कर कहती है–

फिरू ँ हूँ मारग मे 'वन वियोगिन,
खवरि हमारे न कत की है ।
तडपै मोरे प्रान पिया विन
अनीतता पै वसत की है ।।

व्रज के प्रसिद्ध लोकगीत आल्हा, ढोला और होली मे वसत का वड़ा सरस और विस्तृत वर्णन मिलता है । "गन्धीगर अतर लगाइ वेजनी फरिया मे" और "जा पीरौदा पै मरि गई वारे रसिया" आदि गीत वडे सरस और उत्कृष्ट है ।

कालिदास का 'मेघदूत' मूर का 'भ्रमर–गीत' और श्री सत्य–नारायण का 'भ्रमर-दूत' साहित्य के अत्यधिक सरस और श्रेष्ठ ग्रथ है किन्तु लोकगीतो मे भ्रमर को अपना दूत वना कर विरहिणी जिस प्रकार सदेश भिजवाती है उसका उदाहरण भी दृष्टव्य है—

अलिन गलिन भँवरा क्यो फिरै
अरे भँवरा जइयो मेरे राजाजी के देस——
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे ।
वागनि फूली रे भँवरा केतकी ···वागनि ··
अरे भँवरा वन-वन फूले है पलास
सिदौसी अइयो लौटि, अरे सिदौसी अइयो लौटि रे ।
सरसौ सुहागिल भँवरा खिल रही" सरसो....
अरे भँवरा आई वसन्त वहार –
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे ।
का तुम सोची रे भवरा अनमने--का तुम
अरे भँवरा वेगि सँदेसौ लै जाउ
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे ।

भँवरा उसके प्रियतम का पता पूछता है—

तेरे राजा विराजै किस देस मे···तेरे राजा

अरी विरहुल कैसौ तेरे राजाजी कौ भेस—
सिदौसी रे आऊँ लौटि कें।

विरहिन अपने राजा जी का पता देती है—

मेरे राजा विराजें रे भँवरा सासुरे·· मेरा राजा···
अरे भँवरा बिनकौ बसत जैसो भेस—
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे।
फूल गुलाब से भँवरा हँस-मुखे··· फूल गुलाब
अरे भँवरा तेरी अनुहारौ बिनके केस
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे।
बिन राजा भई भँवरा बावरी ·· बिन राजा···
अरे भँवरा लइयो तू सग लिवाय—
सिदौसी अइयो लौटि, सिदौसी अइयो लौटि रे।

इस प्रकार यह लोक-काव्य का "भ्रमर-गीत" या "भ्रमर-दूत" स्वाभाविक, सरस और हृदयग्राही है। लोक-कवि का मन सचमुच भ्रमर बन गुजन कर रहा है। यह गुजन अनन्त और अनश्वर है।

कही कोई ग्राम-युवती कन्हैया जी के प्रेम मे मतवाली हो कर उनके शृगार का विचार करती है। वह कन्हैया जी की टोपी बसन्ती रग मे रगने को उतावली हो रही है—

कन्हैया जू की टोपी बसन्ती रँगवाय देउँगी।
जो कान्हा पै टोपी न होगी, जो कान्हा प टोपी न होगी
वरमाने ते मँगवाय देउँगी—कन्हैया जू की टोपी····
मेरी चूनरि रगी वसन्ती, मेरी चूनरि रँगी बसन्ती
बामे ते फारि सिमाय देउँगी—कन्हैया जू की टोपी···

## होली

बसन्तोत्सव मदनोत्सव है। मदन (काम) के पच-बाणो मे से एक प्रमुख बाण आम्र-मजरी बाण इन दिनो बहुत चलता है।

वसत के आगमन पर कृष्ण की लीलाओ का स्मरण स्वाभाविक रूप से हो आता है। कृष्ण और गोपियो का वसतोत्सव बडा मादक, भव्य और प्रभावशाली होता था। गोपिकाएँ कृष्ण को घेर कर उन्हे रग देती थी। किन्तु यह होली कोई पार्थिव होली नही। इसमे तो भक्त और भगवान का सम्बन्ध दिखाई देता है। मन की पिचकारी मे ध्यान का रग भरना चाहिये और प्रेम का गुलाल भर कर ब्रह्मानन्द

की प्राप्ति करनी चाहिये । यही भाव निम्नलिखित गीत मे परिलक्षित होते हैं—

आयौ वसंत सखी री मिलि खेलिए होरी
परकै भूल गई गृह कानन मन वहु ताप रहोरी
जिन-जिन खेली होरी श्याम सग तिन वड भाग भयौरी
तज सव काम काज घर के रे लाज को दूर धरौरी
फागुन के दिन वीत जायेंगे फिर पीछे पछतौरी
सव स्वागत विन्दावन जाकै स्याम को खोज करोरी
करि विचार युक्ति से घेरौ जान न पावै होरी
मन पिचकारी पकड़ कै सुन्दर ध्यान के रग से भरौरी
प्रेम गुलाल मलौ मुख ऊपर ब्रह्मानद रस लोरी
आयौ वसत सखी री मिलि खेलिए होरी

होली भारतीय त्यौहारो की महारानी कही जाती है । यह आनन्द और आल्हाद की साकार मूर्ति तथा हर्ष और उल्लास की प्राणवान देवि है । होली आती है तो हृदय मधुर-मधुर नृत्य कर उठता है, वाणी में लास्य का लावण्य आ जाता है और स्वर मे कोकिला की मिठास घुल जाती है । ऐसे उल्लास, उन्माद और उमग भरे वातावरण मे भारत के गाँव अपनी विवशता, निर्धनता और न्यूनताओ को विस्मृत कर ढोलक की थाप और मृदग की ताल पर गा-गा उठते है, नाच-नाच उठते हैं ।

होली का त्यौहार वैसे तो सारे भारतवर्ष मे मनाया जाता है किन्तु व्रज-मण्डल मे इसका जो सरस-सलौना रूप देखने को मिलता है वह अन्यत्र नही । आगरा के गाँवो मे वसत से ही होली आरम्भ हो जाती है । जगह-जगह फाग गाये जाते हैं, सायकाल ढोलक-मजीरे पर सरस गीतो का मुग्धकारिणी धारा वहती है और हास-परिहास विखरा पड़ता है । लोकगीतो मे होली का प्रमुख स्थान है । यहाँ दो प्रकार की होलियाँ गायी जाती हैं—राजपूती होली और ढफयायी होली । ढफयायी होली पुरानी परिपाटी को लिये चलती है । ढफयायी होली के लोकगीतो मे विषय तो वदलते रहते है किन्तु गाने की पद्धति पुरानी ही है । इन होली-गीतो मे शृंगार रस अधिक रहता है । रीतिकालीन शृंगारी कवियो की भाँति नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा हैं । श्रीकृष्ण होली खेल रहे है । उन्होने राधा को रंग-गुलाल से भर दिया है । राधा कहती हैं—

ऐसे स्यामु खिलारि, रंग में रंगि डारी
काहे कौ पचरंग वनायौ—काहे कौ…

काहे की पिचकारी, रंग मे रंगि डारी।
ऐसे स्यामु खिलारी, रंग मे रंग डारी॥
केसर कौ पचरंग बनायौ—केसर कौ····
रूपे की पिचकारी, रग मे रंग डारी।
ऐसे स्यामु खिलारी, रंग मे रंगि डारी॥

होली मस्ती का त्योहार है। होली खेलते या गाते समय बहुधा मर्यादा का उलंघन हो जाता है। ऐसा होना इस अवसर पर बुरा नही माना जाता। एक युवती अपने पति से कहती है—

मो पै अटा चढ्यौ नही जाय,
बालम जवर झोक जोबन की।
अए हाँ, ऊँची अटारी ईंट की—हाँ ऊँची
अए औरु सिढी लगी द्वै चार
बालम जवर झोक जोबन की।
मो पै अटा चढयौ नही जाय, बालम जवर झोक जोबन की

उधर दूसरी ओर एक नव विवाहिता युवती अपना गौना कराने के लिये बडी उत्सुक हो रही है। वह अपने प्रियतम के पास सन्देसा भेजती है—

खतु लै जा गगा राम, मेरे गौने को।
मेरौ लुटौ जुवन सौने कौ॥
अए हाँ अपनी बारी वेदरी, हाँ अपनी बारी वेदरी,
अए औरु अव भई समरथ ज्वान— मेरे गौने कौ।
मेरौ लुटौ जुवन सौने कौ॥

यही गीत दूसरे ढग से भी गाया जाता है। जैसे—

घुरि गई मोह की गांठि,
फन्दा वुरौ नई यारी कौ।
अए हाँ अवनो बारी बेदरी, हाँ अबनो बारी वेदरी
अए औरु अब भई समरथ ज्वान,
फन्दा वुरौ नई यारी कौ।
घुरि गई मोह की गाँठि·······॥

ढफयायी होलियो मे शृ गार के अतिरिक्त अन्य रसो का भी प्रयोग मिलता है। कुछ होलियाँ भक्ति-भाव की भी है। हास्य और व्यग के पुट भी इन होलियो मे यत्र-तत्र देखे जाते है।

व्रज मे होली का महत्व श्री कृष्ण से सम्बवित होने के कारण यहाँ उल्लास और उमंग की सीमा नही दिखाई देती। नन्दगाँव और वरसाने की होली का जितना अधिक प्रभाव आगरा पर पड़ा है उतना मथुरा को छोड कर अन्य किसी जिले पर नहीं। राधा तथा गोपियो से श्री कृष्ण का होली खेलना अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। व्रज मे स्त्री-पुरुष इसी प्रभाव के कारण आपस मे होली खेलते है। इस अवसर पर नारी पुरुष का डट कर सामना करती है। वह पुरुप पर रग-गुलाल के अतिरिक्त लाठी और कोड़ो से भी आक्रमण करती है। देवर-भाभी, जीजा-साली, जीजा-सलहज, ननदोई-भाभी आदि की होलियाँ इसी प्रकार खेली जाती हैं। इस अवसर पर पुरुप नन्दगाँव के ग्वाले वन जाते है और स्त्रियाँ वरसाने की गोपियाँ। होली मे पुरुषो को पर्याप्त छका देने के वाद वे चिढा-चिढ़ाकर गाती है—

लला फिर आइयो खेलन होरी !

राधा और कृष्ण तथा गोपियो से सम्वन्धित होली के अनेक गीत जगह-जगह गाये जाते हैं। यहाँ के होली सम्वन्धी लोकगीतो मे जो सुन्दर गठन इतने सरस, मधुर और ओजस्वी रूप मे मिलता है वह साहित्यिक रचनाओ की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट प्रतीत होता है। मन के उल्लास को स्वाभाविक रूप मे व्यक्त कर अनौखी सजीवता प्रकट की जाती है। ढोलक, मजीरे और ढपली की लय मे उठते-गिरते स्वरो से साम्य तथा तदानुरूप रसानुभूति होती है। कृष्ण-युग के रास तथा होली-खेलने का हृदयग्राही वातावरण आज भी उपस्थित हो जाता है। एक होली है—

व्रज को दुल्हो रग भर्‌यो
ऐसे होरी खेलत डोलै, हाथ लकुट, सिर मुकुट धर्‌यो।
गाढ़े रग रग्यो व्रज सगरौ, फाग खेल को अमल भर्‌यो।
वृदावन हित नित सुख वरसै
तान-मान लै मनुज हरयो ॥

फागुन के महिने मे प्रियतमा अकेली है। वह अपने प्रियतम के आने की कामना मे गाती है—

आयौ फागुन मास, हमारौ पिया घर नाँयं।
देवरिया नादान सखी री, आयो फागुन मास।
नाक चुनी नक वैसा सो है, झलकारी छवि-न्यारी
आयौ री फागुन मास पिय सग खेलो न होरी।

होली मे नर-नारियो के हृदय उत्साह, स्फूर्ति और हर्ष की तरग मे झूम-झूम जाते हैं। वृद्ध भी उस रग मे भीग कर कह उठते हैं—

गोरी तेरे नैना बड़े कटीले,
फागुन मे ऐसी न चाहिये, ये दिन रंग रंगीले।

प्रेमी ने प्रेमिका की आँखो में गुलाल मल दिया। प्रेमिका परकीया नायिका है। वह अपने प्रेमी से कहती है—

मेरी अँखियन बीच गुलाल रसिया जिन डारौ
हा-हा करत तेरे पइयाँ परत हौं नन्द महर के लाल
सुनि है मेरी सास ननदिया तब जिय होत जंजाल

बरसाने में होली की अनोखी प्रथा है। बरसाने की स्त्रियाँ नन्दगाँव के पुरुषो पर होली के दिनों में लाठियाँ चलाती हैं। आगरा के कुछ गाँवों में देवर-भाभियो की होली भी कुछ-कुछ इसी प्रकार खेली जाती है। स्त्रियाँ कपड़े के कोड़ो से पुरुषो को पीटती हैं। पुरुष पैतरे बदल-बदल कर मार से बचते हैं। एक गीत इस प्रकार की मार-पीट का है—

कौन गाँव के कुँवर कन्हैया?
कौन गाँव की गोरी रे?
नन्दगाँव कौ कुँवर कन्हैया,
बरसाने की गोरी रे।
कहा हाथ में कृष्ण कन्हैया?
कहा हाथ मे गोरी रे?
ढाल हाथ में कुँवर कन्हैया,
लठा हाथ में गोरी रे।
कहा कर रहे ग्वाल- बाल सब?
कहा कर रही गोरी रे?
ढाल रोपि रहे ग्वाल-बाल सब।
लठा चला रही गोरी रे।

बरसाने की होली सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह गाँव राधा का है। यहाँ ग्वाले होली खेलने आते हैं और ग्वालिने लाठियों से उन पर आक्रमण करती हैं। ग्वाले लाठियों के वार बचा कर उनके मुँह पर गुलाल मल आते हैं। इसी बरसाने की होली का उल्लेख निम्नलिखित 'होली' में किया गया है—

होरी खेलौ तो आइ जइयो फागुन में
मति मारै दृगन की चोट रसिया,
होरी खेलो तो आइ जइयो फागुन मे।
बरसाने की चतुर गोपिका,

लाला नदगाँव के ग्वाला,
ग्वाल-वाल सब सग मे लइयो लाला
हँस-हँस खेलें फाग। रसिया होरी मे ··
भरि-भरि के पिचकारी मारौ लाला,
औरु उडाऔ गुलाल। रसिया होरी मे

फागुन की प्रतीक्षा और फिर होली खेलने का निमत्रण कृष्ण को दिया गया था। यही निमंत्रण आज भी दिया जा रहा है ग्राम-युवतियो द्वारा अपने प्रेमियो को। ऐसे निमंत्रण पर आये बिना कोई कैसे रह सकता है? गाँव-गाँव की गली-गली आज भी इस गीत में गूँज रही है—

अइयो अइयो रे कन्हैया नन्दलाल रंगीली होरी मे
ऊँचा गाँम धाम वरसानो, खेलें गोपी ग्वाल
दुलहनि प्यारी राधिका रे, दूलह नन्दकुमार। रगीली होरी मे

होली से एक माम पूर्व होली और होली के एक मास वाद तक होली! यह हैं व्रज की होली का ममय। आगरा भी इससे कैसे वच सकता है? यहाँ वसत पचमी से होली आरम्भ होती है और होली खेलने की पडवा के वाद एक मास तक भाँति-भाँति के मेले-तमाशे होते रहते है, फूल-डोल सजते हैं, हुरगे होते है, रसिया गाये जाते है, रास होते है, नौटंकियाँ होती हैं, भँडई होती है। होली के गीतो मे निश्छलता के साथ दार्शनिकता भी रहती है। एक गीत है जिसमे होली होने का वर्णन है और नयन भी अपना कार्य करते दिखायी दे रहे हैं। जव तक प्रियतम के नयन अपनी प्रियतमा को नही देख लेते उनकी स्थिति अपंग के समान रहती है। वे आकाश मे उड़ते हुए पक्षी की भाँति एक रात्रि भर वसेरा देने की मनुहार इम प्रकार करते है—

नाजी नैना री नुकीले नये ढंग
खेल रहे रंगु होरी,
जो लौं नैन नैन नही निरखें
तौलौं रहत अपंग,
वसिवो चाहे एक रैन ढिग,
भूले फिरत विहंग
वसेरौ दै गोरी।

कृष्ण की होली सवमे निराली है। उनकी पिचकारी व्रज की हर स्त्री पर चल जाती है। यह पिचकारी कोई साधारण पिचकारी नही। यह प्रेम की पिचकारी है जिसमें गोपियाँ पूरी तरह रंग गयी है। उन्हे ससुर, जेठ आदि का भय तो है किन्तु वे परवश हैं। कृष्ण से मना करती हुई भी स्वयं उनके रंग मे रंगी जा रही है—

मत मारो श्याम पिचकारी मोरी भीगी चुनरिया सारी
ससुर सुनेगे देगें गाली सास सुनेगी लाखो कहेगी
मत मारो श्याम पिचकारी
जेठ सुनेगे देंगे गाली जिठानी सुनेगी लाखो कहेगी
मत मारो स्याम पिचकारी
देवर सुनेंगे देगे गाली देवरानी सुनेगी लाखो कहेगी
मत मारो ...
ननदेउ सुनेगें देगे गाली ननद सुनेगी लाखो कहेगी
मत मारो स्याम पिचकारी मोरी भीगी चुनरिया सारी

गोकुल की कुंज गलियो मे कृष्ण ने होली खेलकर उपद्रव सा मचा दिया है। ऊपर मन से गोपियाँ कृष्ण की छेड़छाड़ पसद नही करती किन्तु उनका मन आनन्दित हो रहा है। राधा तो और अधिक मुग्ध है। ऐसी स्थिति का वर्णन इस लोकगीत मे बड़ी सुन्दरता से हुआ है—

होरी खेल रहे नन्दलाल, गोकुल की कुंज गलिन मे
मथुरा की सकरि गली मे, गोकुल की कुंज गलिन मे
होरी खेल रहे ......
पूरब में राधा प्यारी, पश्चिम में कृष्ण मुरारी
उत्तर दक्खिन गोपी-ग्वाल, गोकुल०—
जानें भर पिचकारी मारी
मेरी चूनर सुरख बिगारी
हो मेरे माथे पै मलौ गुलाल गोकुल ...... ... ...
मोहि छेडौ मत ना सैया
मैं स्याम पड़ूँ तेरे पैयाँ
हो मेरौ मती करौ वेहाल गोकुल........ . .

कृष्ण-युग के रास और होली का शुभ तथा सरस वातावरण आज भी व्रज-मण्डल मे छाया हुआ है। कृष्ण को माध्यम मान कर व्रज-युवतियाँ कहती है—

व्रज को दूल्हो रग भर्‌यो।
ऐसी होली खेलत डोलै हाथ लकुट सिर मुकुट धर्‌यो॥
गाढ़े रंग रंग्यो व्रज सगरौ, फाग खेल को अमल भर्‌यो।
वृन्दावन हित नित सुख बरसे, तान-मान ले मनुज हर्‌यो॥

कृष्ण के हठपूर्वक गुलाल डालने पर लोक-लाज से भयभीत व्रज-नारियाँ अनुनय करती हैं—

मेरी अँखियन बीच गुलाल, रसिया जिन डारो ।
हा-हा करत तेरे पैया परत हो, नन्द महर के लाल, रसिया०
सुनहै मेरी सास ननदिया, तव जिय होत जंजाल, रसिया०

कृष्ण होली के रसिया वन कर सव के मन को लुभा रहे है । ग्वाले-ग्वालिनें उनके इस रूप पर मुग्ध है । ग्वालिनो को रसिया के रूप मे कृष्ण बडे मोहक प्रतीत हो रहे हैं । उन पर सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है । व्रज की गोरियो का यह छैला वडा मन-भावना है—

वन आयौ रे छैला होरी को, वन आयौ रे
मन मोहक सिंगार धर्यौ है
हाँ प्यारे रसिया
काँध मरोरै ऊपर न तोरे
माथे वेंदा रोरी को, जाके माथे वेंदा रोरी को
वन आयौ रे छैला होरी को
ऐसो है प्रभु कुँवर लाडलो
अरे हाँ प्यारे रसिया
है रसिया व्रज गोरिन को
वन आयौ रे छैला होरी को

व्रज की रङ्ग भरी होली अपने अद्‌भुत वैचित्र्य एवं उल्लासमय वातावरण मे खेली जाने के कारण ही भारत का सर्वश्रेष्ठ लोकोत्सव वन गई है जिसके दर्शनार्थ लाखो व्यक्ति दूर-दूर से आते है । मन्दिरो मे तो वसन्त से ही रंग खेलना शुरू हो जाता है, फूल-डोल-रसिया आदि के साथ फाग-धमार तथा होली विशेष रूप से गाई जाती है । रात-रात भर होली के गीत चलते रहते है । लोकगीतो मे प्रत्येक जाति के हृदय का स्पन्दन होता है । वास्तव मे मानव-हृदय का हास-उल्लास, हर्ष-विषाद अपने जितने सरल, सरस रूप से लोक गीतो मे अभिव्यक्त होता है उतना अन्य माध्यम से नही । साथ ही सम्पूर्ण जीवन की झाकी का सुन्दर अवलोकन इन लोक-गीतो के माध्यम से सम्भव है जो लोक भाषा मे व्यक्त होते हैं । व्रज मे वरसाने की होली अत्यधिक प्रसिद्ध है । वरसाना राधारानी का घर है । नन्द गाँव से अपने सखाओ के समूह को लेकर डगर-डगर मे अबीर और गुलाल के गादल विखराते हुए श्री कृष्ण फेंट मे रगभरी कमोरी लिए निकलते है, उधर राधारानी अपनी सखियो के साथ हाथ मे लट्‌ढ लेकर निकल पड़ती है :—

ठाड़ौ रहौ, न डगौ, न भगौ
अव देखु जु हो कछु खेलति ख्यालहि ।

गांवन दे री गजावन दे ।
सखि आवन दे इतै नन्द के लालहि ।।

सखियों की चुदरी आखिर रग मे भीग ही जाती है—

चुंदरिया रग मे वोर गयो कान्हा वसी वारो ।
भर पिचकारी सन्मुख मारी मो पै ।।
केसर गागर ढोर गयो कान्हा ।

इस प्रकार "इत ते आई कुवरि राधिका उततै कृष्ण कन्हाई हो", और फल स्वरूप "गोरी के रग मे भीजिगो सावर, सावर के रग मे भीजि गई गोरी", की अलौकिक छटा तथा 'आजु बिरज में होरी रे रसिया" की गूज के साथ हँसी मजाक के मस्ती भरे गीतो के साथ यह लोकोत्सव अपनी अद्‌भुत छाप वर्ष भर के लिए छोड जाता है ।

होली के प्रभाव से राम भी नही बचे है । एक लोकगीत मे राम, लक्ष्मण, भरत और सीता के होली खेलने का वर्णन है । देवर-भाभी होली खेलते है तो देवर को फगुआ (वस्त्राभूषण, मिठाई आदि) देना पड़ता है । इस रस्म का उल्लेख इस लोकगीत में हुआ है—

एक स्यामल एक गोरी, नबल दोउ खेलत होरी
इत सीता अभरण सब साजै नवल सिंगार रचौरी
उत रघुबर छबि छाजै मिलत दोउ इक ठौरी
करत ठाडे चित चोरी । एक स्यामल.........
प्रेम रग भरि मन पिचकारिन लसत अंग सरबोरी ।
अबिर गलाल उड़त चरनन रज होत सबद घनघोरी
सुनत हरि ध्यान डिगौरी । एक स्यामल ........
नवल अनौखौ खेल वनायौ नवल ही स्वाग रचौरी
माया जीव पकड दोऊ बाँधे तन सुबनी जग सोरी
तिलक कभेन कर खौरी । एक स्यामल ............
इत खीचै सीता उत रघुबर भरि-भरि अपनी कौरी
भरत राम सग जोर लगावे लच्छमन सिय की ओरी
खीच विच जीव परोरी । एक स्यामल ............
बिन तप फगुआ न लये छोड़ू हँसि कहै राज किसोरी
धनि धनि कह्यौ अवधपुर वासी जिन जिन नैन लखौरी
अवधि पति अबध किसोरी । एक स्यामल .........

राजपूती ढंग की होलियो मे अनेक पौराणिक कथाएँ भी जोड दी जाती है। आगरा के 'तिहरा' और 'मनियाँ' गांवो के वीच निम्नलिखित राजपूती होलियाँ सुनाई देती हैं—

**होली राजपूती (अभिमन्यु युद्ध)**

वरना जाइ रयौ लड़िवे कूँ समजाय रई राजदुलारी है ।
मेरौ कलि गौनवा है कै आयो और अवई उमरिया वारी है ।।
चक्कावू नाएँ सुखारौ
लड़िवे को काम करारौ
सूरमा जव टूटै, वालम वान हाथ ते छूटै
कछु नाएँ तेरे वूते, राजा फिर तेरे रथ कूँ लूटै
अव कह रही हाथ जोरि कै
मोइ दैजा जहर घोरि कै

**होली राजपूती ( जवाव तुलसीदास का )**

करि वद घर को द्वारौ
जामे ठोकि लगाय दियो तारौ
सइ साँज भई, सूदी गैल गही—आँगें वढि कै
झुकी अँधिरियाँ रात नदी मे मुरदौ जातु वह्यौ
नाइ सोच कर्यौ, जल मे कूदि पर्यौ
तुलसी ने जानी नाव ठठरी पकरि कें परली पारि भयौ
चारो ओर फिर्यौ महलन के, द्वार न मिल्यौ
भुजगी आँगें लटकि रयौ रे,
फिरि आँगे कूँ वढ़िगौ
जाइ पकरि महल पैं चढि गौ ।

**होली राजपूती (जबाव रत्नावली का)**

या वखत महल चढि आयौ
सोमत ते मोइ जगायौ
हटौ छेडौ ना सइयाँ, मेरी पकरौ ना वइयाँ, मोइ पिअर मे
आधी राति निखड छिटकि रहे चदा-तारे हैं
करिवे को प्रीति चढि आयौ भीति
तू धरि कारे पैं पाँम
नाएँ डरु लगौ, नदी ना नारे को
जैसो हराम तेंने कियौ पिया हरि ते चौ न करौ
रे माया मे भटकतु है, मोपैं कहा लाल लटकतु है ।

विचपुरी ग्राम और उसके आसपास निम्नलिखित होली विशेष रूप से प्रचलित है—

होरी खेलन आयो स्याम भैंन जाइ रंग मे वोरो री । टेक ।
कोरे-कोरे कलस मगाइ, जामें केसर घोरो री ।
औरु म्हो पै मठ-अहि मलौ करौ कारे ते गोरो री ॥ होरी...... ......
हरे वाँस की वाँसुरी, जाय तोर मरोरो री
औरु हा-हा खाइ परें जिय पइया जब जाय छोड़ो री ॥ होरी। . .... ....
अव की चोट वचाय गइ राधा, जाने घूँघट ओड़ो री
औरु ऐसो ढीट नन्द को लाला, जाने घूँघट खोलो री ॥ होरी .. . ....
सवरी गोपी हैं के इकट्ठी जाकूँ झकझोरी री
सवरे विरज की गाय चरावै ऐसो भोरो री ॥ होरी........ .. ....

गाँवो मे होली का वास्तविक आनन्द आज भी आता है । इस मँहगाई और असुरक्षा के होने पर भी यहाँ के लोग हँस-खेल लेते हैं । ग्रामीण स्त्री-पुरुष आज भी यह कह कर सतोष कर लेते है कि—

हँस खेलि वखत कटि जागो,
जाने को कितकूँ रमि जागो ।

पति परदेस से होली खेलने गाँव मे आया है । गाँव मे पेट भरने का साधन न होने पर उसे नगर मे नौकरी करनी पडी है । उसे प्रात. काल ही लौट जाना है । उसकी पत्नी उसके साथ अधिक-से-अधिक समय तक रहना चाहती है । वह कहती है—

रसिया फागुन आयौ रे ।
चार कोन को चौतरा मैं जापै कातूँ सूत,
सासुल माँगै कूकडी, मेरौ साजन माँगै रूप ;
रसिया फागुन आयौ रे ।
मोरी गगरी जल भरी मैं चलूँ अनौखी चाल,
सासुल देखै गागरी, मेरौ साजन देखै चाल ;
रसिया फागुन आयौ रे ।
सूरज तोकूँ पूजती, मोए तेरी भारी आस,
औरु न थोड़ौ ऊगियो, मेरौ साजन मेरे पास ;
रसिया फागुन आयौ रे !

होली के दिन से ही आगरा के गाँव-गाँव और नगर के मौहल्ले-मौहल्ले मे रास, नौटंकी, स्वांग और रसिया होने लगते है । लोगो के मन विशेषउल्लास से

युक्त हो सगीत के स्वरो मे निकल पडते है । होली के रंग मे डूब कर कही गाया जाता है—

होली आई रे बसता ढपु मढि दै ।
ढपु मढिदै, ढपु के सग खजरी मढि दै ।।

कही राधा-कृष्ण की रास-लीला का प्रदर्शन हो रहा है तो कृष्ण की रंग भरी पिचकारी से रग कर राधा कहती है—

सब रग बोरि डारी स्याम तैंनें
सब रंग बोरि डारी ।
भरि पिचकारी सनमुख मारी
बिगरि गई मोरी रेसमी सारी ।
स्याम तैंने सब रग बोरि डारी ।।

फागुन मे पत्नी अपने पति से जेबर बनवाने को कहती है—

हँसुलाऊ नाएँ मोपै कठुलाऊ नाएँ
कहा पहनि खेलो होरी ।

उत्तर मे पति उसे आश्वासन देता हुआ कहता है—

अब कौ तौ फागुन यो ही हँसि खेलौ,
आगे गढाऊँ नथ दुलरी ।
समय की लाज गहौ गोरी ।।

मँहगाई का समय है । उधर स्वर्ण नियत्रण ने भी असली सोने के स्थान पर चौदह कैरट का सोना कर दिया है । पति ने अपनी पत्नी को दीवान और दरोगा का भय दिखा उसके हँसुला-कठुला उतार लिये और उन्हे बेच कर वह बधिया खरीद लाया है । पत्नी भी इस परिस्थिति को समझती है । यदि उसके पास धन होता तो वह उसके लिये कम-से-कम नथ तो बनवा ही देता । उसे देवर से होली खेलनी है । होली खेलना कोई साधारण बात नही । उसके लिये भी शरीर मे बल चाहिये । उसे देशी गेहूँ की जगह समुद्र पार का गेहूँ मिल रहा है । तभी तो वह कहती है—

होली कैसें खेलूँ दिवर
गेहूँ तौ खायौ पल्ली पारि कौ ।

पी एल ४८० का गेहूँ बिना लोच और बिना शक्ति का है । उसके करुआ और धौरा बैलों की जुताई से मिला हुआ गेहूँ अब कहाँ ? उस गेहूँ से उसकी भुजाओ

मे बल आता, वक्ष मे उभार आता और जघायें नाचने को फड़क-फड़क उठती। आज के आटे की तो दशा यह है कि—

बैठक उठक करत दिन बीतै
लगि रह्यौ पेट कमरिया तें
पेचिस, दर्द और एंठन से
चलि रही सांस पलरिया तें
सब गत भई, प्रान नही निकसे
चिपके कहूं खलरिया तें
ज्वान बहू रोबै औरु झीकै
बूढी भई डुकरिया ते
फागुन मे रग बिगड़े रे–
हुरियारी गोरी नारि कौ
गेहूँ खायो पल्ली पारि कौ।

चीनी-शक्कर और गुड पर भी परवशता का एक गीत है—

दरसन दुरलभ है गये मीठे के
मैं कैसे खीर बनाऊँ।
दूध लै गयौ टंकी बारौ
रोवत रहि गयो गोद को बारौ
झीकत बीतैं साँझ सकारौ
नोट ब्याज मे गये लाड़ले
खरिया घोरि पिलाऊँ।
चीनी चोर चाट गये झपटी
गुड़ की है रही छीना झपटी
मरे गरीब, फूलि रहे कपटी
पूरी पूआ करूँ कहाँ ते
कैसे दही जमाऊँ?
चना मटर सरसो और ल्हायौ
अरहर को है गयौ सफायौ
सीत निपूतौ ऐसे आयो
जौ गेहूँ के तीकुर ठाड़े
कैसे न्यौति जिमाऊँ।
दरसन दुरलभ है रहे मीठे के
मैं कैसे खीर बनाऊँ॥

होली के गीत या तो चौपाल मे गाए जाते है या किसी सार्वजनिक स्थान मे या मन्दिर मे।

शिव के मन्दिर पर 'फगुआ' गाने के लिये ग्रामीण जुट जाते हैं और फिर फाग का रग जमता है—

रंग लूटे रे आजु, मन्दिर मे रग लूटे !
कौंन शिखर पै गौरी विराजै, कौन शिखर पै वम भोले।
रग लूटे रे आजु, मदिर मे रग लूटें।

चारो दिशाओ मे रग वरस रहा है। अवीर वादल वन कर आकाश मे उड रहा है। लोग रसिया गा रहे हैं—

मोरी नथुनी कौआ लै भागौ
मोरा सैंया अभागा ना जागौ
उडि-उड़ि कौआ पलिग चढि वैंठो
हो पलग को रस सव लै भागौ ।

होली खेलने मे जिन युवतियो को लाज आती है वे लजा कर पूछती है—

कैसें होरी खेलू गुइयाँ साँवरिया के सग
रग मे—कैसें होरी खेलूँ।
कोऊ झटकत, कोऊ मटकत आवैं
कोऊ अवीरन झोरी
अपने-अपने धरि तें निकसी
कोऊ साँमल, कोऊ गोरी, कैसें होरी·······

आगरा के जन-कवि मियाँ नज़ीर की होली का उल्लेख भी आवश्यक है। नज़ीर आगरा के लोक-जीवन के कवि थे। उनकी कविताओ मे लोक-जीवन के सच्चे चित्र मिलते हैं। उनकी कविता इसीलिये लोक-साहित्य की निधि वन गई है। आगरा की होली नज़ीर की कविता के विना सूनी ही कही जायेगी। होली के आगमन का वर्णन नज़ीर ने वडी सरल और सरम भाषा मे इस प्रकार किया है—

जव आयी होली रग भरी,
सौ नाज़ो-अदा से मटक-मटक,
और घूँघट के पट खोल दिये,

वह रूप दिखाया चमक-चमक।
कुछ मुखड़ा करता दमक-दमक,
कुछ अवरन करता छलक-छलक,
जब पाउ रखा खुश-वख्ती से,
तब पायल बाजी झनक-झनक।

नजीर होली को खुलकर मनाते थे। वे हिन्दू-मुसलमान के बीच की दीवार तोड़ कर मित्रो का स्वागत कर कहते थे—

मियाँ तू हम से न रख—
कुछ गुबार होली मे,
कि रूठे मिलते है आपस मैं,
यार होली में।
मची है रंग की
कैसी बहार होली मे,
हुआ है जोरे –चमन,
आशकार होली मे,

नजीर के मन मे होली की लोकप्रियता उसके सदा बहार यौवन में है। जिस प्रकार जवानी की हर अदा उम्दा लगती है, उसी प्रकार होली की अभद्रता भी भली लगती है। इस अवसर पर गालियाँ भी मीठी लगती है और शरारते भी दिलचस्प मालूम होती है। नजीर ने तभी तो कहा है—

या स्वांग कहूँ या रग कहूँ—
या हुस्न बताऊँ होली का,
सब अबरन तन पर झमक रहा,
और केसर का माथे टीका।
हँस देना हरदम नाज भरा,
दिखलाना सजधज शोखी का;
हर गाली मिसरी कद भरी,
हर एक कदम अठखेली का।
दिल शाद किया और मोह लिया,
यह जोवन पाया होली ने।

'भदावर क्षेत्र के 'सुखैया' की होलियो मे विषय की विविधता है फिर भी उनकी होलियाँ मुख्य रूप से शृंगार-रस प्रधान ही हैं। गृह-कलह पर उनका एक गीत है—

सासु ननद कौ राजु भैना, हम सगातिनि को गिनै ।
वात का ह पूछि देखौ, पौरि मैं वैठी विन्है वेई पुरखा है ।
अरु मवु दिन लगी रहौ धधे मे—
तोऊ पर अहसान नही—ध प मा, प म ग, म ग रे, ग रे सा—
अरु कैं गिरि परौ कुआ पोखरि मे
औरु कछू ना वूतौ ।
नहि न्यारी होइ निपूती ॥

सुखैया की होलियो मे पक्के राग की पूर्णता है । उन्हे राग-रागनियो का अच्छा ज्ञान था । वे एक श्रेष्ठ गवैये भी थे । उनकी एक होली द्रष्टव्य है—

वरि जइयो अँधिरिया रैनि हौ तो जेठ ऊपरि गिरि परी ।
गैल मे खटिया विछी वित नीद आँखिन मे भरी ।
सुनि द्यौरनियाँ ।
मोपै मुख न दिखायौ जाय—
सरम के मारैं भीतर जाइ परी — ध प मा, प म ग, म ग रे, ग रे सा—
मेरे सैंयाँ ऐसे निखट्टू—
डोलें फटे-फटे है ।
मेरे वैसे हूँ मान घटे है ॥

सुखैया के समान ही मोहन सिंह भी आगरा के प्रसिद्ध होली-गायक हुए है । उनकी सयोग शृगार की एक होवी है—

चलौ सोवेंगे सैंयाँ, भई आधी रात ।
मेरौ जाडे के मारैं कँपै सारौ गात ॥
सदा हवा नही रहै एक सी
धर्यौ जिगर पै हाथ रे
मेरौ सूनो पलँग डर्यो ऐ ॥
जाते जोवन जोर कर्यौ ऐ ॥

शृगार के साथ भक्ति की भी अनेक होलियाँ ठा० मोहन सिंह की प्रसिद्ध है । राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र जनकपुर जा रहे हैं । मार्ग मे नदी पडी । पार उतारने को मल्लाह से कहा जा रहा है—

मलहा के डोगा डारि
राम पारि पै ठाडे
जनकपुरी मे भूप जुरे है

भारी है गई भीर
तू तौ पार लगाइ दे हेला
देखो जनकपुर मेला ।।

पतोला की होलियो मे एक अनूठापन है। इनके गीत सरल, स्पष्ट और मन पर सीधा प्रभाव डालने वाले होते हैं। गीत आकार में तो छोटे है किन्तु कुछ ही शब्दो मे अधिक भाव व्यक्त कर रस-परिपाक करके की क्षमता इन गीतो मे है। तुलसीरास जी ने एक स्थान पर प्रेम और कपट के विषय मे लिखा है—

जलु पय सरिप विकाइ,
देखहु प्रीति की रीति भलि,
बिलग होइ रसु जाइ,
कपट खटाई परत ही ।।

(प्रीति की सुन्दर रीति ऐसी होती है कि दूध मे पानी मिलकर दूध के ही भाव मे बिकने लगता है किन्तु कपट रूपी खटाई पड़ने से दूव फट जाता है और उसमे पानी अलग हो जाता है।) इससे सारा रस (आनन्द या स्वाद भी जाता रहता है।)

पतोला ने इमी बात को दूसरे ; ग से वडी सरल भाषा मे कहा है—

आमुलिया के पात पँ रे
द्वँ जन पौढ़े जाँयें,
फट्यो दिल ता दिना,
हो मेरे प्यारे
फट्यो दिलु ता दिना—
पालिग हू न समाने
करिकै प्रीति पछिताने ।

पतोला की होलियो ने जन-मानस का स्पर्श इसलिए भी किया क्योकि उन्होने जन समाज की अनेक अछूती समस्याओ को अपने गीतो मे भर लिया था। पत्नी के दुपट्टा माँगने पर किसान का न्त्तर पतोला के शब्दो मे कितना सरल और स्वाभाविक है—

फागुन मे पर्‌यो तुसार'
चैत मे उखटा !
काँ ते मँगाइ देऊँ दुपट्टा ?

शृंगार-प्रधान होली की एक झलक प्रस्तुत है—

कोठे पै ठाडी नारि,
झूमका सोने कौ।
जाए लग्यौ चाव गौने कौ॥

पतोला बहुधा तीन कडियो की ही होलियाँ बनाते थे। उनके बाद के शिष्यों ने लम्बी होलियाँ गायी किन्तु पतोला को तीन ही कड़ियो वाली होलियाँ प्रिय थी।

"डावरनैनी" नामक एक गीत ब्रज मे बहुत प्रसिद्ध है। यह गीत सावन मे स्त्रियाँ गाती है। पतोला ने डावरनैनी की मुख्य टेक लेकर कई गीत लिख डाले। इनमे विषय तो अलग-अलग है किन्तु टेक वही है। जैसे—

एक डावरनैनी यो कहै, मति खेलै बालम जूआ,
मोपै वरा रहै ना दूआ।
हाँ भरक गिरौं कै कूआ॥

एक डावरनैनी यो कहै, फागुन कौ लग्यौ महीना,
होरी खेलै वलमु नगीना।
रग मे भिजइ दयो जीना॥

पतोला ने एक 'मनहरवा' गीत भी लिखा है जो ब्रज के सावन के गीत 'मनिरा' जैसा ही है—

ए मनहरवा के छोहरा, मोहि हरी चुरी पँहैराइदे,
जा झोरी ऐ धरी उतारि कै, अव मेलु ते मेलु मिलाई दै।
मानो मानो वे मेरी वात, काहू विधि मन मेरो समझाइ दै॥

बुन्देलखण्डी लोक-गायक 'ईसुरी' की फागें भी आगरे मे बडी प्रसिद्ध हैं। फागुन के महिने मे खिली चाँदनी जब रसिको का मन और अधिक सरस कर देती है तो वे ईसुरी की फागें झूम-झूम कर गाने लगते हैं—

छूटे नैन-बान इन खोरन, तिरछी भौंह मरोरन।
वे गलियन जिन जाओ मुसाफिर, गजब परौ इन खोरन।
नोकदार वरछी से पैने चलत करेजे फोरन।
'ईसुर' हमनें तुमसे कै दई, घायल डरे करोरन।

## गनगौर

हमारे देश के प्रत्येक मास मे कोई-न-कोई विशेष पर्व या त्यौहार होता ही रहता है। त्यौहारो मे स्त्रियो का बाहुल्य है। गनगौर भी ऐसा ही एक त्यौहार है।

हमारा नववर्ष चैत मास से आरम्भ होता है। अत. इसे नव वर्ष पर्व भी कह सकते है। हमारे प्राचीन साहित्य मे पार्वती के शिव-वरण के लिये कठोर तपस्या करने का उल्लेख है, जिसे आदर्श मानकर कन्या धन, वैभव आदि की इच्छा न कर, उत्तम पति और उसके उत्तम परिवार की प्राप्ति की कामना करती है तथा अमर सौभाग्य के लिये पुष्पो तथा दूर्वा आदि से सुसज्जित गौरी की पूजा करती है। पूजन के अवसर पर विविध कार्यक्रम के साथ-साथ तत्सम्बन्धी गीत भी गाती है। इन गीतो मे शिव-गौरी का वर्णन विशेष रूप से रहता है। शृंगार-रस से ओत-प्रोत एक गीत है—

भौंरे रग-रगीले क्यारी गुन-गुन गामे।
संकर जी की जुटा-जूट में फूल-फूल मुस्कामे॥
गौरा फिर-फिर सोभा निरखै रंग भरी अँखियन ते।
सकर जी सौ बोल न पावै घिरी भई सखियन ते॥

ऐसे अवसर पर नारी-हृदय की चचल कामनाये उनके कोकिल कठ से फूट पड़ती है—

ज्यौ बदरा मे सुन्दर लागे चम-चम करतौ तारौ।
त्यौ सझाकूँ भावै मोहे मेरो प्रीतम प्यारौ॥
ओरे रसिया तोसै कैसे रूठूँ नई उमरिया।
तो पै रीझूँ वलि-बलि जाऊँ परिकै एक सिजरिया॥

पत्नी अपने पति से गनगौर खेलने की अनुमति माँगती है—

खेलन देउ गनगौर पिया, मोहे खेलन देउ गनगौर,
सखिया देखे बाट पिया, मोहे खेलन देउ गनगौर।

पति अनुमति क्यो नही देगा? वह ऐसे प्रेमाग्रह को अस्वीकार कैसे कर सकता है? और उसे यह भी तो विदित है कि गनगौर की पूजा उसकी पत्नी उसी के लिये कर रही है। वह कहता है—

पूजि लेउ गनगौर सजनिया, पूजि लेउ गनगौर।
जौ लगि पूजै बाट निहारूँ मैं भीतर चौवारे।
पूजा करिकै अइयो सजनी, खोलै रखूँ किवारे॥
तेरौ रूप निहारूँ निस-दिन, तोसी कोऊ न और,
सजनिया पूजि लेउ गनगौर।

गनगौर-पर्व होली-दहन के ठीक १८ दिन उपरात चैत्र शुक्ला तृतीया को मनाया जाता है। वैसे होली-दहन के दूसरे ही दिन से गौरी-पूजा का उपकल्पन आरम्भ हो जाता है और उसी दिन से ऐसे घरो मे, जहाँ हाल ही किसी वालिका का

विवाह हुआ हो, मृत्तिका या कष्ट निर्मित ईशर और उसकी पत्नी गौर की प्रतिमाओं की स्थापना की जाती है और इसी से सम्बन्धित अन्य छोटे-मोटे कार्यक्रम प्रति दिन चलते रहते हैं।

शीतला अष्टमी के दिन किसी जलाशय से मिट्टी लाकर उसकी गौर बनाई जाती है। इसी दिन से कोमल किशोरियाँ और नवौढा युवतियाँ नवीन-नवीन पुष्पो के लच्छो आदि सहित जलाशय से गृह-निवास की ओर गलियो मे होकर जाती है। मिट्टी के छोटे से कुडे मे गेहूँ या जौ बोने के रूप मे मानो नारी के हाथो फसल की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। उसे नित्य सींचती हुई आरती और पूजन के साथ वे उसकी उपासना करती है। इसका सौन्दर्य गाँवो मे अधिक देखने को मिलता है—

हरियर भये जवारे गेहूँ लहलह मन सरसावै।
डलिया ते ढँकि दये जवारे द्वै दिन मे पियारने।
सिर पै धरि कै चली सखी सब जिन जोवन गदराने॥
गोरी मन ही मन मुसकावै।
गेहूँ लहलह मन सरसावै॥

सुन्दरियाँ नाचती-गाती, हँसती-खिलती गौरी के द्वार पर पहुँचती हैं और गौरी से द्वार खोलने की प्रार्थना करती हैं—

मैया री गनगौर दरस दै हमकूँ खोल किवाडे,
बाहर तेरे द्वार खड़ी हैं पूजन-हारी।
मात सुन अरज हमारी॥

गौरी माता कन्याओ के बाल-सुलभ आग्रह और श्रद्धा-भाव से पसीजती है। द्वार खुलता है, गौरी का पूजन होता है और फिर वर-याचना होती है। चैत्र शुक्ला तृतीया तक नित्य ऐसा ही कार्यक्रम चलता रहता है और इस दिन पूजा उपकल्प समाप्त करने के पश्चात अन्य साज-बाज के साथ जलाशय तक गौरी और उसके पति ईशर का आकर्षक जलूस निकाला जाता है।

आगरा मे गनगौर का उत्सव अनेक वर्षो से मनया जा रहा है। यहाँ के उत्सव और राजस्थान के उत्सव मे समता और भिन्नता दोनो ही है। राजस्थान मे यह उत्सव बडा रगीला माना जाता है। वहाँ "गणगौर" का पर्व कोने-कोने मे बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। आगरा राजस्थान से लगा हुआ है और अनेक राजस्थानी लोग यहाँ आकर बस गये है अत. यहाँ के उत्सवो पर राजस्थानी सस्कृति और अनुष्ठानो का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। आगरा मे मोतीकटरा नामक मोहल्ले मे गनगौर का मेला बड़ा प्रसिद्ध है। इस दिन यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है और गनगौर की झाँकी निकलती है।

इस त्यौहार को मनाने की पृष्ठ भूमि में जहाँ शिव-पार्वती की कथा है वहाँ एक राजस्थानी कथा और है। राजस्थान मे एक प्रचलित किवदन्ती है कि "गणगौर" उदयपुर के राणा वीरमदास की पुत्री थी। वह बहुत ही सुन्दर थी। राजस्थान का प्रत्येक राव, रईस,राजा इससे विवाह करना चाहता था किन्तु राणा ने इसकी लग्न बूँदी नरेश ईसरसिंह के यहाँ भेजी। जब यह बात अन्य राजाओ को विदित हुई तो वे बड़े क्रुद्ध हुए। प्रत्येक राजा गणगौर को प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। इन राजाओं के प्रयासो का पता लगने पर ईसर सिंह रातो-रात उदयपुर आये और रात्रि मे ही वे राजमहलों से राज-कन्या को भगा कर ले गये। अन्य राजा सूचना पाकर इनके पीछे दौड़े। मार्ग मे चम्बल नदी बहुत वेग से वह रही थी। ईसर सिंह ने अपना घोड़ा चम्बल मे छोड दिया। नदी तीव्र होने से ईसर सिंह गणगौर सहित नदी में डूब गये। कहते हैं कि तभी से गणगौर को सती मान कर उनकी स्मृति मे गौरी-पूजा का आयोजन प्रति वर्ष किया जाता है। कुछ भी हो "गणगौर" का राजस्थान में बहुत महत्व है, वे अमर सुहाग की दात्री मानी जाती हैं। विवाह मे भाँवरे डालने से पूर्व कन्या से "गणगौर" का पूजन कराया जाता है—

राईबर डोल रह्या तोरण पर ;
बनड़ी पूज रही गणगौर।

ग्रीष्म की प्रचडता के वाद मेघो का सुरमई दुकूल पहन कर आया सावन मास कितना सुहावना मन भावना होता है। सावन मे प्रकृति फिर से मुखरित हो उठती है। धरती हरी चूनरी ओढ़े नई वधू-सी प्रतीत होती है जिसे देखकर पशु-पक्षी तक आत्म विभोर हो उठते है तो फिर मनुष्य की कौन कहे। सावन के काले कजरारे अति प्यारे मेघ आकाश मे उमडने लगते है और धरती पर ठडी-ठडी बूँदे उनके हृदय को शाति पहुँचाती है। कोकिलाओ की भाति वहाँ ग्राम बालाए कूकने लगती है —

वदरा आयो मधुर सुहावनो एजी
कोई घटा उठी घनघोर।
काले काले बादल, बिजली चमके,
झींगुर मचावत शोर॥
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे,
वनमें नाचत मोर।

फिर क्या है! स्थान-स्थान पर झूले की बहार दृष्टि गोचर होती है। सखियां गा उठती हैं, '-नन्ही नन्ही बुँदियारे सावन का मेरा झूलना" तो कहीं।

सामन आयो अम्मा मेरी रांग लो जी,
एजी कोई आयी हरियाली तीज।

घर घर झूना झूनें कामिनी जी,
एजी कोई गावत गीत मल्हार।
झूला डार्यौ वीरन वाग मे सावन रह्यौ नियराय
रेसम डोरी है चमकनी पटरी रतन जडाउ
मेहदी तो लइयौ राचनी जैपुर चुदरी उडाउ
चदन पटरी पै वैठि के झोटा देउ लगाय
सव सखियन के वीच मे गाऊ गीत मल्हार

पति या प्रेमी का परदेस जाना किसे अच्छा लगेगा ? हर ऋतु मे कोई न कोई वहाना वना कर वह प्रेमिका अपने प्रियतम को रोकना चाहती है । प्रियतम को कृष्ण रूप मे देखती हुई वह उससे कहती है—

वरसत मे कोई घर ते न निकसे तुमही अनोखे विदेस जवैया
नदजी के लाल वलदाऊ के भैया
घर रहो मेरे स्वामी लेत वलइयाँ। वरसत मे—
सावन मे मेरे स्वामी परे है हिंडोरे भादो वैरिन चमकै विजरिया
कुआर मे मेरे स्वामी पितर सोमेगे कातिक जरौ दीप दिवरिया
अगहन जाडे के कपडे मिलवइयौ पूस मे मेरे स्वामी छिडकौ खिचरिया
माह वसत मे पहनौ वसती फागुन होरी मे रग पिचकरिया
चैत मास मे फुलैं फुलवारी वैसाख व्याहौ वेटा विटरिया
जेठ मास स्वामी लूह चलत है असाढ छइयो अटा अटरिया

श्रावण के महीने मे अनेक त्यौहार मनाए जाते है जिनमे उल्लेखनीय भैया-पांचे, हरियाली मावस, नाग पचमी, सती पूजा, झूलना चतुर्दशी और रक्षावन्धन —सलूनो है। रक्षा वन्धन का त्यौहार केवल राखी ही वांधने के लिए नही वरन् और भी आनन्द प्रदान करने के लिए आता है। सलूनो व्रज मे वूरा खाने का त्यौहार है जिस दिन पति अपनी पत्नी को लेने ससुराल जाता है । सलूनो को सोना-पूजन घर मे स्त्रियो द्वारा होता है। घरो में सेमई चावल पकाए जाते है। दरवाजे पर सोना या सरमन रखे जाते है। झूला झूलने का उत्सव होता है। व्रज मे यह श्रावण का महापर्व है और लोक-जीवन में विशेष उल्लास और समारोह के साथ मनाया जाता है। सावन भर गीतो मे वायुमण्डल गुजित रहता है भाई वहिन से सम्वन्धित तथा पति पत्नी क सुमधुर भावो मे भीगे गीत रिमझिम-रिमझिम वर्षा मे गाए जाते हैं।

किसी को ससुराल अच्छी लगती है, किसी को पीहर। ससुराल मे अनेक कष्ट और असुविधायें होने पर भी पति के प्रेम मे स्त्री सव कुछ भूल जाती है।

किन्तु जहाँ सास-सुसर द्वारा दुःख दिये जाने के साथ ही पति एक सौत भी लिए बैठा हो, वहाँ तो फिर दुःख ही दुःख होगा। ऐसी ही परिस्थितियाँ दिखाने वाला एक लोकगीत है। सावन मे यह गीत लड़किया झूला झूलते समय बहुत गाती हैं—

नन्ही-नन्ही बुँदियां रे, सावन का मेरा झूलना,
सावन का मेरा झूलना।
एक सुख पाया मैंने बाबुल के राज मे;
जी बाबुल के राज मे,
बाग हिंडोला रे झूले पै मेरा झूलना,
झूले पै मेरा झूलना। नन्ही;
एक सुख पाया मैंने अम्मा के राज मे,
जी अम्मा के राज मे,
सग सहेली रे, गुडियो से मेरा खेलना,
गुडियो से मेरा खेलना। नन्ही,
एक सुख पाया मैंने भैया के राज मे,
जी भैया के राज मे;
गोद भतीजा रे, गलियो मे मेरा घूमना,
गलियो मे मेरा घूमना। नन्ही;
एक दुख पाया मैंने सासुल के राज मे,
जी सासुल के राज मे;
रोज सवेरे रे, चकिया का मेरा पीसना,
चकिया का मेरा पीसना। नन्ही,
एक दुःख पाया मैंने सैया के राज मे,
जी सैया के राज मे;
सग सौतनिया रे, कर्मो को मेरा झीकना,
कर्मो को मेरा झीखना। नन्ही,

इस गीत के मुखडे को कही-कही "छोटी-वड़ी सुइयां रे, जाली का मेरा काढना" भी कहा जाता है। अन्य सब पक्तियाँ उपर्युक्त ही रहती हैं।

श्रावणी तीज सद्य-विवाहिता नव-वधुओं का उल्लास-पर्व है। हिन्दू धर्म-शास्त्र के अनुसार श्रावण शुक्ला तृतीया को महिलाओ के लिए गौरी के व्रत का विधान है। यह मान्यता है कि श्रावणी तीज का व्रत विवाहित महिलाओ को अखड सौभाग्य का फल देता है।

व्रज मण्डल मे श्रावणी तीज के अवसर पर एक अनोखा ही रग आ जाता है। श्रावणी तीज आने से पूर्व ही उमंग से भरी नव-वधुएँ घरो की मुंडेरो पर चढ़कर

वावुल के घर की दिशा ताकने लगती है। उनका मन कहता है कि पीहर का बुलावा आने को ही होगा। वावुल का भेजा मेरा भैया मुझे लेने आता ही होगा। श्रावण के आगमन के साथ ही वहिन की समस्त कल्पनाएँ और कामनाएँ भाई के आगमन के साथ वँधी रहती है। तभी तो व्रज के लोकगीतो मे वहिने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने मनोभाव व्यक्त कर भाई के आगमन की प्रतीक्षा करती है। वे अपनी माँ को सम्वोधित कर कहती है—

आयी-आयी सावन की तीज हिंडोले पडे वागन मे।
मेरा पहला ही सावन रे, अम्मा न छोड़ सासुरे,
वडे भैया को जल्दी से भेज, पडी हूँ वाके आसरे,
हल्की-हल्की पड़ै री फुहार, फुरैरी उठै तन-मन मे।
आयी-आयी सावन की तीज, हिंडोले पडे वागन मे॥
मेरे भैया की है ससुराल हमारे मारग मे,
रहे सावन के दिन चार हँसाई होगी सव जग मे,
जावै सावन न सारा बीत वीर के आमन मे।
आयी-आयी सावन की तीज, हिंडोले पडे वागन मे॥

हरियाली तीज पर ससुराल मे रहने वाली लडकी वड़ी दुखी है। वह सास-ननद के व्यवहार से दु खी होकर अपनी एक सखी से रो रोकर कह रही है—

सामन आयौ सुघड सुहावनो जी, एजी कोई आई है हरियाली तीज॥ सामन॥
घर-घर झूला झूले कामिनी जी, एजी कोई पहर-पहर कै चीज॥ सा०॥
इन्दर के झर भैना मेरी लगि रहे जी, एजी कोई सव सखियाँ रही भीज॥
नौलख वगिया भैना मेरी सव गई जी, एजी कोई मेरौऊ मन रह्यौ रीझ॥
सास से चुगली खाई ननद ने जी, एजी कोई वोए कपट के वीज॥

ससुराल मे अधिक दिनो तक रहती हुई वहिन अपने भाई से प्रार्थना करती है कि मुझे इस वार सावन मे तो अवश्य ही वुला लेना। यदि नही वुलाया तो मैं जहर खा कर मर जाऊँगी—

अव कै वुलवायलै भैया भैन को जी, ऐजी कोई झूला है झुलाय
भीत दिना तौ भइया मोकूँ हे गए जी, एजी कोई चौ तू मोहे तरसाय
सास-ननद तौ मारे ताइने जी, ऐजी कोई जीय रह्यौ है घवराय
जो नहि आये भइया मोकूँ लेन को जी, एजी कोई मरूँगी जहर-विस खाय
धीर वँधावौ भइया आइकै जी, ऐजी कोई पीहर लै वुलवाय

भाई-वहिन का स्नेह-सम्वन्धी आगरा का एक लोक-गीत पूर्वी उत्तर-प्रदेश तक प्रचलित है। इस गीत मे वहिन की परवशता का चित्रण है। भाई वहिन की ससुरा ?

आता है। वह अपने साथ भेंट में कोई वस्तु नहीं लाता अत: उसका कोई आदर-सत्कार नहीं होता। वह घर लौटकर जाता है और पकवान-मिठाई तथा भेंट की वस्तुएँ लेकर आता है तब उसका स्वागत होता है।

हरो हरो गुवरा पीअरी है माटी,
रनाओं ने महल लीपाओ।
महलन ऊपर कागा जो बोलै, कागा के वचन सुहाउने॥
उड़ौ न कागा तुम्है दिहैं धागा,
सोनन्ना मढ़ईयौ तोरी चोंच।
जो रे वीरन घर आवैरे रूपा मढइयौं तोरी पाँख॥
कागा विचारे जनौं न पाये वीरन ठाढ़े हैं दुआर।
वीरन आये कुछ न लाये सासु ननद मन रूठी॥
जेठानी नीसो दिन बोला रे बोले बीर मोर चले है रिसाय।
हाथन मेंहदी पायेन जेहरी कैसे मनामैं राजा वीर॥
सासु ननदिया पैंइओ तोरी लागौं,
तुमहीं मनावो राजा वीर।
हाथ की मेंहदी धोई तुम डारो पायेन डारो उतार
झपट मनावो राजा वीर॥
घोड़न की वाघा पकरे वेटी जो रोमैं,
वीर मोरे धूपे नेवारो।
धूप नेवारौ वहिनी वाग़ा वगीचा, और ददुली केरे देस॥
ऊचे चढ़ि चढ़ि माया जो हैरे अवत वहिन औ भाय।
छूछे डोलाआ छूछे कहरवा, टूटे पूत घर आमै॥
वैठो न पूत मोरे लाले पलिंग पर, कहो वहिन केरी वात।
वहिनी के रोवे में छतीआ फटत है, वरसत वड़े-वड़े मेघ॥
कैसे उपजे पूत सूपूत वहिनी रोवत कैसे छाड़ी।
करो न माया मोरी पूरीआ कचोरीआ,
वहिनी चलन हम जान॥
करो न भौजी मोरी डबीआ पोटरिया, वहिनी चलन हम जान।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि वहिनी जो हेरैं, आवत वीर हमार॥

वीर आये चीर लाये, सासु ननद हँसि बोली।
सानु को हरो ननद को पीअरो, हम का दखिन केरो चीर ॥
मैलो कुचैलो छोरो न वहिनी, पहिरो दखिन वाली चीर।
ऊँचे पलिग पर जनि बैठो वीर, पूछो न सजन हमार ॥
पठवी न सजन वहिनी हमारी, समान रहे दिन चार।
सामन सब बेटी भूला जो भूलें, भादो गरुये गम्भीर ॥
[1]कुआँ सबै वेटी [2]नेवरता जो खेलें कातिक गौरी सेरामैं।
अगहन सबै वेटी गौने जो जहियें, तब हम वहिन पठामैं ॥

तीज पर लड़की अपने माँ-बाप के यहाँ है। उसका पति सोहगी लेकर आया है। विवाह का प्रथम सावन लडकी पीहर मे ही मनाती है और पति अपने साले-सालियो के लिये वस्त्राभूषण तथा खिलौने आदि लेकर आता है। इसे 'सोहगी' कहते हैं। इसी सोहगी का उल्लेख निम्नलिखित गीत मे हुआ है—

अरी वहना तीजन कौ त्यौहार वालम तौ लामे सोहगी।
तीहर तौ लामे माकौ रेशमी ॥
अरी वहना जम्फल पै अजव वहार। वालम०
साड़ी तौ लामे असल वनारसी।
अरी मेरी वहना चूँदर असल किनार। वालम०
झाँझन तौ लामे मोकूँ वाजने री।
अरी मेरी वहना जोसन रौनकदार ॥ वालम०
लामे खिलौना मोकू काठ के जी।
अरी मेरी वहना गुड़िया तौ लामे रङ्गदार। वालम०
सारे को लामे वहना धोवती जी।
अरी मेरी वहना सारी को चूडी नगदार। वालम०

## चँदना की मल्हार—

आगरे में "चँदना की मल्हार" वहुत प्रसिद्ध है। चँदना नाम की एक भ्रष्ट चरित्र वाली युवती की कथा इस मल्हार मे कही जाती है। चँदना अपने पीहर मे ही

---

१. कुआर २. नवरात्रि

अधिक रहती थी, ससुराल कम जाती थी। वह पीहर के समला नामक एक सुनार अनुचित सम्बन्ध जोड़े थी। चँदना की माँ ने चँदना को ससुराल भेजने का निश्चय किया। यह कथा "चँदना की मल्हार" मे निम्नलिखित प्रकार से कही गयी है—

तीजन चरचा एरी चँदना चल रही जी
एजी कोई पड़ौं है सहर में सोर, सिर वदनामी चँदना क्यो लई जी ?
राजा ते रानी एरी चँदना यों कहै जी,
एजी कोई सुन राजा मेरी वात
चिठिया तौ भेजौ चँदना के सुसर को जी ।
धौरे पै कारौ लालाजी ने लिख दियो जी,
एजी कोई दिया है साँड़िया के हाथ
चिठिया तौ दीजो चँदना के सासुरे जी ।
चिठिया तौ लै कै धामन चल दयौ जी,
एजी जाकूँ चलत न लगी अवार
चाँद उगायौ चँदना के सासुरे जी ।
जुरी है कचहरी चँदना के सुसर की जी,
एजी कोई जुरौ है सकल दरवार
चिठिया तौ लै ली साँड़ियाँ के हाथ ते जी ।
चिठिया तौ देखत लालाजी खुस भये जी,
एजी कोई वाँचत भए दिलगीर
तरके तौ जायेगे अम्मा मेरी सासुरे जी ।
वड़े घरन के लालाजी आप हो जी,
एजी कोई वड़े घरन की धीय
लोग हँसाई कुमर जी मत करौ जी ।
पाँचौ लाइदै अम्मा मेरी कपड़े जी,
एजी कोई पाँचों री लाइदे हथियार
करके जाँइगे अम्मा मेरी सासुरे जी ।
जल्दी पहरे लालाजी ने कापड़े जी,
एजी कोई धमक भये असवार
जल्दी से पहुँचे कुमर जी सासुरे जी ।

डेरा तौ दीने चाँदनी चौक मे जी,
एजी कोई जियरा रह्यौ मुरझाय
गम के फफोले कुमर जी के पड रहे जी।
चौकी–चन्दन लालाजी को वैठना जी,
एजी कोई दूध पखाउँगी पाँय
आज जमाई आए पाहुने जी।
चामर राघे लालाजी को ऊजरे जी,
एजी कोई मूँग की धोवा दार
आज जमाई आये पाहुने जी।
चामर लागे अम्मा मेरी किसकिसे जी,
एजी कोई दार मे आवै दुरगन्ध
पुरियाँ कराओ अम्मा मेरी लुचलुची जी।
वीझापुर कौ लालाजी को वीजना जी,
एजी कोई मथुरा जी कौ थार
जैमत निरखे लालाजी की आँगुरी जी।
जैम–जूठ के लालाजी रम रहे जी,
एजी कोई पौढन ठौर वताय
चलके तौ आये अम्मा मेरी दूर से जी।
ऊँची अटारी लालाजी ईट की जी,
एजी कोई दिवल वरे सारी रात
नौरंग पलिका कुमर जी को विछ रह्यौ जी।
चढ़ते दूखै अम्मा मेरी पीडरी जी,
एजी कोई हम पै चलो न जाय
डार खटोला अँगना मे पड़ रहे जी।
आधी सी रात पै चँदना उठ चली जी,
एजी कोई कर सोरह सिंगार
जाय जगायौ समला सुनार को जी।
झटपट रग लिये लालाजी ने कापड़े जी,
एजी कोई घर जोगी कौ भेस

अलख जगायौ समला सुनार के जी।
मोती तौ मूँगा चँदना लै चली जी,
एजी कोई लै जोगी के भीक
घर अपने को जोगी के जाइयो जी।
मोती मूँगा पन्ना बहुधना जी,
एजी कोई और न चहिए चीज
हमकूँ तौ आशा नौलख हार की जी ।
हार उतार के चँदना ने दै दियौ जी,
एजी कोई ले जोगी के लाल
दुआ मनाऔ समला सुनार की जी।
बिलसनौ होय तौ सुनरा के बिलसियो जी,
एजी कोई अब सामन की बहार
तड़के तौ जायेंगे सुनरा के, सासुरे जी
मौज उड़ाई चँदना ने सेज पै जी,
एज तड़फन बीती सारी रात
तड़के तो होते चँदना चलि दई जी।
मिलना होय तो अम्मा मेरी मिल लेऊ जी,
एजी कोई फेर न मिलनो होय
अबके तौ बिछुड़े अम्मा मेरी कब मिलें जी।
मिलनो होय तो भावज मिल लेऊ जी,
एजी कोई मिल लेऊ भोंह सकोर
घूँघट रोवे भावज मन हँसै जी।
उछट-उछट कै चँदना चल दई जी,
एजी कौई आये करील की छाँह
झाड बिछायौ कुमर जी नें साँतरौ जी।
घूँघट खोल के राजा जी देखते जी,
एजी कोई कहा रे गढायौ तेरे बाप
हमकौ आसा नौलख हार की जी।
हार निकार कै लालाजी ने दे दियौ जी,

एजी कोई ठाडे ते खाई है पछार
मार कटारी चँदना मर गई जी।

आगरे में "चन्द्रावलि का भूला" भी बड़ा प्रसिद्ध है। यह आल्हा-ऊदल के समय की गाथा है। आल्हा-ऊदल भाइयो को चदेले परमाल ने माहिल के कहने पर अपने महोवा-राज्य से निकाल दिया था। दोनो भाई कन्नौज मे जा कर रहने लगे। इधर सावन आने पर राज कुमारी चन्द्रावली नौलख बाग मे तीज के दिन भूला भूलने का आग्रह करने लगी। महोवा को आल्हा-ऊदल रहित देख कर दिल्ली का राजा पृथ्वीराज चौहान महोवे पर आक्रमण करने चल पडा। चन्द्रावली की माता ने उसे नौलख बाग मे जाने से रोका और कहा कि आल्हा-ऊदल भाइयो के न रहने से तेरी रक्षा होना कठिन है। चन्द्रावली नौलख बाग मे ही जा कर भूला भूलने का हठ करने लगी।

उधर आल्हा-ऊदल को स्वप्न हुआ कि उनकी बहिन पर सकट आने वाल है। वे तीन लाख सैनिक लेकर स्वय योगियो का वेश धारण कर महोवा आ गये। उन्होंने चन्द्रावली को नौलख बाग में ही भूला भुलवाया और चौहान को पीछे खदेड़ दिया। इसी गाथा के आधार पर चन्द्रावलि के भूले गाये जाते हैं। कुछ गीत निम्नलिखित हैं—चन्द्रावली नौलख बाग मे भूला भूलने का हठ करती है—

मेरी मइया मोर पपइया करें सोर भूलूँगी भूला बाग मे
संग सहेली बुलवाय दे, अरी मइया मो मन उठत हिलोर॥ भूलूँगी ·····
रिमझिम-रिमझिम झर लग रही, अरी मइया घटा तो उठी है घनघोर॥
भूलूँगी········
चम्पा चमेली फुली केतकी, अरी मइया ले रहे पवन झकोर।

सावन आने पर चन्द्रावली को अपने भाइयों (आल्हा-ऊदल) की याद आती है। वह अपनी मां से कहती है कि उसके भाइयो को सूचना पहुँचा दो—

सामन आयो मइया मन भावनो जी।
ऐजी रितु सुन्दर अगम अपार। सामन०।
झिगुरी झननन मइया मेरी झनकती जी।
ऐजी भूला पै मौज वहार। सामन०।
न्यारे २ भूला मइया मेरी परि गए जी।
ऐजी कोई गावें गीत मल्हार। सामन०।
हियरा हिलोरे मइया मेरी लै रह्यो जी।
ऐजी हम भूलें पांइ पसारे। सामन०।

विन ऊदल के मईया मन ना लगे जी।
ऐजी मेरौ कौन झुलावनहार। सामन०।
खवरि पठाइदे ऊदल मेरे वीर पै जी।
ऐजी उन बिन कौन हमारा। सामन०।

चन्द्रावली की माँ उसे बहुत समझाती है कि शत्रुओ ने घेरा डाल दिया है अतः नौलख बाग मे झूला झूलना उचित नही। वह महलो मे झूलने का अनुरोध करती है:—

मेरी वेटी वैरी बसत चहुँ और,
झूला तौ झूलौ महल मे
आला और ऊदल बेटी घर नही,
मेरी वेटी ब्रह्मा तौ वनौ है कठोर
मान कहन मेरा लाडली,
मेरी बेटी दिल्ली कौ राजा खाय रह्यौ जोर
एक उदयचन्द के बिना, मेरी बेटी दुस्मन किले कूँ डारै तोर
सग की सहेली फुलवाय लै,
मेरी वेटी घर की डराय लै रेसम डोर
हट की हटीली हट को छोण दै,
मेरी वेटी वैरी लगाय रहे टकटोर।
बेटी ते मैया बाकी यो कहे,
मेरी लाडो महलन मे झूलौ दिलबौर।

माँ।बेटी मे वाद-विवाद होता है। दोनो अपने-अपने हठ पर अड़ी हुईं है। चन्द्रावली कहती है—

अरी मइया झूलूँगी झूला मैं तो गेर, सखियन के सग वाग मे
बाग झुलाइ दै अब कै और तू, मेरी मइया तोते कहूँगी नही फेर।
सखियन ..............
सग पठाइदै ब्रह्मा भ्रात को, अरी मइया नाहक लगावै मोहै देर।
मेरौ दुखावै मती मन वृथा, अरी मइया कहि-कहि कै वेरम बेर।

उत्तर मे माँ कहती है:—

मेरी बेटी दुसमन ने महुबौ लियो घेर, झूलन मत जइयो बाग मे
नौलख दल चौहान के, मेरी बेटी नगी चमक रही समसेर
ऊदल हौतो गर आज को, मेरी वेटी मार लगाय देतौ ढेर
फूट-फजीयत घर मे है रही, मेरी पेटी छाय रह्यौ अन्धेर।

अन्त में माँ को बाध्य होकर चन्द्रावली को बाग में झूला झूलने भेजना पड़ता है। यहीं छद्मवेश में आकर आल्हा-ऊदल बाद में उसकी रक्षा करते हैं—

अरी बहना थर-थर काँपैं मेरौ गात हौले से झोटा दे मुझे
चम्पा-चमेली में मैं तो झूलती
अरी बहना झूलति सहेलिन साथ, हौले से ..... ....
रिमझिम-रिमझिम मेहा बरसता
अरी बहना चूँदर मेरी है भीजी जात, हौले से..........
दामन की लागन सबरी भीजती
अरी बहना चोली चुचाई मेरी जात
इतनी तौ सुनि के ऊदा यों कहे,
अरी बहना मेहा अजब रहे बरसात
नन्ही-नन्ही बुँदियाँ बहना पड़ रही
अरी बहना नन्ही-नन्ही बूँद चुचात
तीजें तो खेलो बहना रस भरी
अरी बहना तीजन की जुरी जगात
नींबू नारंगी खाओ रस भरी
अरी बहना रस भरे खाओ फल पात

झूले की बहार अनोखी है। बादल गरज रहा है, पानी बरस रहा है। सबके वस्त्र भीजे जा रहे हैं किन्तु झूला बन्द नहीं होता—

अरी बहना घटा उठी घनघोर, बिजली तो चमकै जोर से।
अम्बर लरजै घन बरसना, अरी बहना मोर मचावत सोर,
कौन की भीजै आली चूँदरी, अरी बहना कौन की भीजै सुई सोर।
चम्पा-चमेली की भीजै चूँदरी, अरी बहना नन्दो की भीजै सुई सोर ॥ बिजली
कोई-कोई कामिन ठाडी भीगती, अरी बहना कोई-कोई करत किसोर,
कोई-कोई तिरिया म्हों को गोवती, अरी बहना कोई-कोई है सरबोर,
नन्ही-नन्ही बुँदियन मेहा बरसने, अरी बहना सीतल पवन झकझोर,
कोई सहेली म्हों जायँ खड़ी, अरी बहना कोई तौ है रई सरबोर

झूला झूलने के बीच में ही चौहान के सैनिक बाग में घुस आते हैं। ऐसी परिस्थिति का वर्णन इस मल्हार में हुआ है—

अरी भैना थर-थर काँपै मेरो गात, डाँकू तौ आयौ बाग में
लखि-लखि सूरत सब कहवै लगी, अरी भैना भागी झूलायें उतार
दहसत न मानी सब भूप की, अरी भैना बसि आयौ है लबार

बाग जनाने कामिनि झूलती, अरी भैना है वो निपट गँवार
इकली जो बागन रह जाय कामिनी, अरी भैना वाकी ले लाज उतार
ये तौ न भूखो धन-माल को, अरी भैना नहैं तो घर मे वाके नार
कामिन तौ भागी चम्पा बाग से, अरी भैना रह गई राजकुमारि
सग मे सहेली ऊदा भाट की, अरी भैना नैनन से वहै जलधार
इकली तो रोवै मघ की लाडली, अरी भैना कोऊ न लेवै वाकी सार

## राखी (रक्षा-बन्धन)

रक्षा बन्धन हिन्दुओ का एक प्रधान त्यौहार है। रक्षा शब्द रक्ष धातु से बना है, "रक्षणं रक्षा", यह इसकी उत्पत्ति है। यह रक्षा-बन्धन श्रावण की पूर्णिमा के दिवस मनाया जाता है।

धर्म सिन्धु मे प्रत्येक पूर्णिमा को १ नारियल समुद्र मे चढाने का विधान है। श्रावणी पौर्णिमा का सबसे बडा त्यौहार रक्षा-बन्धन ही है। इस दिन ब्राह्मण मन्त्र पढ़ता हुआ अपने यजमान के दाहिने हाथ की कलाई पर सूत्र बाँधता है। यजमान ब्राह्मण को दक्षिणा देता है। इस सूत्र का उद्देश्य यजमान की रक्षा करना है, अत इसे रक्षा-बन्धन कहते हैं। इस त्यौहार के सम्बन्ध मे निम्न कथा प्रचलित है :—

एक बार श्रीकृष्ण से युधिष्ठर ने पूछा कि समस्त रोग और अनिष्टो के दूर होने का कोई ऐसा उपाय बतलाये जिसे वर्ष मे एक बार करने मात्र से वर्ष पर्यन्त रक्षा बनी रहे।

श्रीकृष्ण ने कहा—पाण्डुपुत्र ! मैं तुम्हे प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक बार इन्द्राणी ने इन्द्र की विजय कामना हेतु यह किया था। देवासुर सग्राम चलता ही रहता था, एक बार यह संग्राम अनवरत १२ वर्षो तक चला। विजय भी असुरो को प्राप्त हुई, तब इन्द्र बृहस्पति की सेवा मे पहुँचे और कहा कि असुरो के भय से भयभीत मेरा यहाँ रहना ठीक नही और न अब भाग ही सकता हूँ, अब तो लडना ही अनिवार्य है। इन्द्राणी दोनो के वार्तालाप को सुन रही थी। वह बोल उठी—देवराज ! आप निर्भय रहे मै ऐसा उपाय करती हूँ जिससे आपकी विजय सर्वथा निश्चित है।

प्रातःकाल ही श्रावणी पूर्णिमा थी—इन्द्राणी ने ब्राह्मणो को बुलवाकर स्वस्ति-वाचन करवाया एवं इन्द्र के हाथ मे पोटली-रक्षा बाँध दी। रक्षा बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने दैत्यों पर आक्रमण किया तथा पराजित भी किया।

राखी का त्यौहार आने पर पत्नी अपने पति से पीहर जाने की अनुमति माँगती है। उसे अपने भाई के राखी जो बाँधनी हैं। वहाँ उसकी बचपन की सखियाँ भी तो मिलेंगीं। वह सब सखियों के साथ मिलकर उत्सव मनायेगी। इन्हीं भावों का यह लोकगीत है--

आयौ राखी को त्यौहार, बलम मैं पीहर जाऊँगी।
भइया मोरा बाट तकै, भौजाई काग उड़ावै,
मइया को उमगाय जिया, भैना कूँ हिचकी आवै,
मोरी डुलिया करि देउ त्यार, बलम मैं पीहर जाऊँगी।।
संग सहेली मंगल गाँमें, लै पूजा के थार,
भैयन कें राखी बाँधें अरु दें आसीस हजार,
आजु जिन जइयों पल्ली पार, बलम मैं पीहर जाऊँगी।।

राखी का त्यौहार आने पर पत्नी अपने पति से पीहर जाने की अनुमति माँगती है। उसे अपने भाई के राखी जो बाँधनी है। वहाँ उसकी बचपन की सखियाँ भी तो मिलेंगी। वह सब सखियो के साथ मिलकर उत्सव मनायेगी। इन्ही भावों का यह लोकगीत है—

आयौ राखी को त्यौहार, वलम मैं पीहर जाऊँगी।
भइया मोरा बाट तकै, भौजाई काग उड़ावै,
मइया को उमगाय जिया, भैना कूँ हिचकी आवै,
मोरी डुलिया करि देउ त्यार, वलम मैं पीहर जाऊँगी॥
संग सहेली मगल गाँमें, लै पूजा के थार,
भैयन कैं राखी बाँधे अरु दै आसीस हजार,
आजु जिन जइयों पल्ली पार, बलम मैं पीहर जाऊँगी॥

## ४. लोकगीतों के विविध रूपों का विश्लेषण

( उनकी एकता और भेदो का विस्तृत अध्ययन तथा आलोचना )

लोकगीतो के क्षेत्र मे स्त्रियाँ पुरुषो से बहुत आगे है। गीत मानो उनके आभूषण ही बन गये है। उनके लगभग सभी कार्यों मे गीतो का प्रयोग होता है। पुरुष तो केवल कुछ विशेष अवसरो पर ही गाते-बजाते हैं, आल्हा, ढोला, होली आदि ही गाकर वे सतुष्ट हो लेते है किन्तु स्त्रियो के तो सारे कार्य ही गीत-मय होते है। यात्रा मेले, देवी की जात, विभिन्न सस्कारो, धान रोपने, खेत निराने, खेत गोड़ने-काटने और चक्की पीसने आदि के अवसरो पर स्त्रियाँ जो गीत गाती है उनमे उनके गृहस्थ-जीवन की झाँकी दिखाई देती रहती है। जैसे—

> काटै ते कटि जागी विपता थोरे दिन की पातरिया।
> तुम तौ सूखि छुआरी है गए, हम धन है गए लाकरिया॥

उधर दूसरी ओर पत्नी को गाँव का घर अब अच्छा नही लगता। वह बिजली के पखे के नीचे बैठना चाहती है। अपने पति से कहती है—

> पंखा बिजली को लगवाइदै भरतार,
> जब ही हो रहोगी जा घर मे॥

एक स्त्री अपने पति को अपने वश मे रखने के अनेक प्रयत्न करती दिखायी देती है। उसका पति इधर-उधर प्रेमालाप करता फिरता है किन्तु उसके पास नही आता। वह स्त्री उसे इधर-उधर जाने से रोकना चाहती है। उससे कहती है—

> बागन मे मत जाओ पिया घर बैठे ही बाग अनेक दिखाऊँ।
> एड़ी अनार सी चूय रही अरु चम्प कली डेढी बाँह नवाऊँ।
>
> छातिन पै रस के बिबला पट घूँघट खोलि कैं दाख चुगाऊँ।
> नैंक मलो मोरी राँगन को सब बागन की फुलवार दिखाऊँ॥
>
> व्याकुल काम सतावत मोहि पिया बिन नीक न लागै कोई।
> प्रीतम सो सपने भई भेंट भली विधि सो लपटाय कै सोई॥
>
> नैन उघारि पसारि कै देखो तो चौंकि पडी कतहूँ नहि कोई।
> एरी सखी दुख कासो कहो मुसकाय हँसी हो सकै फिर होई॥

एक पत्नी अपने प्रेमी पति पर सौ जान से न्यौछावर है। वह उसकी सेवा मे सब कुछ करने को सदैव तत्पर रहती है। ऐसी ही एक अनन्य प्रेमिका का चित्र इस अति प्रसिद्ध लोकगीत मे देखिये—

सैयाँ तोरी गोदी मे गेदा वन जाऊँगी।
जो मोरे सैयाँ को भूख लगेगी. जो मोरे०
लड्डू, कचौड़ी और जलेवी वन जाऊँगी। सैयाँ०
जो मोरे सैयाँ को प्यास लगेगी, जो मोरे०
सोने का लोटा, सुराही वन जाऊँगी। सैयाँ
जो मोरे सैयाँ को नींद लगेगी, जो मोरे०
गद्दे तकिया और रजाई वन जाऊँगी।

यह गीत अपनी सरसता एव सरलता के कारण समस्त उत्तर-प्रदेश, राजस्थान दिल्ली और विहार में लोकप्रिय हो गया है। इसके शब्दो के उच्चारण में प्राँतीयता का प्रभाव अवश्य आ जाता है किन्तु इसका मूल रूप खड़ी वोली का ही प्रतीत होता है।

नायिका रूप-गर्विता होने के साथ ही अपने धन और ऐश्वर्य पर भी गर्व करती है। अपने प्रेमी की छेड़-छाड़ पर वह उसे धमकाती हुई कहती है—

मैं राजा-रानी की वेटी, कहो जुरमाना कराय दऊँगी
पक्की डगर मे काँकर विछा दूँ, वापै चलाऊँ मोटर गाड़ी।
खवर दिल्ली ते मँगाय दऊँगी।
वाग लगाऊँ, वगीचा लगाऊँ, वामे वसाऊँ कोयलिया जी।।
कुहू कू वोली सुनाय दऊँगी।

किन्तु इस तर्जन में उसका निमत्रण भी छिपा हुआ है।

यौवन के साथ सौन्दर्य का भी होना वड़ी विपम परिस्थिति ला देता है। सभी ओर से सभी लोग उसे लालच भरी दृष्टि से देखते हैं। ऐसी ही एक सुन्दर नव-यौवना का चित्रण इस गीत मे हुआ है—

मोरे गोरे वदन पै सिग ललचे। टेक—
वागन मे जाऊँ तो माली ललच गयो
जाऊँ डगर मे तो लोग ललचे।
मोरे गोरे······
अँगना चलूँ तो ललचे देवरवा
पौरी मे जाऊँ तो जेठ ललचे
मोरे गोरे·······

कोठे पै जाऊँ तो ननदोई ललचे
सेजरिया पै मोरा बलम ललचे
मोरे गोरे ...... ......

ससुराल के दुःख सर्व विदित है। पति का प्यार ही तो सब कुछ नही होता। ससुराल के अन्य लोगों का व्यवहार, वहाँ का रहन-सहन आदि भी तो अच्छा होना चाहिये। एक वधू तभी तो ससुराल की अपेक्षा अपने पीहर को पसद करती है। वहाँ उसे सुख और स्वतन्त्रता जो है —

मैं तो पीहर मे गाऊँ मल्हार, ससुर कै ना जाऊँ
मोरे ससुर के जौ की है रोटी, पीहर मे पूरी हजार
ससुर कै ना जाऊँ
मोरे ससुर के कपडा पुराने, पीहर मे सोलह सिंगार
ससुर कै ना जाऊँ
मोरे ससुर के टूटी खटुलिया, पीहर मे सेजे तयार
ससुर कै ना जाऊँ

गाँवो मे शहरी प्रभाव धीरे-धीरे आने लगा है। लहँगा पहिनने के स्थान पर अब धोती पहिनना अच्छा और सुविधाजनक माना जाता है। एक स्त्री अपने पति से कहती है कि लँहगे में गर्मी लगती है, मेरे लिये धोती ले आओ। उसका पति चरित्र हीन है उसकी ओर ध्यान नही देता—

लँहगा में गरमी लगै बलम मोय लादै धोवती
गरमी के मारे घबराऊँ
जा लँहगा मे आग लगाऊँ
कैसी करूँ कहाँ कूँ जाऊँ
सरम न आवै तोय रात कूँ यो ही सोवती ?
धंधो करो कहाँ घर आवै
कै वाऊ रडी कै जावै
कै लोडन कूँ माल खवावै
तेरे सामने रोज रोमने जेई रोवती
बडे जोर की आई गरमी
धोती लावत नांय अधरमी
ऐसी मर लई बेसरमी
काम करूँ घर मे बाहर को मान न होवती

बालम मेरौ बड़ौ निखट्टू
पर नारिन पै है रयौ लट्टू
मोय दिखावै रोज सिगट्टू

सब सुख मिलतो मोय जो नीके के ढिग होवती

अपने रूप और यौवन को दिखाकर गर्व करने की आकाक्षा अनेक युवतियो की होती है। एक स्त्री मोटे कपडे छोड कर मलमल का दुपट्टा ओढने की इच्छा करती हुई अपने पति से आग्रह करती है कि पडौसिनो की भाँति उसे भी नये फैशन के वस्त्राभूपण चाहिये—

मेरे घूँघटवा मे चमकें दोऊ नैन दुपट्टा लइयो मलमल कौ।
मोटी धोती पहरि-पहरि कै मैं तौ अब नकमानी हूँ।
कपडा कौ मह्गौ सुन बालम मैं भारी हरखानी हूँ॥
एजी मोटी धोती ते परै न अब चैन। दुपट्टा०
चुनिया की चाची नै चोली चार-चार बनवाई है
जालिम की भावी ने साड़ी रेसम की मँगवाई है
एजी मैने साँचे ही कहे है मुख ते वन। दुपट्टा०।

पार-पड़ौसिन मोकूँ सैयाँ रोज-रोज सरमावै है।
चटक-मटक ते पहिरे कपड़ा नये-नये दिखरावै है।
एजी मोकूँ चिन्ता रहति दिन रैन। दुपट्टा०

उसे बढिया तेल, कघी और वस्त्र चाहिये। अपना शृगार कर वह अपने प्रियतम से लिपट जाने की इच्छा करती है—

कँघी लै अइयो बड़िया की फूलनदार
सजन मोरी लट उरझी।
तेल है गयौ मह्गौ बाते खूब मूड मे डारी है
वढि कै बार है गये लम्बे बिन ककई न गुजारी है
एजी गुस्सा मन मे मत लइयो भरतार। सजन०।
सुन्दर कपडा पहिन बलम तब पास तिहारे आऊँगी
सेवा करूँ तिहारी सब विधि लिपट कठ ते जाऊँगी
एजी पलिका छज्जे पै बिछाऊँ गद्देदार।

किन्तु प्रत्येक पति अपनी पत्नी की इच्छा पूरी नहीं करता। किसान की स्त्री अनाज मँहगा होने पर सुखी होती है और सस्ता होने पर दुखी। निम्नलिखित गीत में एक किसान स्त्री का अपने पति के विरुद्ध एक सखी से कथन है—

ऐरन काहे के बनवाऊँ मेरी भैन
सैंयाँ तौ मेरो निरमोही ।

परसों मैंने कही बेचि देउ सरसों ऐरन बनवाऊँ
बिन ऐरन के मैं सखियन में जाकैं वालम सरमाऊँ
ऐजी मेरी एकऊ न मानी उननें कैन । सैंयाँ ०।

गुस्सा में भरि गए ठरगजी कहिके मैं तौ फटकारी
वैठी बात बनावै कैसी मिची आँख तेरी प्यारी
इतनी कहिकेऊ पीछे तें दीनी टैंन । सैं० ।

सोनो की तौ कहा चली चाँदी केहू ना बनवाए
कपड़ा तकऊ मोकूँ भैना गौने पै ते ना लाए
मैं तो कहि-कहि हारी दिन-रैन । सैं० ।

अब तौं मद्दौ भयौ नाज कौ मुस्किल भारी अटकी है
ऐरन की का कहैं नाव भोजन की अधवर लटकी है
अब कें खतरा में परी जीवन की लैन । सैं० ।

सास-ननद के लिये अच्छे वस्त्राभूषण आते हैं और बहू के लिये साधारण तो बहू का अप्रसन्न होना स्वाभाविक ही है । हर बात में बहू को हीन बनाया जाता है । ऐसी ही एक बहू की मनोदशा का वर्णन इस गीत में है—

मेरा जीया जल क्यों न जाय-सैंया लै आए कचौड़ियाँ
सास कूँ लाए लड्डू ननद कूँ लाए पेड़ा हमकूँ लै आए कचौड़ियाँ
मेरौ जीया जल क्यों न जाय
सास ने खाए लड्डू ननद ने खाये पेड़ा
छींके पें रखी कचौड़ियाँ, मेरा जीया—
सास कूँ लाए साड़ी ननद कूँ लाए लहँगा
हमकूँ लै आए चुँदरिया, मेरा जीया
सास ने पहनी साड़ी, ननद ने पहना लहँगा
खूँटी पै टंग रही चुँदरिया, मेरो जीया—
सास के भई है छोरी ननद के भयौ छोरा
हमारें भई है वंदरिया मेरो जीया जल क्यों न जाय
सास की मर गई छोरी ननद को मर गयौ छोरा
छज्जे पै नाच डोलै बंदरिया । मेरौ जीया ।

सास-ननद के दुर्व्यवहार से बहू के मन मे उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है। बहू को फैशन करने की धुन चढ गई है। वह अपने पति से कहती है कि मेरे लिये तो मोटरकार लाओ। इस मोटरकार के लिए चाहे सास ससुर को ही क्यो न बेचना पड़े। उसे मोटर चलाने वाला बहुत अच्छा लगता है। वह कुछ भी व्यय कर मोटर कार में बैठने को उतावली है—

चाहे सास बिकै, चाहे ससुर बिकै,
चाहे बिक जाए ननद कौ चीर, बैठुँगी मोटर कार मे।
मोटर जाकी रग-बिरगी, जाके पहिया लाल गुलाल
मोटर वारो छैल-छबीलो, जा मे बठी श्यामल नार
चाहे जेठ बिकै, चाहे जिठानी बिकै
चाहे बिक जाय हरौ रूमाल, बैठुँगी मोटर कार मे।

एक दूसरी नायिका केवल हरा रूमाल बेचकर ही मोटर कार मे बैठना चाहती है। उसके पास सबसे मूल्यवाने वस्तु सभवत: हरा रूमाल है। वह समझती है कि मोटर का मूल्य भी इतना ही होगा। वह सुन्दरी और नव यौवना है। उसने शृंगार भी किया है। ऐसी स्थिति मे मोटर कार मे बैठना आवश्यक ही प्रतीत होता है। तभी तो वह कहती है—

चहे बिक जाय हरो रूमाल, बैठोगी मोटर कार मे।
मोटर जाकी रंग विरगी, कोई पहिया लगि रहे चार ॥
बैठोगी मोटर कार में ॥
पहिया जाको थर थर काँपे कोई मत छेड़े भरतार।
हाकन हारो छैल छबीलो, कोई बैठन हारी नारि।
बारी उमरिया पतरी कमरिया नथुनी झलुकेदार।
वैठोगी.............
आम पके महुआ गदराने, कोई जोवन पके अनार
आरे बलमा मस्त जुबनवा, कोई ज्वानी मे सरकार
वैठोगी...............

कुछ स्त्रियो को काला पति अच्छा नही लगता। उन्हे गोरा पति पसन्द आता है। काले व्यक्ति की दी हुई कोई वस्तु भी उन्हे अच्छी नही लगती। एक स्त्री काले और गोरे की तुलना करती हुई अपनी सखी से कहती है—

तुम्हारी कसम काला बलम नहि भाए।
तुम्हारी कसम गोरे पै जीया ललचाए ॥
तुम्हारी कसम काले ने मिठाई भिजवाई।

तुम्हारी कसम देखत उबकाई आई,
तुम्हारी कसम गोरे ने मिठाई भिजवाई,
तुम्हारी कसम दोनो ने लपलप खाई ।
तुम्हारी कसम काला······
तुम्हारी कसम काले ने साडी भिजवाई,
तुम्हारी कसम पोछन के काम न आई,
तुम्हारी कसम गोरे ने साडी भिजवाई,
तुम्हारी कसम देखत नीयत ललचाई ।
तुम्हारी कसम ·······
तुम्हारी कसम काले के हुए दो लडके,
तुम्हारी कसम मगल सनीचर चले आये,
तुम्हारी कसम गोरे के हुए दो लडके,
तुम्हारी कसम चन्दा सूरज चले आए ।
तुम्हारी कसम काला बलम नहिं भाए ।।

पत्नी गोरी और पति काला है । अपनी ननद से वह इस बात को कहती है । वह चाहती है कि किसी प्रकार इस काले पति से उसका पिण्ड छूटे । वह अनेक प्रयास करती है किन्तु काला पति उससे अलग नही होता । अन्त मे वो उसे एक कोठरी मे बन्द कर देती है । बारह बरस बाद खोलकर देखती है तो वह गोरा होकर निकलता है । यह एक जादू सा प्रतीत होता है किन्तु वास्तविकता यह है कि जैसे-जैसे समय बीतता है पत्नी को काला पति अच्छा लगने लगता है यही भाव इस गीत मे है—

मैं सोने का तारा ननदिया, मैं रेशम का लच्छा ननदिया
मेरे ससुर के पांच ये लडके, मैं काले को ब्याही री ननदिया
दिल्ली शहर मे लागी बजरिया
काले को बेचन जारी ननदिया
ज्वार बाजरा सब कोई लेवै
काले को कोई न लेवै ननदिया । मैं सोने का·······
बेच बाच जब घर को लौटी,
पीछे भटकता आवै ननदिया । मैं सोने······
मेरे पिछवाडे बबूल का पेड़ है
काले को बाधन जा री ननदिया
बाध बूँध जब घर को लौटी
पीछे भागता आया ननदिया । मैं सोने······
पीठ कार गात काटी

काले को वन्द कर आकर ननदिया
वारह् बरस पीछे कोठा खोला
काले से गोरा पाया ननदिया । मैं सोने का तारा ननदिया ।
मै रेशम का लच्छा ननदिया ।।

लखनऊ की नज़ाकत, आगरे की ज़िन्दादिली और दिल्ली की रईसी प्रसिद्ध है। मेरठ मे अक्खड़पन और साधारण रहन सहन अधिक है। एक स्त्री दिल्ली वाले और मेरठ वाले की तुलना करती हुई दिल्ली वाले को पसन्द करती है। उसकी पसन्द के अनेक कारण हैं। वह कुछ कारणों का उल्लेख निम्नलिखित गीत मे करती है—

ऐ दिल्ली वाला री मेरठिया ।
खाने लगावै वह दिल्ली वाला,
पूरी न खावै री मेरठिया ।
प्याले भरावै वह दिल्ली वाला,
शर्वत न पीवै री मेरठिया ।
इत्र लगावै वह दिल्ली वाला,
कपड़ा न वदलै री मेरठिया ।
कोठी वनावै वह दिल्ली वाला,
छप्पर न ताने री मेरठिया ।
वागों में जावै वह दिल्ली वाला,
द्वारे पै बैठे री मेरठिया ।
चौपड़ विछावै वह दिल्ली वाला,
वाजी न खेलै री मेरठिया ।
महफिल लगावै वह दिल्ली वाला,
गजले न गावै री मेरठिया ।
पाउडर मगावै वह दिल्ली वाला,
घुंघटा न खोलै री मेरठिया ।
मोटर मँगावै वह दिल्ली वाला,
घूमन न जावै री मेरठिया ।
सुरमा लगावै वह दिल्ली वाला,
आँखे न खोले री मेरठिया ।
सेजे विछावै वह दिल्ली वाला,
करवट न लेवै री मेरठिया ।

एक कुलटा स्त्री से मार्ग मे उसका प्रेमी मिलता है वह उससे छेड़-छाड़ करता है। वह उसे रोक कर कहती है कि यह उचित स्थान नही। यहाँ यदि कोई देख लेगा

तो मेरे पति को सूचना दे देगा। ऐसा न हो कि भीड भी लग जाये। इसीलिये इसे समझा कर कहती है—

मोतें मति अटकें डगरे मे,
खवरि वालम कूँ परि जाइगी।
चूमा-चाटी करै,
वाग नथनी की मुरि जाइगी॥ मोतें०
वहियाँ मोरै काहे मोरी,
चुड़ियाँ चटकी जामैं मोरी,
वीच हाट मत रोक
भीड लोगन की जुरि जाइगी। मोतें०

गाँवो मे जहाँ वाल-विवाह प्रचलित हैं वही वडी उम्र की पत्नी और कम उम्र वाले पति की स्त्री अपने पति की विशेपताओ का वर्णन वडे सरस ढग से करती हुई कहती है—

छोटा सा वलमा मोरा आँगना मे गिल्ली खेले।
पनिया भरन जाऊँ यो कहे गोदी मे ले ले,
मारूँगी रस्सियो की मार वो तो रोता डोले।
छोटा सा वलमा मोरा आँगना मे गिल्ली खेले॥
रोटी करन जाऊँ यो कहे गोदी मे ले ले,
मारूँगी वेलन की मार वो तो रोता डोले।
छोटा सा वलमा मोरा आँगना मे गिल्ली खेले॥
अपनी सिजरिया जाऊँ यो कहे गोदी मे ले ले,
मारूँगी जोवना की मार वो तो रोता डोले।
छोटा सा वलमा मोरा आँगना मे गिल्ली खेले॥

अव समय वदल रहा है। सामाजिक कुप्रथाएँ धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। अव ऐसे अनमेल विवाह वहुत ही कम होते है अत इस प्रकार के लोकगीतो की रचना भी अव वन्द होती जा रही है।

वालक पति की युवती पत्नी को भय है कि उसके छोटे से भोले पति को अन्य कोई स्त्री आकर्पित न करले। तभी तो वह उसे समझा कर कहती है—

अभी तो मेरा छोटा सा वलमा रे।
वलम तुम वाग-वगीचे मत जाना,
मलिनियाँ मोह लेगी वलमा रे। अभी०
वलम तुम पनियाँ भरन मत जाना,

पनिहारिन मोह् लेगी वलमा रे। अभी०
सजन तुम चौक-वजरिया मत जान,
तमोलिन मोह् लेगी वलमा रे। अभी०

पति का भोलापन भी कभी-कभी वडा बुरा होता है। घर के अन्य लोग तो उसका परिहास करते ही हैं स्वयं उसकी पत्नी भी उसे मूर्ख समझ कर उसका मजाक उड़ाती है। यही नही वह अपने ननदोई से अपना प्रेम-सम्बन्ध जोड़ लेती है और अपने पति के विपय मे वड़ी हास्यास्यप्रद वाते कहती है—

सरौता कहाँ भूल आये प्यारे ननदोइया ?
ननदी मेरी लड्डू खाये, पेड़ा ननदोइया,
मैं विचारी रवड़ी खाऊँ, दौना चाटे सैया।
सरौंता कहाँ भूल आये प्यारे ननदोइया ?
ननदी मेरी रास देखे, नाच ननदोइया,
मैं विचारी थेटर देखूँ, घर मे सोमे सैयाँ।
सरौंता कहाँ भूल आये प्यारे ननदोइया ?
ननदी मेरी छालियाँ खाये, इलाइची ननदोइया,
मैं विचारी पान चाखै, चूना खाये सैयाँ।
सरौंता कहाँ भूल आये प्यारे ननदोइया ?

यह गीत आधुनिक युग का है। इसमे सरौता, छालियाँ, पान आदि का वर्णन इस्लामी सभ्यता का प्रभाव प्रकट करता है। 'थेटर' शब्द अग्रेजी के 'थ्येटर' का विगड़ा रूप है जिसे गाँवो में 'ठेठर' भी कहते हैं।

बूढ़ा पति और युवती पत्नी तो अब भी वहुधा देखने को मिलते हैं। यह बात भारत के ही गाँवो और नगरो मे नही, ससार के वड़े-वडे उन देशो में भी है जो स्वयं को वड़ा सभ्य और सुधारवादी कहते हैं। ऐसी ही एक अभागिन युवती की करुण दशा उसी के शब्दो मे इस प्रकार है—

मेरी फूटी हुई तकदीर मुझे बुड्ढा मिला री।
सव गये वाजार मेरा बुड्ढा गया री,
सव लाये अनार बुडढा कद्दू लाया री। मेरी फूटी०
सव गये थे मेले मेरा बुड्ढा गया री,
सव लाये खिलौने, बुड्ढा हुक्का लाया री। मेरी फूटी०
मैं ओढ के चद्दर कभी गलियो मे जाऊँ री,
लड़के हरामी हँस पड़े बुड्ढे की जोरू री। मेरी फूटी०

इसी गीत को कुछ हेर-फेर के साथ एक हिन्दी फिल्म 'नगमा' में इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया गया है—

मैं का करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया।
सब जो गये बाग मेरा बुड्ढा भी चला गया,
सब तो लाये फूल बुड्ढा गोभी ले के आ गया।
मैं का करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया।
मैं गुड़िया हसीन मेरी मोरनी सी चाल है,
सिर पै सफेद उसके बाबा जी का बाल है।
क्या होगा अंजाम, मुझे बुड्ढा मिल गया।
परियों के देश मुझे बुड्ढा ले के आ गया,
मैंने जो उठाया घूँघट बुड्ढा गुस्सा आ गया।
मैं हो गई बदनाम, मुझे बुड्ढा मिल गया।

इससे प्रकट होता है कि किस प्रकार पुराने लोकगीत अब नये अथवा अपने पुराने ही रूपों में आधुनिक युग में भी लोक प्रिय हो रहे हैं। साहित्यिक गीतों को शास्त्रीय संगीत की धुनों में बाँधना अब कम होता जा रहा है और इनके स्थान पर पुराने लोक गीत या पुराने लोकगीतों की धुन पर गाये जाने वाले नये गीत अब अधिक प्रचलित और लोकप्रिय हो रहे हैं।

अगर कहीं बालम छोटे हैं तो कहीं दुल्हन भी दूध-पीती बच्ची है। ऐसी ही एक दुल्हन का हास्यपूर्ण वर्णन निम्नलिखित 'सपरी-गीत' में मिलता है। आगरे में 'सपरी' की शैली बड़ी लोकप्रिय हो रही है।

हमरी छोटी है दुल्हनियाँ कैसे सपरी ?
छोटी दुलहिन के संग भौजी खेल-कूद ना पायो
आधी रात सोये ते जागो मन में अति पछितायो
सूझत नाहीं कोउ जतनियाँ कैसे सपरी ?
आज रात मैं दुलहिन के संग सोयो ओढ़ रजाई
परे-परे पेसाब करी है, चद्दर दई भिगाई
भीगी चद्दर की सुँघनियाँ कैसे सपरी ?
कंधा धरि कै हम, तिरिया को मेला देखन जाये
हमें देखि कै हँसी करत हैं हमतें पूछ न आये
लागै तुम्हरी का बिटनिया कैसे सपरी ?
बड़े भुन्हरे रोटी माँगै अब्बा कहि चिल्लावै
दूध-दही तो मन नहिं भावै रूखी रोटी खावै
अंटै नाहीं रे उटनिया कैसे सपरी ?

छोटे से वालमा बड़ी सी पत्नी के लिये उपहास वन जाते हैं। इधर-उधर के लोग व्यंग्य कसते जाते हैं और वेचारी स्त्री सब कुछ सहती हुई जीवन व्यतीत करती है। ऐसी ही एक स्त्री का चित्र इस गीत मे देखिये—

छोटे से हमारे वालमा री, पतले से हमारे वालमा
पहली दफा मैं व्याहे से आई
पलने में झुलाये वालमा री। पतले ''
दूजी दफा मैं गौने से आई
गोदी में खिलाये वालमा री। पतले ''
तीजी दफा मैं रौने से आई
सड़कों पै डुलाये वालमा री। पतले '''
सिर पे गठरिया घास की रे, गोदी मे हमारे वालमा
चलता मुसाफिर यो कहे, गोदी का तुम्हारा क्या लगेरी
छोटे से ···· ···
सिर की गठरिया डार दई रे, गोदी से पटक दिये वालमा
करमों की रेखा ना मिटे रे, गोदी के हमारे वालमा री
छोटे से हमारे ···· ···पतले से
सिर पे गठरिया धर लई रे, गोदी मे उठा लिये वालमा
पतले से हमारे·······छोटे से हमारे·······

कम वय के पति और अधिक वय की पत्नी होने पर जो विषम परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं उनका वर्णन इस लोकगीत में किया गया है—

सईया वडे जलैया दुख काह से कहूँ मेरी मईया
पाँच वरस की मैं व्याहे से आई
ढाई वरस के सईंया दुख, काह से '''
सात वरस की मैं गौने से आई
पांच वरस के सईंया, दुख काह से कहूँ '
सईंया बड़े जलैया दुख काह से कहूँ मेरी मईया
तेल, फुलेल, हल्ले, डुलाये थपक-थपक
मैंने सईंया सुलाये। सईंया को ले गई विल्लईयां
दुख काह'' ·····
सईंया वडे·······
आँगन ढूँढू मैं द्वारे ढूँढू

नाली मे खेलै छपड़ छईया
दुख काहे से कहूँ मेरी मईया
सईया वडे जलैया दुख काहे से कहूँ मेरी मईया।

पत्नी का मर जाना बडा दुखद होता है। "बिन घरनी घर भूत का डेरा" तो होता ही है, वेचारे विधुर की भी वड़ी दयनीय दशा हो जाती है। विधुर की दयनीय दशा का बडा करुण चित्रण निम्नलिखित गीत मे हुआ है। इस गीत मे एक हल्का सा परिहास भी है—

अरी भैना रँडुआ तो रोवै आधी रात सुपने मे देखी कामिनी
कोई न पीसै वाको पीसनो अरी भैना कोई न पूछै वाकी वात
कोई न करै वाकी रोटी अरी भैना कोई न राँधै वाको भात
सुपने मे देखी कामिनी
कोई न वोलै वासै प्यार से अरी भैना भावी न पूछै कोई वात, सुपने०
भईया भतीजे दुश्मन हो रहे अरी भैना विगड पडौसी करते वात
सुपने मे देखी कामिनी
ना तो कोई की वासै दोस्ती अरी भैना ना है कोई सै वाको वैर
रोय रोय के घर मे रडुँआ यो कहै अरी भैना इकला मरूँगा सिर मार
सुपने मे देखी कामिनी' '
इकला जव सोवे रडुँआ महल मे अरी भैना थर थर काँपे वाको गात, सुपने०
रोते ही रोते पीली फट गई अरी भैना दिन मे भी सुवकत जात।
सुपने मे देखी कामिनी ' '

नया जमाना जहाँ राजनीतिक चेतना, वैज्ञानिक उन्नति और सामाजिक सुधार लेकर आया है वहाँ उसमे अनेक बुराइयाँ भी घर कग्ती जा रही है। आज के युग के युवक-युवतियो और अन्य स्त्रियो की कुप्रवृत्तियो का चित्रण निम्नलिखित गीत मे देखा जा सकता है—

कली गुलदस्ते मे खिली रहती है।
अव के जमाने के लडके बुरे है, अवके०
उन्हे तो धुन शादी की लगी रहती है। कली०
अवके जमाने की लडकी बुरी है,
उन्हे तो धुन फैशन की लगी रहती है। कली०
अव के जमाने की वहुएँ बुरी है,
उन्हे तो धुन लडने की लगी रहती है। कली०

अब के जमाने की सासे बुरी है,
उन्हे तो धुन बकने की लगी रहती है। कली०

बहुओ का सास ननद और जिठानी से वैमनस्य आदि काल से चला आ रहा है। एक बहू अपनी सास-ननद की बुराई बाहर वालो से खुल कर करती रहती है। निम्नलिखित गीत इसका उदाहरण है—

मैं तो निबुआ तोड़न जाऊँ बाग जाने कैसो !
मोसे पूँछे नगर के लोग ननद तेरी कैसी, ननद तेरी कैसी ?
वो तो दिन भर बदलै रूप छिनारी ऐसी। मैं तो०
मोसे पूँछे नगर के लोग जिठानी तेरी कैसी, जिठानी तेरी कैसी ?
चकले पै पीसै नोन, भसक्को ऐसी। मैं तो०
मोसे पूँछे नगर के लोग सास तेरी कैसी, सास तेरी कैसी ?
वो तो दिन भर पीटै मोय, डाइनियाँ ऐसी।
मैं तो निबुआ तोडन जाऊँ वाग जाने कैसो ?

स्त्रियों को बढिया-बढिया वस्त्राभूषण पहिनने का चाव स्वाभाविक रूप से होता ही है। कुछ स्त्रियो को स्वादिष्ट चीजे खाने की भी इच्छा सदैव ही रहती है। कुछ नगरो की वस्तुए अपनी विशेषताओ के कारण प्रसिद्ध होती है। एक स्त्री ऐसी ही विशेषताओ वाली वस्तुओ की इच्छा रख अपने पति से कहती है—

मोरी टप-टप टपकै लार, बादामी हलुआ लइयो।
तू सहर बनारस जइयो, बढिया सी साडी लइयो।
होवै जरी किनारीदार, बादामी हलुआ लइयो॥
तू सहर बरेली जइयो, सोने कौ झुमका लइयो।
मोती जडे झवक्केदार, बादामी हलुआ लइयो॥
तू सहर कानपुर जइयो, बढिया सी चप्पल लइयो।
मोरी चाल ठुमक्केदार, बादामी हलुआ लइयो॥
तू सहर आगरा जइयो, अरु पेठा-दालमोंठ लइयो।
रबड़ी लइयो लच्छेदार, बादामी हलुआ लइयो॥

इस गीत में बनारस, बरेली, कानपुर और आगरा की प्रसिद्ध वस्तुओ के नाम आये हैं। आगरे की दालमोठ और पेठा तो ससार भर मे प्रसिद्ध है, यहाँ की रबड़ी भी बडी स्वादिष्ट होती है। इन सबका वर्णन उपर्युक्त गीत मे बडी सुन्दरता से किया गया है।

कोई पनि अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करता है, कोई उसकी अवहेलना किया करता है, कोई अपनी पत्नी की ओर से उदासीन हो किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगता है, कोई एक पत्नी के रहते हुए भी दूसरा विवाह करने को तैयार हो जाता है। निम्नलिखित गीत मे एक ऐसी दुखी नारी का चित्रण है जिसके रहते हुए भी उसका पति अन्य किसी स्त्री से विवाह करने को तैयार हो जाता है—

मोरे घर नाये भरतार
पपैया बोली बोलै
और मोरे हाँथ मे कत्था मोरा बलम गया कलकत्ता
होय मे जल मर हो गई राख
पपैया बोली बोलै
और मोरे हाँथ मे राई
मेरे वलम की आई सगाई
होय मैं जल मर हो गई राख
पपैया बोली बोलै
और मोरे हाँथ मे पेडा
मेरे बलम के पड गये फेरा
होय आ गई ल्हौरी सौत पपैया बोली बोलै
मेरे घर नाये भरतार पपैया बोली बोलै

स्त्री बीमार है, उसके बचने की कोई आशा नही। उसकी वीमारी की कोई चिन्ता भी नही कर रहा। वह अपने ससुराल के लोगो से प्रार्थना करती है कि उसके मरने के बाद उसका दाह-सस्कार तो विधिवत हो ही जाये। उसकी इच्छा यह भी है कि उसकी मृत्यु के बाद उसके पति का दूसरा विवाह भी अवश्य कर दिया जाये। नारी के त्याग की यह भावना कोई साधारण नही—

ल्हास मेरी बरवाद न करना मरघट मे पौचा देना
मेरे सिर की चटक चुँदरिया वाके नीचे बिछा देना
मेरे पति की हरौ दुपट्टा वाके ऊपर डरा देना
जौ रोमे मेरे मैया वाबुल उनको धीर बँधा देना
जो रोमे मेरे भैया भावज उनको धीर बँधा देना
जो रोमे वे पती हमारे उनकौ व्याहु करा देना
जो रोमे मेरे लडका वारे उनको धाय लगा देना

मुग्धा नायिका अपनी मुग्धावस्था मे अपने शरीर की भी सुधि बिसराये रहती है। वह अपने प्रियतम के प्रेम मे ऐसी निमग्न रहती है कि उसे अपने वस्त्राभूषणो का

भी ध्यान नही रहता। कुछ स्त्रियाँ चाँदी-सोने की विन्दी माथे पर राल या गोंद से चिपका लेती है। एक मुग्धा की ऐसी विन्दी कही गिर गयी है। ध्यान आने पर वह कहती है—

विंदिया खोय गई गजव की वात।
कै मेरी विंदिया वागो मे गिर गई,
मालिन वनके ढूँढू सारी रात ॥ विंदिया ॥
कै मेरी विंदिया तालो पै गिर गई,
धोबिन बनके ढूँढू सारी रात ॥ विंदिया०
कै मेरी विंदिया कूआ पै गिर गई,
धीमर बनके ढूँढू सारी रात ॥ विंदिया ॥
कै मेरी बिंदिया सेजो पै गिर गई,
रानी बनके ढूँढू सारी रात ॥ विंदिया

इस गीत का मुखड़ा कही-कही इस प्रकार भी है—

बिंदिया मेरी खोइ गई हुई कैसी वात ?

शेष अन्तरा इसी प्रकार का है।

विंदिया के गीत अनेक ढंग से गाये जाते है। कही तो विंदिया किसी मुग्धा नायिका की होती है, कही वह किसी कुलटा की भी होती है। कुलटा स्त्री दिन भर अनेक प्रेमियो से मिलती रहती है। प्रेमालिगन-चुम्बन आदि मे उसकी विंदिया कही गिर पडती है। ध्यान आने पर वह सोचती है कि उसकी बिंदिया कहाँ गिरी होगी—

विंदिया मेरी खोय गई न जानू राम।
ना जानूँ विंदिया वागो में गिर गई,
ना जानूँ राम माली से चिपट गई।
ना जानूँ विंदिया तालो मे गिर गई,
ना जानूँ राम धोवी से चिपट गई।
ना जानूँ विंदिया कूआ मे गिर गई,
ना जानूँ राम धीमर से चिपट गई।
ना जानूँ विंदिया महलो मे गिर गई,
ना जानूँ राम गोवर में चिपट गई।
ना जानूँ विंदिया सेजो पै गिर गई,
ना जानूँ राम रजवा से चिपट गई।

वरेली के वाजार मे झुमका खोने वाला गीत आगरा मे वर्षो से प्रसिद्ध है। झुमका खोने पर घर के सभी लोग उसे ढूँढ़ते हैं। सास पीटती है, ननद पिटवाती है और सैंयाँ भी पीटते है। सास रोती है, ननद नुकसान होने की वात कह कर और अधिक रुलवाती है तथा सैंयाँ मुख पर रुमाल डालकर चुप-चुप रोते है। इसी वात को इस गीत मे कहा गया है—

झुमका खोया रे वरेली के वजार मे
सास मोरी ढूँढै ननद ढुँढवावै, सँईयाँ ढूँढे रे
मसाल-दिया वार के
झुमका खोया रे ...
सास मोरी मारे, ननद पिटवावै, सँईयाँ मारे रे
टाँगो मे टाँगें डार के
सास मोरी रोवे, ननद रुलवावै, सँइयाँ रोवे रे
रूमाल म्हो पै डार के
झुमका खोया रे बरेली के वाजार मे।

झुमका खोने का यही गीत शब्दो के कुछ हेर-फेर के साथ भी कही-कही गाया जाता है। आगरा मे ये दोनो ही गीत प्रचलित है। ऐसा विदित होता है कि परिवर्तन गाते-गाते स्वय ही हो गये हैं। मूल गीत याद न रहने पर अपनी ओर से भी कुछ शब्द जोड लिये जाते है। प्रथम अतरे मे "मसाल-दिया वार के" के स्थान पर दूसरे गीत मे 'मसाल वार-वार के, आया है, दूसरे अतरे मे 'टाँगो मे टाँगे डार के' की जगह 'वन्दूक तान-तान के' आया है और तीसरे अन्तरे मे 'ननद पिटवावै की जगह 'ननद चुपवावै तथा 'रूमाल म्हो पै डार के' की जगह 'रूमाल डार-डार के' आया है। इससे स्पष्ट है कि लोकगीत स्थान और काल के वदलने पर कुछ परिवर्तन अवश्य ले आते है।

झुमका खोया रे, वरेली के वाजार मे
सास मोरी ढूढे ननद ढुँढवावे,
सँईयाँ ढूढें रे मसाल वार वार के
झुमका............ ..
सास मोरी मारे ननद पिटवावे
सँईयाँ मारे रे वन्दूक तान तान के
झुमका खोया रे............
सास मेरी रोवै, ननद चुपवावै
सँईयाँ रोवे रे, रुमाल डार डार के
झुमका खोया रे..............

देवर-भाभी के अनुचित सम्बन्ध वहुधा देखे जाते है। निम्नलिखित लोकगीत मे एक ऐसी ही भाभी का वर्णन है। वह रात को अपने देवर के साथ रति-क्रिया मे निमग्न रही। उसकी अँगूठी प्रेमालिंगन मे कही गिर पड़ी। प्रात होने पर अपने देवर से अँगूठी लौटाने की प्रार्थना करती है—

मोरी खोय गई रे मुँदरिया, कैसे सपरी ?
रात तोरी सेजन पै दिवरा गिरी मुँदरिया मोरी।
मिली होय तौ दे देउ दिवरा भावज कह रई तोरी॥
देरी करौ ना दिवरिया, कैसे सपरी ?
मेरी मुँदरिया दै दै दिवरा बारि-बारि समझाऊँ।
जो तू मोको तग करैगो फेरि पास ना आऊँ
मोरी सूनी रे उँगरिया, कैसे सपरी ?
बार-बार समझायो मैंने एक न तेंने मानी।
चोली मोरी फटी करी जो तेंनें एंचातानी॥
भीतर लै गयौ जबरिया, कैसे सपरी ?
सासुलिया मोय गारी दै रई हँस रहे रड़ुआ ठाडे।
कहत लाज मोय लगै दिवरिया परि गये बहुति पमारे॥
बलमा मारै देइ मोगरिया, कैसे सपरी ?

इसी प्रकार की एक कुलटा स्त्री अपने प्रेमी को चुपचाप अपने घर बुलाती हैं। उसका चुपचाप स्वागत-सत्कार कर उसके साथ चुपचाप ही रति में लीन होती है। ऐसा ही एक गीत है—

धीरे धीरे चले आवौ, परदा हिलने न पावै।
खाना पकाया मैंने बो आपके लिये,
धीरे धीरे जेय जाओ, चॉवर गिरने ना पावै।
सिजिआ बिछाई मैंने आप के लिये,
धीरे धीरे चले आवौ, सिजिया हिलने ना पावै॥

यह मैनपुरी के उत्तर मे मुसलमानी स्त्रियो द्वारा गाया जाने वाला प्रसिद्ध रसिया है। आगरा मैनपुरी से लगा होने के कारण यह गीत आगरा मे भी चुपचाप ही चला आया है। आगरा के शमसाबाद तथा बीहड़ का नगला (वाह तहसील) मे यह गीत सुना जा सकता है। गाँवो के मुसलमान स्त्री-पुरुष हिन्दुओ जैसी ही बोली और रीति-रिवाज लिये हुए है। अतः उनके गीतो मे हिन्दुओ के गीतो जैसी ही विशेपताएँ देखी जा सकती है।

एक स्त्री अपने पति के साथ रति-क्रिया के लिये उतावली हो रही है किन्तु

उसका पति कुछ रूठा हुआ सा है। वह किसी प्रकार उसे शयन-कक्ष मे ले आती है। जब-जब वह रति के लिये अपने पति को तैयार करने लगती है कोई न कोई आ ही जाता है किसी प्रकार वह सबको वहाँ से हटाकर पति के पलग पर आती है। तब तक उसका पति सो जाता है। वह अपने पति को जगाती है किन्तु तब तक सवेरा हो जाता है। रति-आतुर नारी की कसक का सुन्दर और सरस वर्णन इस लोकगीत मे है—

बोले नही रात ऐरी सखी
बतराने नही रात ऐरी सखी
साँझ हुई मैने सेज लगाई
जोलो आगई सास, ऐरी सखी
पईयाँ लाग मैंने सास विदा करी
तोनु आगई नन्द, ऐरी सखी
साड़ी जम्पर दे मैंने ननदी बिदा करी
तौनु जाग गये लाल ऐरी सखी
दूध पिलाये मैंने लाल सुलाये
तौनु टूट गई खाट, ऐरी सखी
मिल जुल कर मैंने खटिया सम्हारी
तौनु सोय गये आप, ऐरी सखी
उँगली पकड मैंने उनको जगाया
तौनु बोल गयो काग ऐरी काग
हाय होय गयो भोर, ऐरी सखी

यही गीत एक अन्य मुखडे के साथ भी गाया जाता है। प्रथम गीत मे तो एक रात बिना रति के ही बीत जाने का वर्णन है किन्तु दूसरी रात उसकी आशा हो सकती है। इस दूसरे गीत मे तो वह स्त्री दूसरे दिन पीहर चली जाती है और साँवरिया छुप-छुप कर देखता रहा जाता है। यह दूसरा गीत पूर्व गीत से अधिक कसक लिये है।

मेरे राजा की ऊँची अटरिया मिलन जाने कब होयेगा
पहन ओढ़ मैं अँगना मे ठाड़ी, आये गई सास डुकरिया.......
मेरे राजा................

पइयाँ लाग मैंने सासु विदा करी
आगयी सौत जिठनियाँ मिलन जाने कब होयेगा, मेरे राजा.......
साड़ी जम्पर दे मैंने जिठानी विदा करी

आय गई ननद बिजुरिया, मिलन जाने..........

मेरे..................

बातें बनाये मैंने ननद बिदा करी
आय गये छोटे देवरिया, मिलन जाये.......... ....

मेरे राजा की..........

लड्डू दे मैंने देवर बिदा किये
आये गये पिहर से लिवउआ ? मिलन जाने कब..................
पहन ओढ़ मैं डोले मे बैठी
छुप छुप देखे सॉवरिया, मिलन जाने कब.... ... ...
मेरे राजा की.......... ....

पढ़ी-लिखी और फैशनवली युवती का विवाह कभी-कभी परिस्थितिवश अपढ़ और अयोग्य पुरुष से भी हो जाता है। ऐसी ही एक परिस्थिति का वर्णन निम्नलिखित गीत में हुआ है।

मैं फैशन वाली, बलम मेरा बनियाँ
सास मेरी लीपे ननद लिपवावे
मैं बैठी देखूँ बलम भरे पनियाँ
मै फैशन वाली बलम मेरा बनियाँ
सास बेच हल्दी ननद बेचैं मिरची
मैं बैठी देखूँ बलम बेचै धनिया

मै फैसन ... .. .............

सास मेरी मारे ननद पिटवावे
मैं बैठी रोऊँ बलम पोछे अँसुआ
मै फैशन वाली बलम मेरा बनिया !

ससुराल मे बहू की दशा कभी-कभी बड़ी दयनीय हो जाती है। सास-ननद की गालियो और मारने-पीटने का विरोध पति भी जब नही करता तो बहू अपने भाग्य को झीकती है। वह अपने पति की कायरता पर क्रोधित होकर उससे प्रतिशोध लेने का निश्चय करती है। इसी भावना का एक लोकगीत है—

जमुना जल बरसो ऐ धीरे-धीरे,
जमुना जल बरसे यमुना जल बरसे
पैर मेरा रपटे ऐ धीरे धीरे
पैर मेरा रपटे पैर मेरा रपटे
गगर सिर छलके ए धीरे धीरे

गगर सिर छलके, गगर सिर छलके
चुनर मेरी भीजे ऐ धीरे-धीरे
चुनर मेरी भीजे, चुनर मेरी भीजे
सास मेरी डाटे ऐ धीरे-धीरे
सास मेरी डाटे, सास मेरी डाटे
ननद पिटवावे, ऐ धीरे-धीरे
ननद पिटवावे, ननद पिटवावे
छज्जे पे खड़े देखे, ऐ धीरे-धीरे
तरस नही भावे ऐ धीरे-धीरे
मै मायके चली जाऊँ गी ऐ धीरे-धीरे
वही पै बुलवाँऊगी ऐ धीरे-धीरे
अम्मा से पिटवाऊँगी ऐ धीरे-धीरे
मैं माँफी मगवाऊँगी ऐ धीरे-धीरे
छज्जे पे खड़ी देखूँ ऐ धीरे-धीरे

देवर और जेठ तो वदनाम है ही ससुर भी कम रसिक नही होते। वे भी अपनी पुत्र-वधू पर कुदृष्टि रखते दिखायी देते है। एक लोक गीत इन सभी को पीछे छोड़ कर ददिया ससुर की कुवासना का चित्र प्रस्तुत करता है। एक बहू की मनोदशा का चित्रण इस गीत मे बड़े स्वाभाविक ढग से किया गया है—

आँगनियाँ मे कुटी करै, वोई मेरा ददिया सुसर लगै
सोने का लोटा गगा जल[1] पानी
पीवे कूँ मेरे सग चलै, वोई मेरा ददिया सुसर लगै
सोने की थारी मे भोजन परोसे
खावे कूँ मेरे सग चलै, वोई मेरा·······
सोने की सेज मोती-झालर के तकिया
सोयवे कूँ मेरे सग चलै, वोई मेरा··········
आँगनियाँ मे कुटी करै वोई मेरा ददिया सुसर लगै।

कही-कही वहुँए भी वडी तेज होती है। समय के वदलने पर वहुएँ भी अपने विचार वदलती जा रही है। जहाँ पहले सासे-बहुओ पर शासन करती थी वहाँ अव वहुएँ सासो पर शासन करने लगी है। ऐसी ही सास बहू से सम्बन्धित एक लोकगीत दृष्टव्य है—

---

१. गंगा-जल' का अर्थ ही गंगा का पानी है किन्तु ग्रामीणो मे गगाजल पानी कहने की प्रवृत्ति है।

गयौ गयौ री सासु तेरो राज जमाना आयौ बहुअन को
सास बिचारी आटा पीसे बहू देखवे जाय ।
मोटो-मोटो सास तेरो चून, जमाना आयो बहुअन को ॥
सास बिचारी तपै रसोई बहू देखवे जाय ।
कच्ची-कच्ची सास तेरी दाल सास बिचारी बर्तन माँजे बहू देखने जाय ॥
भूँठी रह गयी सास परात, जमाना आयो बहुअन को ॥
सास बिचारी करे बिस्तरा बहू सोइबे जाय ॥
पड़ गये सास हजारो सिलवट जमाना आयो बहुअन को
गयो गयो री सास तेरो राज्य जमाना आयो बहुअन को

यही गीत कुछ हेर-फेर के साथ भी कही-कही गाया जाता है । इस दूसरे गीत मे बहू ने सास पर बहुत अधिक अधिकार जमा रखा है । सास की दशा वास्तव मे बड़ी दयनीय हो रही है—

गयो गयो री सास तेरो राज,
जमानो आयो बहुअन को
सास तो चली चून पीसन को
बहू देखन को जाय मोटो मोटो री सास तेरो चून
जमाना आया बहुअन को । गयो ... ...
सास तो चली रोटी पोबन
बहु खावन को जाय
कच्ची कच्ची री सास तेरी दाल
जमाना आयो बहुअन को
सास तो चली पनिया भरन को
बहु नहावन को जाय
मीड़ौ मीड़ौ री सास मेरी पीठ ।
जमाना आयो बहुअन को
सास तो चली खाट बिछावन
बहु सोवन को जाय
दाबो दाबो री सास मेरे पाँव
जमाना आयो बहुअन को

एक चित्र अनमेल विवाह का भी दर्शनीय है—

बिन मेल बिगड़ गयो खेल, बूढ़े से मेरी जोड़ी न मिलै
पाँच बरस की मैं मेरी बहना

पचपन के भरतार, लै गयो लै गयो पतिया लिखाय
बूढ़े से मेरी जोडी न मिलै
छै बरस की मैं मेरी बहना छप्पन के भरतार
लै गयो लै गयो सगाई कराय, बूढ़े से मेरी जोडी न मिले
सात बरस की मै मेरी बहना, सत्तर को भरतार
लै गयो लै गयो लगुन लिखाय, बूढ़े से मेरी जोडी न मिले
आठ बरस की मै मेरी बहना, अस्सी के भरतार
लै गयो लै गयो ब्याह कराय बूढ़े से मेरी जोडी न मिले
नौ बरस की मै मेरी बहना नव्वे के भरतार
लै गयौ लै गयो गौना कराय बूढ़े से मेरी जोडी न मिले
दस बरस की मै मेरी बहना, सौ के है भरतार
लै गयो लै गयो बिदा कराय, बूढ़े से मेरी जोड़ी न मिले
वासे बाबा कहूँ या भरतार बूढ़े से..... "
बिन मेल बिगड़ गयो' ' ...

सास से घर का सारा काम कराने के बाद भी बहू का क्रोध कम नही होता। वह अपने पति से बहुधा रूठ जाया करती है। बेचारी सास बहू के रूठने का कारण अपने पुत्र से पूछती है। बहू को अपनी ससुराल का टूटा-फूटा घर पसद नही। पति आखिर तंग आकर कहता है कि सास को ज़हर ही क्यो नही दे देती कि जिससे सारा झगड़ा समाप्त हो जाये—

बताय दे बेटा तेरी बहू काहे पै रूठी
अरे कुरसी मेज पै खाना खावे
मजै न झूठी थाली हो अरे धोती तो वाकी हम धोवे
तकदीर हमारी फूटी, बताय दे बेटा०
अरे पतली पतली धोती पहने, तऊ कहे यह मोटी है
अरे कर सोलह सिंगार वाकी फड़कै बोटी-बोटी
बताय दे बेटा तेरी ...
बहू बलम से यो उठ बोली.
तेरी मढईया फूटी हो, अरे अब के तो मै जब आऊँ
बनवाय ले कचन कोठी, बताय दे०
अरे बहू बलम से यो उठ बोली तेरी मईया खोटी है।
अरे सब झगड़ो मिट जाय लुगइया,
दे दे जहर की बूटी,
बताय दे बेटा तेरी....

एक उच्छृंखल स्त्री अपनी ससुराल मे भी सभ्यता से नही रहती । घर का काम-काज अपनी सास पर छोड़ कर वह सज-धज कर मेले मे जाती है । ऐसी ही एक स्त्री का वर्णन है—

आहा जी मैं तो ओढ चुनरिया, ओहो जी मैं तो ओढ चुनरिया
जाऊँगी मेले मे ।
सास कहे बऊ चौका करलै, और भरला बऊ पानी
आहा जी मेरा जी घबड़ावै, ओहो जी मेरा जिया घबड़ावै
घर के झमेले मे । आहा जी मै तो·······
इक्का मे मोय चक्कर आवैं, ताँगा मे मोय उल्टी
आहा जी मैं तो सैर करूँगी,
उड़न खटोले मे, आहा जी मै तो····
इक पइसा का काजर लीन्हाँ
द्वै पइसा की बिंदिया
आहा जी मैने पान चबाया, खोटे अधेले मे,
आहा जी मै तो ओढ चुनरिया
ओहो जी मै तो ओढ़ चुनरिया
जाऊँगी मेले मे

यह चटकमटक दार युवती अब मेले मे आ गयी है । घर मे तो यह अपने प्रियतम से खुलकर प्रेमालाप नही कर सकती अतः मेले में घूम-घाम कर कही अकेले मे उससे मिलना चाहती है । उसकी मस्ती, उसकी उमग, उसकी उद्दीप्त कामना का सही-सही वर्णन इस गीत मे मिलता है—

मै तो ओढ चुनरिया आई हूँ मेले मे
मेरे भोले सँवरिया मिलना अकेले मे
सास मेरी त्यौहार के दिन भी गोबर थपवाए
चक्की चूल्हा चौका बरतन भाड़े घिसवाए
ऐजी मेरा जिया घबराये घर के झमेले मे—
मै तो ओढ चुनरिया आई हूँ मेले मे—
इक पैसे की बिंदिया खरीदी दो पैसे का सुरमा
पानी-पूरी खाई उधार मुफ्त मे खाया खुरमा
ओजी फिर मैंने पान खरीदा खोटे अधेले मे
मै तो ओढ चुनरिया——
मोटरिया में कभी न बैठूँ जिया मोरा घबराये
टमटम में बैठूँ तो कमरिया सौ सौ बल खा जाये

ओजी मैं तो सैर करूँगी बैठ के ठेले मे
मैं तो ओढ चुनरिया ... ...

नगर के लोगो को वस्तुओ की मँहगाई से कठिनाई होती है किन्तु किसान को गल्ले के सस्ते होने से हानि होती है। एक किसान की स्त्री सस्ते गल्ले के कारण लड़की के विवाह ने लिये चिन्तित है। वह अपने पति से कहती है—

सुनि कै सरसो को भाव भरतार करेजा थर-थर थर्रायौ
तीस रुपैया मन की सरसो बालम तुमने भरि लीनी
जाई बिरते पै मुन्नी की शादी पक्की कर दीनी
एजी रुपया ठहराये है तीन हजार
या तेजी की सौ मन सरसो तीन हजार रुपइया की
घर मे भरी धरी बोरिन मे अब बिक रही अढैया की
एजी रुपया टोटे मे गए डेढ हजार।
कैसे व्याह होय मुन्नी को चित मे चिन्ता छाय रही
सादी रुपी खडी है ऊपर भारी मैं घबडाय रही
एजी जाकी सुनवाई करे न सरकार।
नये समध्याने मे बालम एक खबर भिजवाओ जी
तीन हजार रुपैया ठहरे कछु कमती करवाओ जी
एजी वरना डूबैगी नाव मझधार।

पति-पत्नी मे कभी-कभी झगडा भी हो जाता है। गँवार पति अपनी पत्नी को मारता पीटता भी है। ऐसे ही एक दम्पति का वर्णन इस गीत मे है। पत्नी को पति के दुर्व्यवहार पर क्रोध आता है। वह अपने पीहर जाने की तैयारी करती है। पति जब क्षमा माँगता है तो वह रहने को राजी होती है—

मेरे ऐसी मारी लात ककनवा टूटा रे,
मैं तो पियर जाऊँगी, फिर कभी न आऊँगी
मेरे ऐसी ... ...
मैं तो चिठ्ठी भेजूँगा, मैं लिफाफा भेजूँगा,
मैं तो भेजूँ डबल तार तू दौडी आयेगी
मैं तो चिठ्ठी लौटा दूँ, मै लिफाफा लौटा दूँ
मैं लौटा दूँ डबल तार, फिर कभी न आऊँगी
मेरे ऐसी मारी ...
मैं तो नौकर भेजूँगा, मैं सिपाही भेजूँगा
मैं तो भेजूँ थानेदार, तू दौड़ी आयेगी,

मै नौकर लौटा दूँ, मै सिपाही लौटा दूँ
मैं लौटा दूँ थानेदार, फिर कभी न आऊँगी। मेरे ऐसी "...
मैं तो साईकिल भेजूँगा, मैं तो ताँगा भेजूँगा,
मैं तो भेजूँ मोटरकार, तू दौड़ी आयेगी
मै तो साईकिल लौटा दूँ मै तो ताँगा लौटा दूँ
मैं तो लौटा दूँ, मोटरकार, फिर कभी न आऊँगी
मेरे ऐसी.... ...
मैं तो भइया भेजूँगा मैं भतीजे भेजूँगा
मैं तो भेजूँ अपना बाप तू दौड़ी आयेगी,
मैं तो भइया लौटा दूँ, मैं भतीजे लौटा दूँ
मैं लौटा दूँ तेरा बाप, फिर कभी न आऊँगी। मेरे....... ...
मैं तो खुद ही आऊँगा, आके माँफी माँगूँगा
अपना माँनू, तुरन्त कसूर, तू दौडी आयेगी। मेरे' .....

पति दूसरे शहर मे नौकरी करता है। वह बारह वर्ष बाद लौटा। यात्रा के कारण इतना थका था कि रात को अपनी पत्नी से प्रेमालाप अथवा रति-क्रिया किये बिना ही सो गया। पत्नी को इससे बड़ा दु.ख हुआ। वह समझी कि उसका पति अब उसे नही चाहता। वह कुए मे गिर पडती है। पति कहता है कि तू जब बारह वर्षो तक मेरी प्रतीक्षा करती रही तो फिर केवल एक रात्रि क्यो न काट सकी ? यही बात इस गीत मे कही गयी है—

बारह बरस पिया चाकरी तै आये हमकूँ, क्या
गरम गेंडुआ गरम सौरिया तोसक तकिया सेर मिठाई लाई रे
सगरी रात मैंने चरन जो दाबै लै करवटिया सोये जी
सास हमारी ने चकिया ऐरी, हम धन पनियाँ चाले रे
सास हमारी ने रोटी कर लई हम धन पनियाँ चाले रे
छोटी ननद जब लौ उठि बोली जैलेओ भाभी भाभी जी
तुम जैलो अपने भैया ऐ जिमाय लेओ हम धन पनियाँ चाले रे
हाथ मे लै लई गागर सिर पै धरि लई एक मटुकुया री
एक डोल जब खेचन लागी धम्म कुआ मे गिर गई जी
ससुर हमारे तन उठि बोले जे का फ़्लै परि गई री
बारह बरस गोरी काटि लई है एक रैन नईं काटी री

बारह वर्ष बाद नौकरी से लौटने वाले पति के सम्बन्ध मे एक और गीत भी है। यह दूसरे ढंग का है। इसमे सास-ननद के व्यवहार से दुःखी होकर पत्नी अटारी

पर रूठी पड़ी है। पति उससे कहता है कि तुझे सास-ननद के व्यवहार का बुरा नही मानना चाहिये। तेरी सास गँवार है और ननद भोली है। मैंने मॉ के पेट मे पॉव पसारे है और मेरी वहिन ने मुझे गोद मे खिलाया है अतः तुझे उनकी बातो का बुरा नही मानना चाहिये। इस गीत मे यही बात कही गयी है—

पूरव से उठे बदरवा कहाँ जल बरसो जी
वरस्यौ ऐ वाई देस जहाँ पिया-प्यारे
भीजी है सिर की टोपी और रस बिजनी जी
वारे वरस पीछे आये वरी तन उतरे जी
अम्मा लाई भोजन बहन ठडौ पानी जी
भाभी लाई दूध के वेला और रस विजनी जी
लैजा अम्मा भोजन बहन ठंडौ पानी जी
लैजा भाभी दूध के वेला और रस बिजनी जी
सगु-सगु दीसै परिवारु धनि नाँय दीसै जी
त्यारी धन गरब गहीली अटरिया मे सोमे जी
पैरे है बजनी खडाऊँ खडाखड चढ गये जी
वैया पकर झकझोरी धनि नाँय जागै जी
अंगुरी पकरि झकझौरी अचक उठि जागौ जी
कौन तोतै बोले हैं बौल कौन दीनी गारी जी
अम्मा ने बोले हैं बोल बहन दीनी गारी जी
अम्मा मेरी मुगद गँमार वहन मेरी वारी जी
कुच्छा मे पसारै दोनो पाँय वहन ने खिलाये जी

पत्नी की विरहावस्था तथा विवशता का एक और गीत है। इसमें पूर्व गीतो जैसे ही भाव है किन्तु थोडा शब्दो का हेर-फेर है। इस हेर-फेर से प्रतीत होता है कि मौखिक होने के कारण लोकगीतो मे जोड-तोड, स्वतः ही होते चले जाते है। कही और कभी कुछ पंक्तियाँ जुड जाती है तो कही और कभी कुछ पंक्तियाँ स्वतः हट भी जाती है। यह गीत इसी हेर-फेर का उदाहरण है—

उड जा बैरी कागा रे मेरा राजा घर नाँये
पाँच वरस मेरे व्याह को हो गये सात वरस मेरे गौना
वारह वरस पिया चाकरी ते आये हमको क्या-क्या लाये रे,
गरम गेन्दुआ, तोसक तकिया, सूत को पलिका लाये रे,
सवरी रात मे चरन दवाये ले करवटियाँ सोये रे
हुआ सवेरा कागा बोलो हमने धरी चकियारा जी
सास हमारी ने रोटी करली हमने चून समेटो जी

ल्हौरी ननदिया यो उठ बोली भाभी रोटी खालो जी
तुम खायलो अपने भैया ए खवाये दओ हम पनियाँ भर लावे जी
पहला डोल कुआँ मे फाँसा गद्द कुआँ मे गिर गई री
अतई बैठन ते सुसर जी बोले कुल ऐ दाग लगाये गई री
धार काढ़ते जेठ जी बोले जे का पल्ले कर गई रे
गेंद खेलत ते देवर बोले भइयाए रँडुआ कर गई रे
सेजन पै ते राजा बोले मोहे तरसावे छोड़ गई रे

पति की प्रतीक्षा करते-करते बड़ी देर हो गयी किन्तु वह नही आया। उसके लिये की गयी सारी तैयारियाँ सास के उपयोग मे लानी पड़ गयी। पत्नी के मन मे पति के न आने से कसक सी रह गयी। वह उसके स्नान के लिये गर्म पानी, खाने लिये बढ़िया भोजन, पीने को पानी और घूमने को मोटर का प्रबन्ध करती है किन्तु वह नहीं आता। इन्ही परिस्थितियों का वर्णन निम्नलिखित लोकगीत मे बडी सुन्दरता से हुआ है—

तातो रे पानी धर्यौ रे ततैरा
देख-देख पैंडौ न्हवाय आई सास को
स्याम नईं आये हमारी मुलाकात को
छुट्टी न देखे पढावै दिन-रात को
सोने की थलिया में भोजन परोसे
देख-देख पैंडौ जिमाय आई सास को, स्याम०
बेटा कौ हुक्का चिलम सुलतानी
देख-देख पैंड़ो पिवाय आई सास को
राजा नईं आये, सैया नईं आये हमारी मुलाकात को।
झझझरै गडुआ गंगाजल पानी
देख-देख पैंड़ौ पिलाय आई सास को
चुन चुन कलियान सेज बिछाई
देख-देख पैंड़ौ सुवाय आई सास को, स्याम०
बारह हजारौ की मोटर सजाई
देख-देख पैंड़ौ घुमाय लाई सास को

आगरे मे जुलाहो की संख्या भी कम नही। गाँवो, कस्बो और नगरो मे इनकी प्रथक अथवा सम्मिलित बस्तियाँ है। इनके गीत भी बडे सरस और सुन्दर होते हैं। रुई धुनते समय या सूत कातते समय स्त्रियाँ मिल कर गीत गाती है या अलग-अलग अपने घरो मे गुनगुनाती रहती है। ऐसा ही एक गीत है—

उजेरिया खुल गयी रे, बिछाय आयी खाट
सास मेरी ठगिनी रे जरैगी दिन रात
हमारौ तेरौ का करैगी रे कटैगी दिन रात
जिठानी मेरी ठगिनी रे करैगी मोतै रार
हमारौ-तेरौ का करैगी रे पिटैगी दिन-रात
दौरानी मेरी ठगिनी रे लड़ैगी दिन-रात
हमारौ-तेरौ का करैगी कुटैगी दिन-रात
ननद मेरी ठगिनी रे, लड़ैगी दिन-रात
हमारौ-तेरौ का करैगी रे पिटैगी दिन-रात

घर के आस-पास लगे हुए पेड-पौधो मे बबूल के पेड भी है। वह जब-जब उधर से निकलती है तो बबूल के काँटो मे उसके वस्त्र उलझ जाते है। कभी उसका घूँघट खुल जाता है, कभी आँचल खुल जाता हैं तो कभी साडी खुल जाती है। अपनी इस विवशता का वर्णन वह बडे लजीले शब्दो मे करती है—

काँटो लगि जाय, अब नई जाऊँगी बमुरिया[1] तन कौ[2], काँटो लगि जाय।
बित तै आये सुसर हमारे, अये घुँघटा खुल जाय, घुँघटा खुल जाय।
अब नई जाऊँगी बमुरिया तन कौ, काँटो लगि जाय॥
बित तै आये जेठ हमारे, अये अँचरा खुल जाय, अँचरा खुल जाय।
अब नई जाऊँगी बमुरिया तन कौ, काँटो लगि जाय॥
बित तै आये देवर हमारे, अये जूडा खुल जाय, जूडा खुल जाय।
अब नईं जाऊँगी बमुरिया तनकौ, काँटो लगि जाय॥
बिततै आये बलम हमारे, अये साडी खुल जाय, जम्पर खुल जाय।
अब नई जाऊँगी बमुरिया तनकौ, काँटो लगि जाय॥

नई वहू को ससुराल अच्छी नही लगती। उसका पीहर सम्पन्न है, वहाँ के घर-आँगन बडे-बडे है कि किन्तु ससुराल का आँगन छोटा है। वह घबरा रही है। अपने ससुर, देवर और पति से वह हवा का प्रबन्ध करने, कोठा बनवाने और फूल लाने आदि के लिये कहती है—

मोरा अँगना है छोटो हवा नई आवै। टेक—
मोरे ससुरा को वेगि बुलावौ, घर मे पखा तुरत ही लगावौ
गली सकरी मे जी घबरावै। ऊँचे कोठे पै कोठा उठावौ, मोरा आँगना है ....

१ बबूल २ समीप

मोरे देवरा को वेगि बुलावौ, वाते कोठे पै पखा लगवावौ
मोरे साजन को वेगि बुलावौ, मोरी सेजन पै फूल सजावौ
मोरा अँगना है……… .

बहू के साथ दुर्व्यवहार हुआ है। वह स्वाभिमानिनी है। उसे कानून का भी कुछ-कुछ ज्ञान है। वह अपने ससुराल वालो के विरुद्ध मुकदमा लड़ने की तैयारी करती है। वह अत्याचारी ससुर, जेठ, देवर और पति को दण्ड दिलाना चाहती है—

ओरी सखी हम मुकदमा लडि है। टेक
पहिलो मुकदमा इटावा मे करि हो, ससुर की पगडी उतारि लऊँगी,
दूजो मुकदमा कलकत्ता मे करि हो, जेठ जी की मूछे मुडाय दऊँगी,
अपनी ठसक मे वैठे जो बालम, हम हूँ सखी अब अपनी पै अडि हैं
ओरी सखी…………………

तीजा मुकदमा हौं वम्वई में करि हो, देवरा को कुर्ता उतार लऊँगी
चौथी अदालत हौ दिल्ली मे करिहो, सइयाँ की सेखी उतार दऊँगी

पति सौत ले आया है। पत्नी को इससे बडा दुख. होता है। वह सौत लाने का कारण पूछती है। वह पूछती है कि मुझमे किस वात की कमी देख कर सौत लाये हो ? न तो मैं बाँझ हूँ, न लँगडी-लूली और न वदसूरत। फिर यह सौत क्यो लाये ?

मैं तो तोरे गले को हार राजा, काहे को लाये सौतनियाँ। टेक
जो मैं रहती बाँझ-वँझनिया, तौ ले आते सौतनियाँ
हमरे तो द्वै-द्वै लाल, काहे को लाये सौतनियाँ
जो मैं रहती लँगड़ी-लूली, तौ ले आते सौतनियाँ
मोरी कोमल लकती देह, काहे को लाये सौतनियाँ
जो मैं होती कारी-कलूटी, तौ ले आते सौतनियाँ
मोरे गुलाबी हैं गाल, काहे को लाये सौतनियाँ

सौत लाने के सम्बन्ध मे इसी प्रकार का एक और गीत है। इसमे कुछ अधिक वातें आ गई हैं। ये दोनो ही गीत आगरा नगर मे गाए जाते हैं। दोनो मे पहली पत्नी की विवशता और वेदना का चित्रण है। उच्च वर्गो अथवा अभिजात कुलो मे बहुधा एक ही पत्नी होती है किन्तु धोवियो, चमारो, भंगियो आदि मे दो-दो तीन-तीन पत्नियाँ रखने का रिवाज अब भी है। यह गीत इन्ही जातियो से सम्बन्धित है। अन्य जातियो में यह गीत केवल व्यग के लिए ही गाया जाता है।

मैं तो तेरे गले का हार सैयाँ क्यो लाये सौतनियाँ
जो मैं होती काली कलूटी तौ लाते सौतनियाँ

मैं तो चन्दा जैसी नारि क्यो लाए सौतनियाँ
मैं तो तेरे गले ... ..... ........
जो मैं होती कानी भेंडी तो लाते सौतनियाँ
मेरे हिरनी जैसे नैन सैयाँ क्यो लाए सौतनियाँ
मैं तो तेरे गले · .. .. ..
जो मैं होती लँगडी-लूली तो लाते सौतनियाँ
मेरी घोड़ी जैसी चाल सैयाँ क्यो लाए सौतनिया
मैं तो तेरे · .. · ... ... ...
जो मैं होती मोटी सोटी तो लाते सौतनियाँ
मेरी पतरी कमर बलखाय सैयाँ क्यो लाए सौतनियाँ।
मैं तो तेरे गले ..... · ..
जो मैं होती बाँझ-बभूटी तो लाते सौतनियाँ
मेरे खेलें दो-दो लाल सैयाँ क्यो लाए सौतनियाँ
मैं तो तेरे गलेका द्वार सैया, क्यो लाये सौतनियाँ। .. · .. .. .....

भारतीय नारी भाग्य पर बहुत भरोसा करती हैं। पिछले जन्म मे किये हुए कार्यो का फल वर्त्तमान जन्म मे अवश्य मिलता है। यह विश्वास भारत के लोगो मे पूर्ण रूप से समाया हुआ है। निर्धनता, अपमान, सतानहीनता आदि का कारण पिछले जन्म के बुरे कर्म अथवा दुर्भाग्य ही है। इसी विश्वास को प्रस्तुत गीत मे प्रकट किया गया है—

मैं किस विधि लिखूँ मुरारी करमन की रेखा न्यारी
नदी नाले मीठे बनाए समुद्र का पानी कर दिया खारी
मैं किस विधि · ...
वैश्या ओढ़े शाल दुशाला पतिव्रता फिरे उघारी
करमन की रेखा न्यारी
मैं किस विधि .. ...
चतुर नारि पुत्रन को तरसै फूहर जन-जन हारी
करमन की रेखा न्यारी
मैं किस विधि लिखूँ मुरारी ... ... ·
मूरख राजा राज करत है पण्डित होत भिखारी
करमन की रेखा न्यारी
मैं किस विधि ...... ......

कर्कश पत्नी मिलने पर पति की स्थिति बडी विषम और गम्भीर हो जाती है। उसके दुर्व्यवहार, लड़ने-झगड़ने और कटु वचनो से दुखी हो कर पति सोचता है कि मुझ विवाहित पुरुप से तो रंडुए ही अच्छे। ऐसे पत्नी होने पर तो विष पीकर मर जाना ही अच्छा है। प्रस्तुत गीत मे एक ऐसा ही पति की करुण दशा का वर्णन है। इससे परिवारिक और दाम्पत्य जीवन का अधकारपूर्ण पक्ष दिखायी देता है—

मोइ मिली करकसा नारि मोसे तौ रँडुआ मौज मे
काऊ से सीधी न भैया बोलती, अरे भैया दुखी है सब परिवार
मोसे से तो रँडुआ मौज मे··· ··· ····
भरकै पेट न खाना मिलै अरे भैया जब देखूँ तकरार
दो खाई दो रख दई अरे भैया सोवै है पाव पसार
जब कहूँ रोटी न करै अरे भैया मारे है फेक-अँगार
मोसें तो रँडुआ मौज मे ··········
नाँ कभी हँसती वाको देखूँ अरे भैया कभी न वोले करके प्यार
जा दिन कडवा वासें वोलूँ अरे भैया कुआ मे डूबन को तैयार
मोसे तो रँडुआ मौज मे ·· · ···
सास ननद वासे जो कहे अरे भैया एक की कहै हजार
माँ बाप ने न्यारा कर दिया अरे भैया भूल गया सुख प्यार
मोसे रँडुआ मौज मे ······ ········
सजि के द्वारे जाकै वैठती अरे भैया कोई न बोले वासे प्यार
ऐसी तिरिया से पाला पड गया अरे भैया पीयूँ जहर का जाम
मोसे तो रँडुआ मौज मे··· ············
मोय मिली करकसा नारि मोसे तो रँडुआ मौज मे ।

# भाषा-विज्ञान के आधार पर अध्ययन

किसी देश की स्वाभाविक भापा उसकी बोलचाल की ही भापा होती है। बहुधा शिक्षित व्यक्ति व्याकरण और सुधारवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करते रहते हैं। परिणामस्वरूप शिक्षित व्यक्तियों की शिष्ट भाषा भी शिथिल पड जाती है। उसकी भाव-व्यञ्जना की शक्ति समाप्त होने लगती है। लोक भापा को ग्रामीण कह कर हम उसकी उपेक्षा करते है, परन्तु उसकी बोलियो मे कितने ही शब्द ऐसे है जिनकी तुलना मे शिष्ट भाषा हिन्दी के शब्द आ ही नही सकते। लोकभाषा के शब्दो मे भावों को सफलता से व्यक्त करने की सामर्थ्य होती है।

भाषा-वैज्ञानिको ने लोक-भाषा को बडा महत्व दिया है। यदि वे ग्रामीण भाषा को छोड दें तो उनका कार्य ही नही चल सकता। भाषा का विकास, परिवर्तन आदि देखने के लिए ग्रामीण भापा से बहुत सहायता मिलती है। शब्दो की व्युत्पत्ति की खोज और उनका इतिहास जानना तो भाषा-विज्ञान का एक मुख्य अङ्ग है। इसमे भी बोलचाल की भाषा की बहुत आवश्यकता रहती है। भाषा-विज्ञान मे बोलियो का विशेष महत्व होता है। किसी भी भाषा का ठेठ रूप उसके ग्रामीण रूप मे ही मिलता है। भापा-विज्ञान के लिए भाषा का यह रूप बहुत महत्व रखता है। इसका अध्ययन ही भाषा-शास्त्र का मूल विषय है। इस दृष्टि से इन गीतो का अपना निजी महत्व है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे लोकगीतो का भापा विज्ञान के आधार पर अध्ययन करने के लिए मैंने कुछ लोकगीतो को ही चुना है। इन लोकगीतो मे प्रयुक्त शब्दो के आधार पर ही उनका विश्लेषण किया गया है। सम्भव है कि इस विश्लेषण मे कुछ व्याकरणीय रूप रह गये हो किन्तु फिर भी जितने शब्द आ गए है उनका यथोचित विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

## रूप-विचार

### संज्ञा

लिंग—प्रस्तुत गीतो मे प्रत्येक सज्ञा या तो पुल्लिग अथवा स्त्रीलिग के रूप मे प्रयुक्त हुई हैं। प्राणहीन वस्तुओ की द्योतक सज्ञाएँ, भी जिन्हे प्राय सस्कृत मे नपुसक लिग के अन्तर्गत रखा गया है, भी अपने स्वभाव और बोली के अनुसार स्त्री-

लिग अथवा पुलिंग मे ही समाहित कर लिए गए है। परन्तु इनका वर्गीकरण तथ्य की अपेक्षा प्रयोग पर अधिक आधारित है। जैसे—

| | |
|---|---|
| मसाल | —पुल्लिग |
| बेलन | —पुल्लिग |
| हल्दी | —स्त्रीलिग |
| पटली | —स्त्रीलिग |

प्राणि वाचक सज्ञाओ को स्त्रीलिग बनाने के लिए निम्न लिखित प्रत्ययो का बहुतायत से प्रयोग हुआ है—

**'ई' प्रत्यय—**

झुमका — झुमकी

**'इन' प्रत्यय—**

तमोली — तमोलिन

**'आनी' प्रत्यय—**

जेठ — जिठानी

देवर — दौरानी

**'इया' प्रत्यय—**

खाट — खटिया

**वचन**

प्रस्तुत गीतो मे दो वचन है—एक वचन और बहु वचन। आदरार्थक विशेषण तथा क्रिया के बहु बचन रूप भी एक वचन सज्ञा के साथ प्रयुक्त होते है। जैसे—

एक वचन – कगी लै अइयो

बहु वचन — बोले नही रात

**बिभक्ति प्रत्यय—**

प्रस्तुत गीतो मे विभक्ति प्रत्ययो का प्राय' अभाव है परन्तु यदा-कदा ऐसे रूप भी मिले है। जैसे—

कलियन — कर्म कारक (कलियो को)
सेजे — अधिकरण कारक (सेज पर)

कारकीय परसर्ग—

इन गीतो मे निम्नलिखित कारकीय परसर्ग प्रयुक्त हुए है—

कर्ता — ने[1]

कर्म तथा सम्प्रदान—

को — विलनवा को
सखनि को
रांगन को
वूअ को
माँ को

करण-अपादान—ते, से आदि

सम्वन्ध—

का, की, के, कूँ आदि —नगर के
—रस के
—घर के
—सोने का
—वागन की
—नथनी की
—सोने की
—वालम कूँ
—इलाइची कौ

## सर्वनाम

१ पुरुष वाचक सर्वनाम :—

(अ) उत्तम पुरुष.—

मूल रूप — मैं — हम
विकृत रूप —मोहि
सम्वन्ध वाची—मेरे—

---

१ मारो मारो मेरे यार मोहे घरवाली ने मारौ,

मेरा
मेरी
मोरी
मोरा
मोरै
मोरे
हमारौ
म्हारे
हमारे

(ब) मध्यम पुरुष—

१ मूल रूप—तू

तुम

सम्बन्ध वाची :—

तेरे
तेरी
तेरौ
तिहारी
तुम्हारा
तिहारे

(स) अन्य पुरुष—

वो
वोई
वा

२ निश्चय वाचक निकटवर्ती— जि, जा, या, ता[1]
३ सम्बन्ध वाचक सर्वनाम— जो, जिन्, जाइ[2]
४ प्रश्न वाचक— को, काए, किन, किने,[3]

---

१ जि सोइ गओ। या कूँ पोई दओ ॥
२ जो माँ गए सो तौ मैंई रहि गए। जिन तिन देखि जाइ कछु कहि गए ॥
३ को काए कूँ आए एँ, किन-किन कूँ है काज।
किने बुलायो ? का भयौ ? नेंकु गहौ रे लाज ॥

५. अनिश्चय वाचक— काऊ, कछुक,।[1]
६. निज वाचक— अपनो, अपुन।[2]
७. संयुक्त सर्वनाम— जो कोऊ, सब कछू।[3]

## विशेषण

सामान्यत. लोक गीतो मे विशेषण्य का रूप सज्ञा विशेष के साथ बदलता रहता है। सजा के लिंग का प्रभाव विशेषणो पर भी पडा है। कभी-कभी तो विवादास्पद शब्द का लिंग निर्णय करने के लिये विशेपण का प्रयोग करके ही निश्चय करना पड़ता है।

इन गीतो मे निम्नलिखित प्रकार के विशेपण पाये जाते है.

१. पूर्ण संख्यावाचक विशेषण .—

सोलह
अनेक

२. क्रम सख्या वाचक —

पैलो
दूजो

३. अपूर्ण संख्या वाचक —

पौआ[4]
तिहाई
आवो

---

१. काऊ नें दीन्यो कछुक, मोकूं आज बताय
सुनि-सुनि वाकी वात कूं गयौ सनाका खाय ॥
२. अपुन सबी अपुनौ खामेगे। गीत तिहारे नई गामेगे ॥
३. जो कोऊ आवैगो। सव कछू पावैगो ॥
४. पैलो महीना लगौ ऐ सखी क्या हुआ ?

× × ×

दूजो महीना लगौ ऐ सखी क्या हुआ ?
५. पौआ माँगि तिहाँई चाहै।
आवो का पुरौई चाहै ॥

३. सामान्य विशेषण—

पुराने
नई
गद्दैदार
सुन्दर
खूब
टेढी
सयाने
सारी
व्याकुल

**क्रिया :**

आलोच्य गीतो मे क्रिया के निम्नलिखित रूप स्पष्ट हुए है :—

१ वर्तमान निश्चयार्थ—

लागत
हो
है
आई

२. भूत निश्चयार्थ—

गयौ
रह्यौ

३. भविष्य निश्चयार्थ—

जायगी
लेगी
करैंगी
कुटैंगी
जरैंगी
करूंगी

४. सामान्य वर्त्तमान—

फड़क रह्यौ
चूम रही

५. सामान्य भूत—

बोल्यो
पिटवावै
रोवै
लीपै

६. सामान्य भविष्य—

आवेगे
जायगी

## अव्यय

१ क्रिया—विशेषण—

प्रस्तुत गीतो मे क्रिया-विशेषणो के रूप सर्वनाम, विशेषण अथवा क्रिया विशेषणो के आधार पर निर्मित हुए हैं।

(क) काल वाचक—

अभी

(ख) स्थान वाचक—

जितै
तितै

(ग) रीतिवाचक—

नेकु

(घ) निषेध वाचक—

मत
न
ना

(ङ) कारण वाचक—

काहे —

(च) परिमाण वाचक—

सब —
नैंक —

(छ) प्रश्न वाचक—चों[1]

(ज) प्रकार वाचक—तरियाँ, अलग[2]

२. समुच्चय बोधक अव्यय —

समुच्चय बोधक में निम्नलिखित प्रयोग मिलते हैं—

औंर
तो
कैं
अरु
औ
औरु

इन लोकगीतों में शब्दों की भी सीमा है अतः व्याकरण के समस्त रूपों का इनमें आना सम्भव नहीं। गीतों की कुछ निश्चित सी तुकें होती हैं, उनमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों की बहुधा पुनरावृत्ति ही होती है और टेकें भी जानी-पहिचानी सी ही हुआ करती हैं अतः क्रिया के सभी रूपों को उनमें ढूँढ़ना उचित नहीं होगा। यही कारण है कि विस्तृत विवेचन न कर इन पंक्तियों में संक्षिप्त परिचय ही देने की चेष्टा की गयी है।

---

१. लल्ला को बहुअल नाचत चों नई ?
२. वेदरदी बालम की तरियों कोंउ न होवै ऐसौ।
   छुद अलग्ग है गयौ बहू का मोहूँ छुज है जैसौ ॥

## ६. भाषा, व्याकरण और ध्वनि के आधार पर

### लोकगीतों का अध्ययन

लोक-काव्य की आत्मा उसकी सरलता, स्वाभाविकता और सरसता है। लोक-गीत रस से ओत-प्रोत होते है किन्तु उनमे विभाव, अनुभाव और सचारी भावों को ढूँढने के प्रयास नही करने चाहिये। इन गीतो मे रस समय और लय के अनुसार ही आता है। अलकारो के विषय मे भी यही वात सोच लेनी चाहिये। लोकगीतो मे अलंकार स्वतः ही कही-कही आ गये है, उन्हे कही वल पूर्वक सप्रयास लाने की चिन्ता नही की गयी है। जो अलकार आये हैं वे अधिकाश मे रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और श्लेप ही हैं। लोकगीतो मे छन्द-योजना भी नही रहती, तुको को भी कम महत्व दिया जाता है। गीतो को विशेष रूप से लय मे ही वाँधा जाता है। लय के कारण ये गीत संगीतमय हो जाते है। इनमे ध्वन्यात्मकता होने के कारण एक स्वाभाविक प्रवाह, सरसता और सरलता रहती है।

अलकारवादी कवियो की प्रवृत्ति ठूँस-ठूँस कर अलंकार भरने की होती है। केशव की रामचन्द्रिका इसकी उदाहरण है। किन्तु लोकगीतो मे अलकार स्वयं आ जाये तो आ जायें, लोकगीत-गायक उनके लिये उत्सुक नही रहता। यदि लोकगीतो मे कही अलंकार आ भी जाते हैं तो वे कवि-परम्परा-युक्त नही होते, उनमे मौलिकता होती है। नेत्रो की उपमा कमल, मछली, खंजन और हिरन से देना लोकगीत-गायक को रुचिकर नही। वह आँखो को 'निवुआ की फाँकें' या 'अमियाँ की फाँकें' कहता है। उपमान भी लोकगीतो मे अपने वातावरण और स्थान के अनुकूल ही होते हैं। सरसो के लहराते खेत पीली चूनरी जैसे, अरहर के खेत और कुँजो जैसे आम के वाग सजे-सजाये मंडप से लगते हैं।

लोकगीतो मे वैसे तो लगभग सभी रस पाये जाते है किन्तु प्रमुखता शृंगार और करुण रसो की रहती है। वैवाहिक प्रसग मे हास्यरस की प्रधानता रहती है। भजन और जात के गीतो मे शान्त रस मिलता है। 'आल्हा' मे वीर रस का रूप प्रकट होता है।

छंदो की दृष्टि से लोकगीतो का अध्ययन करने से विदित होता है कि ये छदो के वन्धन मे परे हैं। लोकगीत स्वतंत्र रूप से जगल के पुष्प की भाँति उत्पन्न

होते हैं और उसी वातावरण मे उनका विकास होता है। लोकगीतों के निर्माताओं ने न तो छन्द-शास्त्र को पढ़ा और न जगण, मगण आदि को ही समझने बैठे। उन्होंने मात्राओं और तुकों का भी विचार नहीं किया। उनकी भाव-धारा तो पर्वतीय निर्झर की भाँति प्रवाहित हुई है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनमे छन्द नहीं केवल लय है।"[1] यह बात सत्य ही है। लोकगीतों में लय ही प्रधान होती है। लोक-गायक इन गीतों को गाते समय कहीं ह्रस्व को दीर्घ और कहीं दीर्घ को ह्रस्व बना देते हैं। कहीं किसी पद में अक्षरों की कमी पड़ने पर अपनी ओर से भी कुछ-न-कुछ जोड़ देते हैं

तुक के प्रयोग से सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमे कविता या गीत स्मरण रखने मे सहायता मिलती है। तुकान्त गीत सुनने मे भी मधुर होता है। वैसे कविता के लिये तुक की आवश्यकता तो नहीं होती फिर भी इसके प्रयोग से नाद-सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। लोकगीत अधिकांशतः तुकान्त होते हैं, किन्तु इन तुकों पर अधिक ध्यान भी नहीं दिया जाता कहीं पद के अंत में स्वर मिलते है तो कहीं व्यंजन। कहीं प्रत्येक पंक्ति मे एक ही शब्द या शब्दावलि का प्रयोग मिलता है तो कहीं विषम पंक्तियों मे। लोकगीतों में प्रायः ओ हो हो, सखीरी, दइया री, दइया री, रामा हो, रे, री, हिया, पिया, जिया आदि शब्द पंक्तियों के अंत में आते हैं।

वास्तव में लय ही लोकगीतों की आत्मा है। लय के विना ये गीत प्राणहीन और प्रभाव रहित हो जाते हैं। जब स्त्री-पुरुष लोकगीतों को लय मे गाते हैं तो इन गीतों की मात्राओं, छंदों, तुकों आदि की समस्त त्रुटियाँ समाप्त हो जाती हैं। उनके कल कंठ से गीतों का लय-पूर्ण गायन गीतों में ऐसी सरसता भर देता है जिसे सुनकर श्रोतागण मुग्ध हुए विना नहीं रह सकते।

गीतों की लय अलग-अलग होती है। भिन्न-भिन्न गीत भिन्न-भिन्न लयों मे गाये जाते हैं। लय दो प्रकार की होती हैं—द्रुत लय और विलम्बित लय। कुछ गीतों को द्रुत—शीघ्रतापूर्वक लय मे गाया जाता है। कुछ गीत ऊँचे (तार) स्वर में गाये जाते हैं और कुछ मंदस्वर में। आल्हा, रसिया, होली आदि को तार स्वर मे गाया जाता है और स्त्रियों के गीत सोहर, जनेऊ विवाह आदि मन्द स्वर मे गाये जाते हैं। स्त्रियों के ये गीत सामूहिक रूप मे गाये जाने से भी तार स्वरता प्राप्त कर लेते हैं।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से लोकगीतों का बड़ा महत्व है। लोक-साहित्य भाषा-शास्त्री के लिये बड़ा उपयोगी, सहायक और मूल्यवान होता है। लोक-साहित्य

---

१ कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्राम गीत) पृ० १ —रा० न० त्रिपाठी।

के सग्रह से भाषा-शास्त्रियो के शोध-कार्यो मे सहायता मिलती है। लोकगीतो मे प्रयुक्त शब्दो की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक गुत्थियाँ सुलझायी जा सकती हैं। इनमे प्रचलित शब्दो द्वारा हिन्दी के अनेक शब्दो की विकास-परम्परा को हम वैदिक सस्कृत से सम्बन्वित कर सकते है। अनेक शब्दो की ऐतिहासिक परम्परा जानने के लिये लोक-साहित्य का अध्ययन बहुत उपयोगी होता है। वैदिक सस्कृति और सस्कृत के अनेक शब्द कुछ परिवर्तित होकर लोकगीतो मे आ गये है।

लोकगीतो के अध्ययन से हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि हो सकती है, इसका भाषा-भण्डार समृद्ध हो सकता है। नये-नये शब्दो और मुहावरो को ग्रहण करने से हमारी भाषा की भाव-प्रकाशिका शक्ति बढ़ सकती है। ग्रामीण घरो मे नित्य नवीन शब्दो के प्रयोग सुने जा सकते है। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसाय करने वाली जातियाँ—चमार, लुहार, बढई, धोबी, काछी आदि—अनेक पारिभाषिक पदावली व्यवहार करती हैं।

लोकगीतो मे इतनी विशाल शब्द-सम्पत्ति छिपी पडी है, उसका ऐसा अक्षय स्रोत है जिसका प्रवाह कभी सूख नही सकता।

आगरा जिले की बोली मुख्यत विशुद्ध ब्रजभाषा का सीमातीय रूप है। पूर्वी तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग छोड़कर शेष जिले की बोली को स्टेंडर्ड तथा केन्द्रीय ब्रज के अन्तर्गत माना जा सकता है। जिले की बोली सम्बन्धी सीमाएँ इस प्रकार है—उत्तर मे मथुरा की केन्द्रीय ब्रज है, पश्चिम मे ब्रजभाषा का भरतपुरी उपरूप है, दक्षिण मे ग्वालियर तथा बुंदेली उपरूप बोले जाते है तथा पूर्व मे इटावा तथा मैनपुरी जिलो की कन्नौजी बोली का प्रभाव है। इस प्रकार की बोली एक ओर तो ब्रज के शुद्ध तथा स्टेंडर्ड रूप से घिरी है, तथा शेष तीनो ओर ब्रज भाषा के सीमातीय रूप अथवा उपरूप प्रचलित है।

आगरा की वर्त्तमान ब्रज बोली मुख्यरूप से मौखिक ही है। यहाँ ब्रज-भाषा के उत्थान के समय भी कोई विशेष साहित्य ब्रज-भाषा मे नही लिखा गया। रीति-काल मे कचौरा के रूपराम ने अवश्य कुछ सुन्दर कवित्त और सवैये लिखे थे। आगरा नगर से सम्बद्ध कुछ मुसलमान कवियो ने भी ब्रजभाषा मे कुछ रचनाएँ की थी। आधुनिक काल मे सत्यनारायण 'कविरत्न' को ही ब्रज-भाषा का कवि मान सकते है। लोकगीतो मे अवश्य यहाँ ब्रज-भाषा पनपी और फैली है।

आगरा की ब्रजभाषा पर धर्मगत, जातिगत और वर्गगत प्रभाव भी पडे है। आगरा नगर और यहाँ के कस्बो मे भाषा मोहल्ले-मोहल्ले मे अलग-अलग रूप ले बैठी है। यहाँ भाषा का विभाजन मुख्य रूप से दो खण्डो मे हुआ है—हिन्दू मोहल्लो मे और मुस्लिम मोहल्लो मे। हिन्दुओ मे भी अलग-अलग बस्तियाँ हैं—जैसे माईथान मे खत्रियो की बस्ती, गोकुलपुरे मे गुजरातियो की बस्ती, छिलीईंट घटिया पर

काश्मीरी वस्ती, कचहरीघाट-बेलनगज मे वैश्यो की वस्तियाँ, रावतपाडा-सेठ गली मे साहूकारो की वस्तियाँ आदि। इस प्रकार के विभाजन से एक प्रकार का सनातनी प्रभाव पडता चला गया है और बोलियाँ सुरक्षित रहती गयी है। यहाँ की बोलियो के भेद भी स्पष्ट है। ये भेद स्त्रियो की बोली मे अधिक सुरक्षित रहते हैं।

आगरा मे साधारणत हिन्दू स्त्रियाँ व्रजभापा बोलती हैं किन्तु पुरुप प्राय. दो भाषाएँ बोलते हैं। पुरुष घरो मे तथा अपने अन्य सीमित क्षेत्रो मे फारसी, संस्कृत तथा अग्रेजी शब्दो के साथ व्रज का प्रयोग करते है तथा वाहर, हाट तथा कार्यालयो मे खड़ी बोली का प्रयोग करते है। काश्मीरी, खत्री तथा उच्च शिक्षित हिन्दुओ के घरो मे फारसी अथवा सस्कृत तथा स्थानीय बोलियो के मिश्रण के साथ खड़ी बोली अपना ली गयी है। आगरा नगर मे स्वतंत्रता प्राप्त होने तक मुसलमानो की पर्याप्त सख्या थी। इनमे पढ़े-लिखे और अपढ मुसलमान थे। अधिकाँश पढ़े-लिखे मुसलमान पाकिस्तान चले गये। अब बहुत कम पढ़े-लिखे मुसलमान रह गये है किन्तु कम पढ़े और विना पढ़े मुसलमानो की सख्या अधिक है। नगर के वृद्ध हिन्दुओ की बोली पर मुसलमानो की उर्दू का प्रभाव अधिक है। अव शुद्ध खडी वोली हिन्दी अधिक पनपती दिखायी दे रही है। वेपढ़े मुसलमानो की भापा उनके आसपास रहने वाले हिन्दुओ पर अब अधिक प्रभाव नही डाल पा रही। यहाँ के वेपढ़े हिन्दू व्रजभाषा, खड़ीवोली और बिगड़ी उर्दू शब्दावलि का प्रयोग करते है। आगरा के लोकगीतों पर भी इसी प्रकार के प्रभाव पडते चले आये है। वैसे तो आगरा के लोकगीतो के शब्द समूह का अधिकांश भाग भारतीय आर्यभापा के शब्द समूह से ही वना प्रतीत होता है किन्तु यहाँ ऐसे शब्द भी वहुत मिलते है जिनकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट है। विदेशियों के सम्पर्क से बहुत से फारसी-अरवीशब्द भी घुल-मिल गये हैं और आधुनिक काल मे अनेक अग्रेजी शब्द भी अनायास ही आ गये है। इनमे कुछ शब्द अग्रजी के प्रत्यक्ष प्रभाव के मिट जाने पर भी बोली में बने रह गये है। साधारणत ये शब्द तद्भव रूप मे विदेशी सस्थाओ से सम्बन्धित भावो को ही प्रकट करने के लिये आये है, जैसे—कचहरी, दफ्तर, पुलिस, फौज, कप्तान, अफसर आदि। विदेशी प्रभाव के कारण देश मे प्रयुक्त होने वाली दैनिक आवश्यकताओ की वस्तुओ के नाम भी अधिकतर विदेशी है, जैसे पतलून, कोट, पाउडर या पौडर, क्रीम, कालर, नक-टाई, व्रुश, मोटर कार, पैन्सिल, स्लेट आदि।

आगरा मे वोले जाने वाले कुछ शब्द इस प्रकार के है जो केवल आगरा और उसके आसपास के क्षेत्र मे ही वोले जाते है। छोरा, वैअरवानी, कलेवा, पालकी और थरिया आदि शब्द आगरा और व्रज प्रदेश में ही मिलेगे। ये शब्द व्रज प्रदेश के बाहर नही सुनायी देते। आगरा में मुसलमानो का राज्य अधिक समय तक रहने तथा स्वतन्त्रता से पूर्व उनकी सख्या भी अधिक रहने से यहाँ की लोकभापा मे

अरवी-फारसी के भी अनेक शब्द आ गये है। किन्तु इन शब्दो को तद्भाव रूप मे ही लोकभाषा ने स्वीकार किया है फारसी के इ उ ई ए ऊ ओ अइ अउ मे साधारणतः कोई परिवर्तन नही हुआ है। और ये इ उ ई ए ऊ ओ ऐ औ के रूप मे पाए जाते है। किश् मिश् को किम्मिम्, ज़ुल्म् को जुलुम्, काजी को काजी और फौज को फउजू कहा जाता है।

ध्वनि पर विचार कर विदित होता है कि आगरा जिले मे निम्नलिखित ध्वनियां मिलती हैं—

अ, अ, आ, इ, इ, ई, उ, उ, ऊ, ए, ऐ, एॅ, एँ, ओ, आॅ, आँ, ओ।

मात्रा—स्वर लघु, दीर्घ तथा अतिरिक्त दीर्घ होने है। जैसे-इ, ई, ई, ऽ

ध्वनियो को अधिकाधिक अनुनासिक करने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। वैसे अनुनासिकता के लिए कोई आग्रह नही दिखाई देता। जैसे एक ही व्यक्ति 'गुनाँ' भी कहता है, गुनाँ' भी कहता है और कभी 'गुँनाँ' भी कह देता है। सयुक्त स्वरो का प्रयोग नही के बरावर होता है। अइ (ऐ) तथा अउ (औ) के स्थान पर अर्धविवृत ध्वनियाँ 'ऍ' और 'ऑ' प्रयुक्त होती है। अत्य 'अ' स्वर का उच्चारण प्रायः नही होता कभी-कभी एक ही शब्द व्यजनात रूप तथा लघु उकार अथवा इकार से युक्त एक ही व्यक्ति की वोली मे आ जाता है। जैसे—कभी तो वह व्यक्ति 'टोर' कहता है तो कभी 'टोरि' कह देता है।

'अे' उदासीन स्वर है जो शब्दात मे ही प्रयुक्त हुआ करता है—वहुअे। साधारणत अत्य 'अ' का प्रयोग नही होता किन्तु संयुक्त ध्वनि अथवा अनुस्वार के वाद और मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनियो मे अत्य 'अ' का प्रयोग अवश्य हो जाता है। जैसे—चक, खद्दर, दाढ। मात्रा की दृष्टि से स्वर लघु, दीर्घ तथा अतिरिक्त दीर्घ मिलते है। जैसे—अव्, मोडा, रही ऽ।

आगरा की वोली के उच्चारण मे एक वात और विशेष है। वोली मे समीकरण (ASSIMILATION) की प्रवृत्ति व्यापक रूप से दिखायी देती है। समीकरण शब्दांत की त् अथवा न् ध्वनि के साथ ही अधिक होता है। समीकृत होने वाली ध्वनियो मे न्, म्, र्, द् प्रमुख है। जैसे—हिन्न्, एकास्सी, दस्सन, वान्नि आदि।

इसी प्रकार सन्धि की प्रवृत्ति भी अत्यन्त व्यापक है। उच्चारण के समय वहुत से शब्द व्याकरणात्मक दृष्टि से अलग-अलग होने पर भी ध्वन्यात्मक दृष्टि से एक हो जाते हैं। जैसे—फिम्साव (फिर् साव्), पास्मैं (पाँच में) डाज्जइए (डार जइए), कद्ठनु (कह् ऊठनु)। एक लोकगीत की पक्तियाँ हैं—

विन्ने[1] कई ल्याऊ[2] लरिकाए[3],
वैठि अभाल्[4] गए पलिका पै।

कही-कही शब्दो की सन्धि कर उनका रूप सक्षिप्त कर देने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। जैसे—

थुथ्थोरे[4] ही कई ल्याए पै दद्दस[5] लडुआ भइया।
इतन्तनो[6] कैसे खामिगे, रे दइया! रे दइया!।

कही-कही उच्चारण के समय ध्वनियाँ वढ़ा भी ली जाती है—

कल्लि[7] भुराओ[8] अइयो तोकू[9] असिय[9] दैऊ[10] रुपैया।

कुछ लोग ध्वनियो का लोप भी कर देते है। जैसे—

भिहाल्[10] पीसौ सिग नाज[11] सुजान
सिदौसी जामेगे हम जात[12]

अपिनिहिति (EPENTHESIS) के उदाहरण भी आगरा की वोली मे बहुधा देखे जा सकते हैं। कुछ लोग शब्दो को अपने अलग ढग से वोलते हैं। इ' 'उ' 'य' आदि बीच मे लगा कर शुद्ध शब्दो का उच्चारण विगाड़ने की आदत आसपास के अनेक गाँवो मे पाई जाती है। जैसे—

देहाइति[13] में नराइत्[14] नाँयने[15] लइयो

ग्रामीणो की बोली मे एक विशेषता यह भी है कि वे किसी भी शब्द को अपनी सुविधानुसार ही बोलते हैं। ऐसा करने मे चाहे ध्वनि-विपर्यय भले ही हो जाय कुछ उदाहरण ध्वनि-विपर्यय के निम्नलिखित है।

हम गए हनाइबे[16] जमना जी
वल्दि[17] गई साफ़ी-धोवती

और भी—
एकु खाँप[18] माँगी अमियाँ की
मो पै फैंको छुकला[19] रे

---

१. विन् ने २. लें आउ ३ अभ् हाल ४ थोरे-थोरे ५ दस-दस ६ इतनों इतनों ७ कल ८. भोर ९ अस्सी १० अभिहाल् (अभी हाल) ११ अनाज १२. यात्रा (जात्रा) १३ देहाति, १४ बरात् १५. नाँनें १६ नहाइवे १७. वदलि १८. फांक् १९ छिलका

ध्वनि-विपर्यय के अतिरिक्त ध्वनि-परिवर्तन भी आगरा की बोली मे मिलता है। यह प्रवृत्ति अल्पप्राणीकरण (DEASPIRATION) की कही जाती है। अनेक शब्दो मे मे 'ह्' का लोप हो जाता है। कही 'ह्' का स्वर वाला अश पूर्ववर्ती ध्वनि के साथ मिल जाता है, कही, ,ह्' का 'य्' मे भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तनो के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

आजु दिनु मोने को ऊयो माराज[1]

× × ×

सुनि लेउ कानी[2] पोदा रानी

× × ×

सुनो साऊकार[3] कछु वाति कई[4] तुम सो

वैसे ब्रज-भाषा मे ल् ध्वनि का र् मे परिवर्तित हो जाना तो उसका साधारण लक्षण है ही (जैसे 'काजल' का 'काजर्) किन्तु कही-कही 'र्' का भी 'ल्' मे परिवर्तन हो जाता है। जैसे—'जरुरत्' का 'जरूलत्'। 'ल्' का परिवर्त्तन 'न्' मे भी हो जाता है। जैसे—

मोरे सैयाँ नवद्दारु[5] रे या जन्दी-जन्दी[6] अइयो

कही व्यंजन ध्वनियो का लोप हो जाता है और उस स्थान पर केवल वे स्वर ही शेष रह जाते है जो उन व्यजनो के साथ लगे होते हैं। जैसे—

गडइया[7] ने मिग्गरई[8] छेरी चुराई।

इल्लाए[9] हम आर्[10] ने मिग छिनाई॥

यहाँ 'गडरिया' शब्द मे से व्यजन 'र' का लोप हो गया, 'सिग् घर् की' मे से 'क' का लोप हो गया, 'चिल्लाए' मे से 'च' का लोप हो गया और 'यार' मे से 'या' का लोप हो गया।

इस प्रकार आगरा के लोकगीतो मे प्रयुक्त बोली के ध्वनि समूह का विश्लेषण कर विदित होता है उच्चारण की सुविधा के लिए ही यहाँ अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। रेफ तथा सयुक्त ध्वनियो को बचाकर बोले जाने की प्रवृत्ति यहाँ के लोक-जीवन मे है। यहाँ के ध्वन्यात्मक परिवर्तन बोली की प्रवृति के अनुकूल ही होते रहे है। किसी भाषा या बोली के ध्वन्यात्मक गठन मे ही उसकी सरसता या कर्ण-कटुता का पता लगता है। वैसे ब्रज-भाषा बडी सरस और श्रुति-सुखद् मानी जाती है किन्तु ब्रज-भाषा का रूप आगरा मे इतना मधुर नही रह सका। यहाँ इसमे दीर्घ और अर्द्धविवृत स्वर अधिक आ गये है। जिनसे यह अपना माधुर्य गँवा बैठी है।

---

१ महाराज २. कहानी ३. साहूकार ४ कहीं ५ लंवद्दारु ६ जल्दी ७ गडरिया की ८ सिग्घर् ६. चिल्लाए १० यार्।

## तृतीय अध्याय

# 1. लोक-गीतों का काल-निर्णय तथा उनमें तत्कालीन, सामयिक तथा स्थानीय परिवर्तन एवं उनके कारण

"सफल साहित्य अपने युग का परिचायक तो अवश्य होता है, पर वह सामयिक नही होता।" ऐजरा पौंड के इस कथन मे वहुत वडा सत्य निहित है। जब यह कहा जाता है कि लोक गीत अनेक पीढियो से चले आते है तो हम यह मानकर नही चलते कि आज से बहुत पहले इन गीतो का निर्माण हुआ और फिर उसके पश्चात् नये लोकगीतो का सृजन कभी नही हुआ। वहुत से गीत वहुत पुराने होते हुए भी नवीन से ही लगते हैं। ऐसा इन गीतो के स्थायी महत्व के कारण ही होता है। यदि वे अपने युग के सामयिक चित्र मात्र होते तो न वे चिरकाल तक जीवित रह सकते और न आज भी नवीन प्रतीत होते।

लोकगीत के निर्माण मे पारिवारिक जीवन की स्नेह-धारा एव घृणा, विजय एव पराजय, सामाजिक उत्सवो का उल्लास और वेदना के क्षणो के अश्रु सभी तथ्य सहायक हुआ करते हैं। बहिन-भाई, देवर-भौजाई, ननद-भावज, सास-वहू, आदि सभी लोकगीत के दर्पण मे अपनी सामाजिक रूपरेखा को लिए चलते-फिरते प्रतीत होते है। जितने जीवित वे अपने युग मे थे उतने ही इस युग मे भी है। विभिन्न धन्धो मे लगे हुए लोगो का व्यक्तित्व लोकगीतो मे खूब उभरा। इसके लिए हमे विभिन्न धन्धो में लगे हुए लोगो का भी अध्ययन करना चाहिए। ग्रामीणो के रहन-सहन, उनके सोचने के ढग सामन्तशाही सामाजिक व्यवस्था का दबदबा और उसके विरुद्ध उठती हुई प्रतिरोध की आवाज—ये सब लोकगीत की बदलती हुई परम्परा के प्रतीक है। प्रत्येक त्यौहार अपने गीत साथ लाता है और इसके ताने-बाने मे विविध जन समुदायो की समस्याएं अंकित रहती है।

लोक-कला मे दरवारी कला की सी वारीकियाँ नही रहती। जन-शक्ति की सफल अभिव्यक्ति ही लोक-कला की अभिव्यक्ति रही है। और यही बात हम लोकगीत का अध्ययन करते समय अनुभव करते हैं। यो लगता है कि प्रत्येक पीढी की भावनाएं समय-समय पर पुराने गीतो मे निहित होती चली जाती है।[1]

---

१. वाजत आवै ढोल—देवेन्द्र सत्यार्थी

लोकगीतो मे पचायनो की प्रशसा, अहीरो के विरहे, धोवियो के गीत, सावन की मल्हारे, युद्धो के प्रभाव, मँहगाई, प्रणय, मिलन और सुहागरात तक के चित्र मिलते है। धोवियो के गीत पूर्वी उत्तर प्रदेश मे अधिक सुन्दर और सरस होते है। आजमगढ मे धोवियो का विरहा है—

विरहा का मोटरी उठाउ परमेसरी
लेइ चलु धोविया दुआर
आधा तो विरहवा जे धोवी मटिअव लेन
कि आधे मे दुनियाँ ससार

वारावकी का धोवी एक की जगह चार पत्नियाँ चाहता है—

धोवी क चहिये चारि मेहरिया
एक घर का एक घाट
एक मेहरिया रोटी पकावे
एक विछावे खाट
दुलहिन, एक विछावे खाट
चिरई, एक विछावे खाट

धोवियो का 'छिओ राम' बहुत प्रसिद्ध है। इस टेक पर अनेक गीत गाये जाते है। वारावकी के धोवी की कल्पना इस 'छिओ राम' के आधार पर बहुत ऊँची हो गई है—

छिओ राम छीओ
छिओ राम छीओ
अगिया चुलिया मैली रे हुइ गई
विन धोवी को गाँव
कै धुविया पिअ लाय वसावौ
कै धुविया के जाँव
छिओ राम छीओ

अवधी विवाह-गीत मे सुहागरात का सुन्दर चित्र है—

आजु सोहग कै रात चन्दा तुम उइहौ
चन्दा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ
मोर हिरदा विरस जनि किहेउ मुरुग मति वोलेउ
मोर छतिया विहरि जनि जाइ तु यह जिनि फाटेउ
आजु करहु वडी राति चन्दा तुम उइहौ
धिरे धिरे चलि मोर सुरुज विलम करि अइहौ

निस्सन्देह गाँवो की पृष्ठभूमि मे ऐसे लोकगीत उभरते है जिनकी चित्र-सुलभ सूक्ष्म रेखाएँ मन पर एक जादू सा कर देती है। निधनता के भारी बोझ तले दबा हुआ मानव जब सिर उठा कर चाँद-सूर्य को उदय होते हुए देखता है तो उसकी कल्पना सजीव हो उठती है। निस्सन्देह सुहागरात का उपर्युक्त गीत किसी अन्तर-राष्ट्रीय लोकगीत सग्रह मे एक बहुमूल्य वस्तु सिद्ध हो सकता है।

जीवन की गति बदल रही है। अब तक भारतीय गाँव दुनिया से अलग-अलग भाग्य-चक्र पर विश्वास करता हुआ दबक कर जीवन व्यतीत करता रहा था। अब राजनीतिक परिस्थितियो के अनुसार सामाजिक पृष्ठ भूमि भी बदल रही है। अब जो लोक-साहित्य जन्म लेगा उसकी हैसियत सामयिक न होगी।

लोक-जीवन की अकृत्रिम रस-भरी वार्ता, जीवन की विजय-पराजय की स्वाभाविक कथा—अधूरी वासनाएँ जो हमारी माटी को जकडे है—जो हमारी भावना और कल्पना को अब तक पकडे है, वही लोक-साहित्य है। लोक-साहित्य बनमाला का वह वल्कल वसन है जिसमे बनावट की गध नही, **'इयमधिक मनोज्ञा वल्कले नापि तन्वी'** रूप की वह मनोहर झाँकी है जो वल्कलो मे ही फूट पड़ी है। हिमालय के शिखरो से स्वयमोद्भूत वह पवित्र गगा-धारा है जो अपनी चाल से चल पड़ी है लोक-कल्याण के लिये, वर्षा ऋतु मे तैरते मेघो से चमक उठी वह दीप्तिमयी चाँदनी है जिसमे जन-जन के मन को चमत्कृत कर देने की शक्ति है। लोक-साहित्य गोरी के गालो पर लगी प्यार की वह स्पष्ट मुहर है जो लजीले पर्दे मे आते आते विकृत हो जाती है। वन-फूल के वैभव को कृत्रिमता के नये-तुले गमले मे फिट करके हमारी आत्मा क्षण भर के लिये भले ही हँसी-आनन्द का अनुभव करले पर अत में उस हँसी पर हँसी ही आयेगी। नैसर्गिक सत्य ही ससार के खुरदरेपन को सहन करने की क्षमता रखता है। तरुओ की शाखा पर बैठी कपोतिनी से मानवी को ईर्ष्या नही होती क्या ? नील गगन मे वह मनचाही दिशा की ओर उड़ान भर सकती है किन्तु मानवी के पाँवो मे पडी है लाज और चिन्ता की शृ खलाएँ। सुसस्कृत भाषा और सभ्यता के विकास ने हमारे जीवन के स्वाभाविक विकास, हृदय के स्वाभाविक उल्लास और प्रकृति के मधुरिम गीतो को भुला ही दिया है।

"सैयाँ किवरिया खोल कि रस की बूँदा झरै"

"बूँदा झरै" मे मदोन्मत्त यौवन का कितना वेग है ! ऐसी बात कृत्रिम भाषा वाले कवि हजार बार कहकर भी नही कह पायेगे।

सत कबीर का काव्य लोक-जीवन, लोक-भाषा का ही तो है—

"राम मेरे पिउ मै राम की बहुरिया"

इसमे "वहुरिया" शब्द मे जो अभिव्यक्ति है, जो रस है वह, पत्नी, वहू और श्रीमती में नही आसकता।

बुंदेली-कवि ईसुरी ने कहा—

मेरे मन की हरन मुनैयाँ, आज दिखाती नइयाँ
पत्तन-पत्तन ढूँढ़ि फिरी है, वैठी कौन डरइयाँ—

लोकगीतों के आधार पर किसी समुदाय विशेष के इतिहास-निर्माण का प्रयत्न करना भी त्रुटिपूर्ण हो सकता है। सूक्ष्म काल्पनिक सूझ के अभाव मे आदिम मस्तिष्क अपने चारों ओर के दृश्यमान जगत् से अधिक प्रभावित होता है और इसीलिए उसकी कविता में घटनाओ तथा दृश्य-जगत का वर्णन ही अधिक मात्रा मे मिलता है। लोकगीतो की वातावरण-प्रधान कविता को समझने के लिए लोक-जीवन का पूर्ण परिचय अत्यन्त आवश्यक है।

"देवर, जेठ, ससुर, भौजी, ननद, आदि केवल मात्र सम्वन्ध-सूचक शब्द ही नहीं, ये एक वन्दूक के घोडे के समान है जिन्हे दवाते ही भावो का पूर आ जाता है। उस जीवन की घनिष्टताये, गुप्त मन्त्रणायें और निकट में स्मरण हो आती है। उस जीवन की ईर्षा तथा स्वामिभक्ति के विचार जाग जाते है और एक लोकगीत, जो घर-गृहस्थी की चर्चा के कारण ऊपर से उकता देने वाली पारिवारिक सम्वन्धो की तालिका प्रतीत होता है, वस्तुत. भावों को प्रदीप्त करने की एक महान सामर्थ्य रखता है।"[1]

## काल-निर्णय

आगरा जिले के लोकगीतों का काल-निर्णय तो सम्भव नही किन्तु यहाँ के लोकगीतो पर सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावो और उनके कारणों को अवश्य वताया जा सकता है। इन लोकगीतों की भाषा और धुनों के वारे में भी किसी निश्चय तक पहुँचा जा सकता है।

आगरा नगर की खड़ी वोली और मिश्रित वोली का रूप यहाँ खेली जाने वाली "भगत" मे देखा जा सकता है। 'भगत' रास या नौटंकी की भाँति एक लोक-नाट्य है। इसमें किसी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक कथानक को लेकर दोहे और चौवोलो मे गा-गा कर नृत्य तथा अभिनय किया जाता है। भगत का प्रदर्शन दो-तीन दिन से लेकर पन्द्रह दिन तक का होता है। इसमे पात्र और दर्शक वदलते रहते हैं किन्तु कथानक चलता रहता है। पात्रो को भगत कराने वाले सेठ

---

१. "लोकगीतों का सांस्कृतिक महत्व और उसका कवित्व", प्राच्य मानव वैज्ञानिक—नरेशचन्द्र।

लाखो रुपयो के जेवरो से लाद देते है। ये जेवर भगत के बाद लौटा लिए जाते हैं। मंच की सजावट, कनातो और तम्बुओ मे भी बहुत धन व्यय किया जाता है। स्वर्ण-नियन्त्रण के बाद जेवरो का प्रयोग तो अब उतना नही रहा किन्तु प्रदर्शन के लिए सजावट और अन्य व्यय मे अब भी कोई कमी नही हुई है। भगत करने वालो की मण्डलियाँ होती है। आगरा नगर मे पथवारी, बेलनगंज और कचहरीघाट मे भगत-मण्डलियाँ बड़ी प्रसिद्ध और एक दूसरे से स्पर्धा करने वाली हैं। एक मण्डली दूसरी मण्डली को नीचा दिखाने का प्रयास सदैव ही किया करती है। यदि किसी मण्डली की किसी भगत मे पात्रो ने बीस-पच्चीस हजार के आभूषण पहिने है तो दूसरी मण्डली वाले अपने पात्रो को पचास हजार रुपये से अधिक के वस्त्राभूषण पहिनाने का प्रयास करेंगे। भगत के दर्शक भी बड़ी स्पर्धा करते है। वे एक रुपये के नोट से लेकर सौ-सौ रुपये के नोट तक अभिनेताओ पर न्यौछावर करते है। फ़िल्मो के इस युग मे भी भगत का अस्तित्व मिट नहीं सका है।

भगत का मुख्य कथानक मच पर प्रस्तुत करने से पूर्व भवानी, इष्टदेव और गुरु की वन्दना होती है। कथाओ मे राजा मोरध्वज, श्रवण कुमार, पूरनमल जती की कथाये अधिक प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त सुल्ताना डाकू, सती मंजरी, भक्त अम्बरीश की कथायें भी भगत के रूप मे प्रस्तुत की जाती हैं। उर्दू के प्रभाव मे आकर कुछ मुसलमानी सभ्यता की कथाये भी आती है। जैसे— जहरीली नागिन, काला साँप, मतवाला आशिक आदि।

भगत वालो की इष्ट देवी दुर्गा या भवानी होती है। पथवारी वाले भवानी को "पथवारी-देवी" के रूप मे स्थापित कर पूजते है और उसी की स्तुति करते है। कुछ लोग करौली वाली देवी की स्तुति करते है। कुछ नरी सेमरी की देवी के उपासक हैं। एक स्तुति इस प्रकार है—

## छन्द भगवती का

दोहा— अरी मान सकट हरन करन भगत के काज
दगल अदर आय के रख बाने की लाज

छन्द— रख बाने की लाज आज मैंने प्रथम तुही मनाई री
सात दीप और नौउ खण्ड मे धुजा तेरी फहराई री
तैंने ही तो राजा नल को वन मे करी सहाई री
भरी सभा में रसिया गाऊँ कृपा करो महा माई री
शेर सिकदर तकिया वारे ने तौई ते डोर लगाई री

आगरा में पथवारी नामक एक मोहल्ला है। यहाँ की 'भगत' बड़ी प्रसिद्ध होती है। अनेक वर्षो से बडी तड़क-भडक के साथ 'भगत' का आयोजन होता है। 'श्रवण कुमार की भगत का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

दोहा—जयति जयति श्री गजवदन गौरी पुत्र गणेश।
आन सहायक हूजिये ब्रह्मा विष्नु महेश॥

चौपाई—ब्रह्मा विश्नु महेश शेश सब रक्षा करे हमारी।
गौरी शकर श्री गङ्गाधर जगत पाल त्रिपुरारी॥
वरदायक हो सब लायक हो हम सेवा करे तिहारी।
गौरी नन्दन काटो बंधन फल देउ नाथ सुभकारी॥

कव्वाली—श्रवण का स्वाग मैं लिखता नई रगन निराला है।
भरा भक्ती से सुन्दर चमन का फूल आला है॥
सुनो सब गौर से भाई बड़ा आनन्द वाला है।
काली हिरदै मे खिलती है ये भक्ती रस निकाला है॥

दौड़—क्या धर्म पुत्र का है भाई और मात पिता की सेवा।
सेवा से अमृत फल मिलता भक्ती की ऐसी मेवा॥

## जवाब नटी का

दोहा—धन्य आज का दिवस है नाथ मेघ रहे छाय।
शीतल मद सुगध त्रिय पवन रही लहराय॥

चौपाई—पवन रही लहराय सुहाना मच नजर आता है।
ये हरा भरा फूलो से शोभित नया रग लाता है॥
है चौतर्फा आनन्द नाथ वैकुंठ मच दिखलाता है।
शशि किरन सितारे नभ मण्डल रौनक से जोत जगाता है॥
मालूम मुझे होता स्वामी कोई अभिनय नया दिखायेंगे।
कृपा कर नाथ बता दीजै रचना क्या आप रचायेंगे॥

## बहर तबील

किसकी कहोगे कथा मुझको दीजै बता पति देव सब कैहना अजी।
उद्देश तुम्हारा सब होगा सफल खोल अन्धो के नेत्र देना अजी॥
जो सगत कुसगत मे पड़ गये बशर उनको लीजै बचा कष्ट सहैना अजी।
उपदेश सुने से तो पापी तरे दिग दर्शन कराये न रहैना अजी॥

## जवाब नट का बहर तबील

अयोध्या सी नगरी जहाँ सरजू वहै कैसा सुन्दर है मुक्ती का धाम प्रिया।
जिस भूमि पै आकर के जन्म लिया राज दशरथ के जन्मे है राम प्रिया॥
हुए श्रवण कुमार अन्धे माता पिता जिसकी सेवा ने किया नाम प्रिया।
उनकी पूरण कथा सबको देगे बता कैसा भक्ती का होता है काम प्रिया॥

यह भगत दुर्गाप्रसाद की लिखी हुई कही जाती है। यह एक लोक-नाट्य का रूप है। इसमें आकर्षक और मूल्यवान वेश-भूषा के साथ दोहो, चौबोलो और कव्वाली मे सवाद होते है। भगत मे "बहर तबील" का प्रयोग बडे सुन्दर ढंग से होता है। यह बहर भगत-प्रेमियो को अधिक अच्छी लगती है। चौबोलो और दोहो के बीच इस बहर को इसीलिए बार-बार गाया जाता है।

पथवारी मे ही पं० मुन्नालाल की मण्डली भी 'भगत' मे बड़ी प्रसिद्ध है। "सौदागर की बेटी" नामक 'भगत' मे आगरे की उर्दू का पूरा प्रभाव दिखायी देता है। इस भगत मे पहिले तो पथवारी देवी की स्तुति है—

दोहा—जै जै जै श्री अम्बिका जै पथवारी माय
लाज सभा मे राखियो होना मात सहाय

चौपाई—होना मात सहाय भगवती कर मेरो निस्तारो
बूचासिंह के चैलन को मैया तेरौ बड़ौ सहारो
किलकिलाय जा चढी छिनक मे महिसासुर को मारो
मुन्ना के दुशमन को मैया तू कर दीजौ म्हो कारो

दोड़—अर्ज सुन दुर्गे मैया ।। पार कर मोरी नैया
सरन मैं तेरी आयो ।। दुर्गा की कृपा ते मैंने तिरिया चरित बनायो ।।

इस स्तुति के बाद 'भगत' आरम्भ होती है। **'सौदागर की बेटी'** एक शहजादे को देखकर मुग्ध हो जाती है। वह कहती है—

दोहा—खुदाबद ये अर्ज है कर दोनो का मेल।
कुदरत का क्या पार है नाहक करी झमेल ।।

चौपाई—नाहक करी झमेल अर्ज ये बार-बार करती हूँ।
कीजै मुराद पूरी मेरी सिर कदमो पै धरती हूँ ।।
इस शहज़ादे से दो मिलाय फुरकत मे मैं जाती हूँ।
उलफत मे इसके फसी खुदा हिज्र मे मैं मरती हूँ ।।

दौड़—सख्त पैदा बीमारी। अर्ज सुन लेओ हमारी।
रफै कर दर्द मिटाओ। है अजब अनौखी सान तेरी दिलवर से जल्द मिलाओ ।।

उधर शहजादा भी सौदागर की बेटी को देखकर मुग्ध हो गया है उसकी स्थिति का वर्णन इस प्रकार है—

## जवाब शहजादे का

दोहा—हुस्न नाजनी हूर ने पाया गजब कमाल
दीद दिखा मारा मुझे कर दीना बेहाल

चौपाई—कर दीना बेहाल प्रेम का मारा घुमा कटारा
कुरबान जान न्यौछावर है मिल जाय मुझे दिलआरा
गुलफाम नाजनी नौजवान दिल लीना छीन हमारा
दिलदार बिना जीना मुस्किल बिन प्यारी नही गुजारा

दौड़—इश्क का फंदा फँसा है। उसी का चढा नशा है ॥
निका उससे पढवाऊँ।
बिन रस्के कमर उस दिलवर के मैं खाय जहर मर जाऊँ ॥

बादशाह ने जब शहजादे की व्यथा का कारण पूछा तो उसने कहा—

## जवाब शहजादे का पिता से

उसकी छलबल ने दिल ये कीना विकल वो प्यारी कमल है हमारी पिता
अभी जाकर के लाऊँ घबराऊँ नही जो मर्जी हो जाए तुम्हारी पिता
उसकी उल्फत का चढ रहा है मुझको नशा मेरे दिल को न सता करारी पिता
मेरे सीने मे चितवन की वरछी लगी काम कर गयी दुधारी कटारी पिता

## जवाब पिता का

मेरे लख्ते जिगर चश्म तारे पिसर तुझे जान का खौफो ख़तर ही नही
जिस पै हजसे इश्क ने किया असर बो तो सोया कबर क्या खबर ही नही
इसमे लाखो बशर फाके कर कर कुमर मारे दर दर न चलता हुनर ही नही
जाती इज़्जत औ ज़र ना होती गुज़र ऐसी बातो का कर तू जिकर ही नही

शहजादा विवाहित था। उसकी माँ उसे बहुत समझाती है—

## जवाब माता का

जिसके घर मे है नारि दुलारि सुघड रूपवती लजवती तुम्हारी कुमर
मृगनैनी पिक बैनी शशि बरनी सभी तेरे घर मे लगी है फुलवारी कुमर
छोड गुलशन चमन आस किसकी करै त्यागो गम को ये मानो हमारी कुमर
जावै इज्जत अगर होयगा जाँ को खतर मेरी मानो पिसर वलिहारी कुमर

## जवाब रंगाचार का

दोहा—माता की मानी नही एक ना दीना ध्यान ।
खबर पड़ी रनवास मे रानी पहुँची आन ।।

शहज़ादे की पत्नी भी उसे बहुत समझाती है—

दोहा—ख्वाहिस है किस बात की क्यो बनते नादान ।
बुरा फन्द है इश्क का नाहक जावै जान ।।
नाहके जावै जान बशर कोई फते न इसमे पावै ।
तकलीफ मुसीबत गम सदमे तन पर दिन रात उठावै ।।
है बड़ा जाल विकराल काल ये जीते जी डस जावै ।
जिसके घर नारी होती है वो नीयत नही डिगावै ।।

कव्वाली—चलो आराम कीजैगा मेरे दिलदार सेजो पर
तमन्ना दिल की सब खोलो मेरे दिलदार सेजो पर
खिला फूलो से गुलशन है झुकी जोबन की है डाली
महक चम्पा चमेली की मेरे गम ख्वार सेजो पर
जुही नरगिस की खुशबू से न तबियत आपकी भरती
कटेरी फूल पै मरते न करना प्यार सेजो पर

दौड़—मौज दिन रात उड़ाओ । भूल सब गम को जाओ ।।
छोड़ दीजै नादानी । हुस्न बगीचा छोड़ आप काँको की कहौ कहानी ।।

## जवाब रंगाचार का

बारी बारी से रही रानी सब समझाय ।
मगर एक मानी नही आखिर गई खिसयाय ।।

और अन्त मे उस शहजादे ने सौदागर की वेटी से विवाह कर ही लिया—

लावनी—ख्याल वदल गये करी विवाह की त्यारी ।।
सजवाई महफिल धूम धाम से भारी ।।
थी सौदागर की वेटी हुस्न दिवानी ।।
औ वादशाह का शहजादा लासानी ।।
महाराज मुक्त सर लिक्खा मैंने हाल ।।
सज्जन जन ले समझ नही कुछ दीया तूल तमाल ।।

पूरनमल जती की 'भगत' भक्त-नागरिको मे बहुत लोकप्रिय है। इसे बार-बार खेला जाता है फिर भी लोग इसे देखने को सदा उत्सुक रहते है। इस भगत का आरम्भ इस प्रकार होता है—

दोहा—अजब खुसनुमा है बना, स्यालकोट स्थान
सखपती भूपाल जँह, सीलवत गुनवान

चौ०—सीलवंत गुन वान छाय रह्यो जस चारो दिसि भारी।
अटल राज भोगे भूपत सुख पायँ परजा सारी॥
अम्बा दे की वाम जिन्हो की रहे प्रान ते प्यारी
पूरनमल का जती दिया गोरख का कुँवर हजारी

स्यालकोट के राजा का पुत्र पूरन एक बहुत सरल, सीधा पवित्र और सदाचारी युवक था। उसे देख कर उसकी सौतेली माँ फूलन दे उस पर मुग्ध हो गयी।

### फूलन दे

छैल-छबीली मधुभरी क्या बाकी मुस्कान
रग-रग मे जो बस रहा, पूरनमल दिल जान
पूरनमल दिलजान हुई कुरबान जान जिस पर है
जलवा जालिम ने दिखा कत्ल कर दीना बे खजर है
दीदार दवा जब मिलै जख्म पुर जावै जो अन्दर है
घायल की गत घायल जाने बादी नहि तुझे खबर है

दौड़—इश्क उसका तन छाया। काम ने मुझे सताया॥
गजब ये फँद फँसा है, छैल-छबीला छैला वो नैनन मैं मेरे बसा है॥

फूलन दे ने अपनी बाँदी को आदेश दिया कि वह किसी बहाने से पूरन को उसके महलो मे ले आये—

दोहा—रानी का सुन कर हुक्म, बागन बाँदी जाय।
पूरन मल के पास जा, कहती सीस नवाय॥

### जवाब बाँदी का

दोहा—पूरनमल महाराज जी, विनय सुनो सरकार।
मौसी भई है आपकी, आज सख्त बीमार॥

चौपाई—सख्त आज बीमार पेट मे भारी उठो दरद है
बिल बिलात लोटी फिरती कर रह्यो दरद गरद है

काले पड़ गये दाँत कुमर वो भरती आह मरद है
जल्दी करो उपाय हाय तन पड गयो सकल जरद है

दौड—महल को आप सिधारो, सार ये भार मे डारो
किसी की दवा कराना, मौसी की सूरत देख लेउ
बचने का नही ठिकाना ।

## जवाब पूरनमल का

दोहा—बाँदी आई महल से, सुनो हमारे यार ।
भैया महलो मे हुई, मौसी है बीमार ।।

चौपाई—मौसी है बीमार उसे कोई मर्ज उठा है भारी
भागी बाँदी मुझे बुलाने आई है इस वारी
जाकर के देखूँ मौसी को क्या हुई है बीमारी
करवाऊँ जा दवा यार क्या हैगी राय तुम्हारी

दौड़—सार फिर खेलूँ आई, मौसी की दवा कराई
याद वो बहुत करै है, विकल बहुत कल नही
दर्द की यार मरै है ।

## जवाब यार का

दोहा—महलो मत जाइये, सुनिये चतुर सुजान ।
दगा करै मौसी तेरी, महलो के दरम्यान ।।

चौपाई—महलो के दरम्यान यार तुम वहाँ आज मत जाओ
नही सगुन है ठीक अगर तुम जाओ तो पछताओ
त्रिया चरित तुम नही समझते, नाहक जान फँसाओ
होती है विस भरी नार, तुम यकीन इस पै लाओ

दौड़—बात बाँदी चचल की, नजर पड़ती छल बल की
मान लो मेरा कहना, खेलो चौसर यार, महल
मौसी के कदम न देना ।

पूरन तो सरल और पवित्र था । वह मौसी ( सौतेली माँ ) पर विश्वास कर उसके महल मे चला गया किन्तु रानी फूलन दे ने उसके सामने वासनात्मक प्रेम का प्रस्ताव रखा—

## जवाब फूलन दे का

चौपाई—पूरनमल प्यारे मेरे माहताब दिलदार ।
सर्वेकद गु चै दहन ले गलबैया डार ।।

चौपाई—ले गलबैयाँ डार क्यो मोकूँ है तरसावै ।
ना तो नीत इश्क मे प्यारे ना कुछ देखा जावै ।।
क्या जोबन खिल रहा बगीचा क्यो नहिं मौज उड़ावै ।
पूरनमल माली बन पानी दे लगा चमन कुमलावै ।।

पूरनमल अपनी सौतेली माता के, इस घृणित प्रस्ताव को कभी भी स्वीकार नही कर सकता था । उसने उसे समझाते हुए कहा—

दोहा—मौसी ये भाखै मती अनरथ रीत कुरीत
सोच तनिक अज्ञान तू कहत कहा है नीत
कहत कहा है नीत करै अपरीत सरम नही आवै
मिल जाँय जगत मे नभ-धरती पर नहिं पाप समावै
तु ऐसे कर्म कुकरमन से फिर मनुष्य योनि नहिं पावै
करै नरक मे बास अरी तू मत यह पाप कमावै

पूरन के मना करने पर रानी फूलन दे नागिन सी फुफकार उठी । उसने राजा से कहा कि पूरन उसका धर्म भ्रष्ट कर गया है । राजा को पूरन की पवित्रता पर पूर्ण विश्वास था । उसने रानी से कहा—

## जवाब राजा का

दोहा—मुँह मे रख तू जीभ को मती बने अज्ञान
पूरनमल की तू लगै रानी मात समान—

किन्तु रानी भी कम नही थी । उसने तुरन्त उत्तर दिया—

## जवाब फूलन दे का

दोहा—इश्क न देखै नीत को, ना देखै क्या जाति ।
नीद न देखै खाट को, भूख न झूठौ भात ।।

और अन्त मे राजा को रानी का विश्वास करना ही पड़ा । उसने जल्लाद बुलाकर पूरन को जान से मारने की आज्ञा दे दी । पूरन मरण-स्थल की ओर जाता हुआ कहता है—

## जवाब पूरन मल का

### लाबनी लंगड़ी रंगत

दस्त पकड़ कर आज मेरा ले चलो मुझे जालिम जल्लाद ।
रो-रो कर के मैंने किया गुरु गोरख को याद ।
हुए पिता बेदर्द न दिल में रहम जरा भी किया मेरा ।
प्रान जाओ तो जाओ पर धर्म-कर्म रह गया मेरा ॥
डांहिन बन कर मौसी ने कर घात जिया ले लिया मेरा ।
झूठी तोमद लगा बदनाम नाम कर दिया मेरा ॥
हे दीनन के दयाल सुनो तुम बिन अब कौन सुनै फरियाद ।
रो, रो कर के मैंने फिर किया गुरू गोरख को याद ॥
मैं हूँ गोरख का शिष्य जत्ती पूरनमल मै कहलाता हूँ
नाम हरी का नही एक पल भर को भी बिसराता हूँ
आज नाम को मेरे कैसा लगा व्यर्थ अपवाद
रो-रो कर के मैने फिर किया गुरु गोरख को याद

## जवाब पूरनमल का, अम्बा दे को

### बहर तबील

मेरी गैया सी मैया क्यो करती रुदन, अपनी आँखो को रो रो दुखावै मती ।
ना है चारा कजा से हमारा कुछी माता नैनो से धारा बहाव मती ॥
मत छाती धुनै, सिर कूटै अरी माता गिर-गिर पछाड़े तू खावै मती ।
तुझे मेरी कसम दिल मे रख तू सबर, मेरे मरने का मातम मनावै मती ॥

गुरु गोरख नाथ की कृपा से पूरन की रक्षा होती है और रानी फूलन दे को दण्ड दिया जाता है—

लँगडी रँगत—पूरनमल को साथ लिवा महलो मे राजा लाया है ।
धर्म-कर्म को राख जती ने नाम जगत मे पाया है ॥
जैसा जो कोई करता है वो वैसा फल पाता है ।
दगा किसी का सगा नही यह धर्म-शास्त्र बतलाता है ।

और अन्त मे भगत करने वाले अपने उस्तादो का परिचय देते हुए अपने अखाड़े की गौरव-गाथा सुनाते हैं—

शहर आगरा पथवारी मे बूचासिंह उस्ताद हुए ।
नरान वंशी, जगन जमनी केशव दिलशाद हुए ॥

उमरैया मोहन भिक्की कु जा मुन्ना छीतर गम दाद हुए।
भज्जो-पानी की शान देख दुश्मन गैंदी बरबाद हुए ॥
खाकसार दुर्गा प्रसाद ने रच कर स्वाग बनाया है।
धर्म-कर्म को राख जती ने नाम जगत मे पाया है॥
जो भूल-चूक हो माफ करो गुणियो को सीस नवाता हूँ।
नहिं कवित्ताई का ज्ञान मुझे तुकबन्दी मित्र लडाता हूँ॥
उस्तादो के चरणो के प्रभाव से नित मैं स्वाग बनाता हूँ।
भागे है वैरी छोड मोरचा जव मैं आँख मिलाता हू ॥
दली दाल दुसमनो की छाती डका विजय वजाया है।
धर्म-कर्म को, राख जती ने नाम जगत मे पाया है॥

पथवारी वाले पथवारी देवी के भक्त है। उनके हर कार्य मे देवी की कृपा रहती है। वे अपनी भक्ति-भावना इस प्रकार प्रकट करते हैं—

शहर आगरा बीच हमारा पथवारी पर है अस्थान।
देवी जी का बना हुआ है सुघड सलौना सुन्दर थान॥
शकर दीन–दयाल विराजै हनुमान जी है बलवान।
जहाँ अखाडा बूर्चासिह का नामी मुल्को के दरम्यान॥

इम प्रकार हम देखते है कि आगरा नगर लोकगीतो की दृष्टि से कम महत्व पूर्ण नही। राम और भगत जैसे लोक-नाट्यो मे पौराणिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथानक ले कर लोक-भाषा मे विभिन्न तर्जो पर गाये जाने वाले लोकगीत आज भी जनता का मनोरजन कर रहे है।

सामयिक घटनाओ एव हलचलो को भी लोकगीतो मे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया जाता रहा है। मार्नासह आगरा जिले का एक वडा प्रभावशाली कुख्यात दस्यु हुआ है। वह एक ओर नृशम हत्यारा था तो दूसरी ओर वडा उदार और चरित्रवान भी था। उस पर अनेक लोकगीत मिलते है। उसकी प्रशसा मे लिखा गया एक लोकगीत है—

नामी जिला आगरा जानो, यू० पी० को अति भारी।
वामे है तहसील बाह की, पूरब की दिसि न्यारी॥
खेडा है राठौर नाम को, गाम एक सुभकारी।
मानसिंह को जौहर लिखती सुनिलेउ कलम हमारी॥
सवत उन्नीसौ पैतालिस, भादौ मास सुहायो।
कृष्ण पक्ष बुधवार सप्तमी, जनम मानसिह पायो॥

वड़ो घरानो को ठाकुर को, भारी खुशी मनाई ।
पाँच वरसि को भयौ लाड़लो, पढ़िवे दियौ विठाई ।।
छत्री वंस तेज वुद्धी का, तन पै थी सघुराई ।।
लगी सोलवी वरस है गई वाकी तुरत सगाई ।।
व्याह भयौ घरि वहू आ गई, भोगे सुख संसारी ।
कैसो जौहर भयो हाल हम, वाको कहैं अगारी ।।

भारतीय संगीत प्रणाली मे मुख्यत. दो प्रकार की गायकी प्रचलित है--
१. ध्रुपद धमार गायकी । २ ख्याल गायकी ।

भारत में हिन्दू और इस्लामी संस्कृति के मिश्रण के फलस्वरूप एक नई कल्पना का आश्रय लेकर 'ख्याल' का जन्म हुआ है । ख्याल के सम्वन्ध मे डा० सत्येन्द्र ने लिखा है कि यह उन व्यक्तियो का साहित्य है जो नगर के अन्दर रहते हैं, किन्तु नागरिक ऊँचाई पर नही पहुँचे । उद्योगी वर्ग मे उन्हे सम्मिलित किया जा सकता है । इनकी ये रचनायें ख्याल कहलाती हैं ।[1] कही इसे लावनी भी कहा जाता है । इसे मराठी का ख्याल भी कहा जाता है । जहाँ तक पता चलता है इसकी उत्पत्ति दक्षिण में हुई है । इसके दो जन्मदाता हुए । एक का नाम था तुकनगिरि और दूसरे का नाम था शाह अली । इन्ही दो उस्तादों के नाम पर इसमे दो सम्प्रदाय हुए । तुकनगिरी ने "तुर्रा" सम्प्रदाय को और शाहअली ने कलगी सम्प्रदाय को जन्म दिया । इन्ही से मिलते-जुलते कुछ और अखाडे भी वने जिनमे सेहरा, मोर, मुकुट, छत्र आदि प्रमुख हैं किन्तु तुर्रा और कलगी सम्प्रदाय ख्याल गायकी में खूब फूला फला । आगे चलकर इन दोनो सम्प्रदायों में वड़ी प्रतिद्वन्दिता चल पडी । 'तुर्रा' वाले अपने को श्रेष्ठ समझने लगे और कलगी वाले अपने को । इन दोनो में गायन सघर्ष भी प्रायः होता रहता है । इन दोनों सम्प्रदायो की वेलें दूर-दूर तक फैली हुई हैं । कुछ वर्ष पूर्व तक इन ख्यालो का वड़ा प्रचलन था । इनके मोर्चे वहुवा हुआ करते थे । इन दोनो सम्प्रदाय वालों ने हिन्दी साहित्य की पर्याप्त सेवा की है । इसके द्वारा हिन्दी-उर्दू का समन्वय वड़े सुन्दर ढग से होता रहा है । ख्याल की अपनी कुछ विशेष तर्जें और धुनें होती हैं । इनमे वड़ी वारीकी भी होती है ।

फारसी छन्द-शास्त्र के प्रणेता अब्दुर्रहमान उर्फ खलील अरव के रहने वाले थे । इन्होने अरवी और फारसी की लयो के आधार पर १५ वहरो (लयो) की खोज की । वाद मे इनकी सख्या वढ़ती गयी और फारसी की ये अरकान (धुनें या लय) उर्दू मे प्रचलित हो गयी । उर्दू की वहरें हिन्दी के मात्रिक छन्दो की भाँति होती हैं । फारसी और हिन्दी छन्दो की तुलना छन्दःशास्त्र के विद्वान श्री जगन्नाथ प्रसाद

---

१. व्रज लोक संस्कृति, पृष्ठ ६६ (डा० सत्येन्द्र) ।

भानु ने की थी। उन्होंने उर्दू को लेकर 'गुलजारे सख़ुन' लिखा है।। 'छन्द प्रभाकर' में उन्होंने हिन्दी-उर्दू की धुनो की तुलना की है, साथ ही मात्रिक छन्दो के उदाहरणो सहित उर्दू अरकान का वजन भी दिया है।

छन्द-शास्त्र के भेदानुसार फारसी और उर्दू के छन्द ऐसे नही जो हिन्दी के भेदो से वाहर हो तथापि प्रत्येक भाषा की शैली अपनी-अपनी होती है। हिन्दी के नियम उर्दू मे और उर्दू के नियम हिन्दी मे पूर्ण रूप से घटित नही हो सकते, हाँ ध्वनि का साम्य अवश्य पाया जाता है। उर्दू के प्राय सभी छन्द मात्रिक होते है क्योकि उनमे एक गुरु के स्थान पर दो लघु आ सकते है। सस्कृत की भाँति उर्दू मे भी वहर के लिहाज से गुरु वर्ण को लघु मान लेते हैं।

वहर के वजन होते है। उदाहरणार्थ नीचे एक वहर तबील दी जाती है—

**बहर तबील**—इसका वजन—

"फउलुन मफाईलुन् धउलुन मफाइलुन्" होता है।

न कर तू जफाकारी, न कर तू मक्कारी,<br>
ख़ुदा सुन सभी मे है, खुदा सुन सभी मे है।

यह छन्द हिन्दी मे प्रचलित नही है किन्तु हिन्दी छन्द-शास्त्र के अनुसार इसका लक्षण ( । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ) है। सस्कृत मे भी यह छन्द प्रचलित नही है।

**बहर लँगड़ी**—

सर्वस मँगै दै दीजे, जो माँगै धन-यौवन अपना।<br>
मगर न दीजे भूल कर हाथ पराये मन अपना।।

**बहर शिकस्ता**—

पपीहा पी पी न बोल प्यारे, तू वोल जा सैयाँ के भवन मे<br>
विना पिया दरद कौन जाने, लगी है अगिया हमारे तन मे

रेखता अव्वल—धुन खम्माच, ढार सोरठा

जहाँ मे देख लो है जौहरी को शौक जौहर का।<br>
उसे क्या काम पत्थर से जो शैदा है जवाहर का।।

रेखता दोयम—चलो रे विदिसिया नैना लगाय।

रेखता सोयम—तेरा क्या री भरोसा आवैगी कै नाह।

रगत खडी—यह वहर तवील से मिलती-जुलती है।

कल रात पिया के सोहे साथ, क्या कहूँ सपने की वात सखी।
खुली आँख तो फिर पाये न वलम, मैं मलते रह गई हाथ सखी ॥

रदीफ़—तो फिर क्या है ?

जो कुछ भी दिखाई देता है, संसार नही तो फिर क्या है ?
भगवान तुम्हारी लीला का, विस्तार नही तो फिर क्या है ?

लावनी—वसत ऋतु की साँझ सुनो मैं सुमन वाटिका करुँ विहार।
खडी कूप के तीर नीर नारी दो भरें करे दरवार ॥ टेक ॥
प्रथम सखी थी प्रथम रूप मे शील स्वभाव जानती थी।
साधारण की भाँति वो अपनी वीती व्यथा सुनाती थी ॥
एक सखी सुन रही खड़ी उसका दुख सुन दुख पाती थी।
सुनो सजन कर ध्यान तनक वह कौन वैन कर रही उचार।
खड़ी कूप के तीर नीर नारी दो भरें करें दरवार।

ख्याल वा लावनी चग पर वजते हैं तो एक समा वाँध देते है। चग एक प्रकार की वड़ी ढप होती है। रगतो का गाना ख्याल गायक पर निर्भर करता है। ख्याल-गायकी का प्रभाव और ओज आधुनिक समय मे भी देखा जा सकता है। अव भी जगह-जगह ख्याल गोई अखाडो के उस्ताद मोर्चे लेते दिखाई देते है। एक ऐसे ही मोर्चे का वर्णन निम्नलिखित पक्तियो में किया जा रहा है। यह मोर्चा अभी कुछ ही दिन पूर्व हुआ था। इसके वर्णन से तुर्रे और कलगी वालों के दृष्टिकोण तथा उनके विचारो की समयोनुकूलता दिखाई देती है। इस मोर्चे के आधार पर कहा जा सकता है तेजी-तुर्सी, मान-मनौअल इन ख्यालगोई समारोहो की जान है।

## रास की रसिकता

व्रज-प्रदेश के साथ 'रास' शब्द का जो सम्वन्ध है वह कोटि-कोटि हृदयो मे एक अनिर्वचनीय आनन्द की अजस्त्र धारा प्रवाहित कर देता है। शताब्दियो से चली आती हुई इस परम्परा ने इस प्रदेश को आध्यात्मिक भाव-भूमि प्रदान की है, एक नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण दिया है एवं संगीत, नृत्य, तथा अभिनय के रूप मे एक चिर विकसित, सुसस्कृत एवं स्वस्थ परम्परा दी है। इस पावन त्रिवेणी मे भक्त, दार्शनिक और कलाकार एक साथ अवगाहन करते है।

रास व्रज की अनौखी वस्तु है। व्रज में 'रास' का वर्तमान रूप कव से प्रारम्भ हुआ, इसके सम्वन्ध मे कई मत हैं। निम्वार्क सम्प्रदाय के घमण्डदेव को कुछ लोग रास का प्रारम्भ-कर्त्ता मानते हैं। दूसरे मतानुसार गौड़ीय सम्प्रदाय के श्री नारायण भट्ट को यह श्रेय दिया जाता है। वर्तमान समय मे रास के दो मुख्य रूप

मिलते है—एक तो शास्त्रीय रूप और दूसरा विविध लोक-नृत्यो, सवादो आदि पर आधारित रूप। रास की अधिकाश लीलाएँ भागवत, पुराण तथा वैष्णव भक्तो की रचनाओ पर आधारित है। इन लीलाओ मे अष्टछाप के कवियो, हरिराम जी व्यास, स्वामी हरिदास जी तथा परवर्ती भक्त कवियो के पदो का गायन होता है। 'रास' के नृत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमे कृष्ण और सखियो के अलग-अलग नृत्यो के अतिरिक्त विविध प्रकार के मण्डल-नृत्य भी होते है। इनमे महारास तथा लकुट राम के नृत्य विशेष उल्लेखनीय है। "रास" मे सगीत के तीनो अगो—गीत, वाद्य तथा नृत्य का समन्वय मिलता है। ब्रज की सस्कृति को रास द्वारा वडी सुन्दरता से व्यक्त किया जाता है। रास मे कथोपकथन, वाद्यो के साथ चलने वाले गीत तथा भावात्मक नृत्य भारतीय सगीत मे विशिष्ट स्थान रखते है।

ब्रज की तान तथा ख्याल—लावनी भी बहुत प्रसिद्ध है। ख्याल-लावनी के गायको के अनेक वर्ग है। ब्रज की भगत, जिसे 'स्वाग' भी कहते है, यहाँ बहुत प्रचलित है। मथुरा और हाथरस इसके मुख्य केन्द्र माने जाते रहे है किन्तु आगरा का भी विशिष्ट स्थान है। आगरा की भगत अपनी प्रथक विशेषता रखती है।

लोकगीतो की भाँति ही चरकला, चाँचर, ढाडा-ढाडी आदि विविध रोचक लोक नृत्य मथुरा, आगरा और हाथरस मे प्रचलित है।

डा० सत्येन्द्र ने "ब्रज की रासलीला" नामक पुस्तक की भूमिका मे लिखा है—"यो तो रास-लीलाएँ कोई भी व्यक्ति करा सकता है, क्योकि ब्रज मे और बाहर भी अनेकानेक रास मण्डलियाँ है, जो कुछ दक्षिणा लेकर रास-लीला कर सकती है। फिर भी ब्रज मे, विशेपत मन्दिरो मे, रास-लीलाये करायी जाती हैं। किसी व्यक्ति के यहाँ हो, या किसी मन्दिर मे, रासलीला के साथ एक धार्मिक वातावरण प्रस्तुत हो ही जाता है।

"रास मे नृत्य है, संगीत है, भावावेश है सलाप है, नाम्य भी है—ये सब कृष्ण-गोपी-गोप और राधा से गुँथे हुए है। ब्रज के कृष्ण-काव्य के रसाप्लावित पदो के महत्-भाव से रास सम्पन्न रहता है। रास का प्रधान रस शृंगार ही रहता है। ब्रज के इस राम मे भक्त को आत्म-विभोर करने के सभी तत्व विद्यमान है। यह रस सभवत. शताब्दियो को पार करके इसी रास मे चला आया है। ... ....... .......

"रास मे न तो कुछ मच-सज्जा रही है न कुछ भूषा मे ही आकर्षण होता है। कृष्ण और गोपियो और राधा को न जाने किस युग की भूषा मे प्रस्तुत किया जाता है ? उस भूपा मे कोई सौन्दर्य-तोषिणी दृष्टि भी नही दिखाई पड़ती है। सगीत की स्वर-लहरी मे एक अनौखी धीरता और गम्भीरता है, जिसमे किंचित भी मन को रिझाने वाली चसक नही होती। दो-चार ब्रज-भापा के वाक्य वातचीत मे

रास करने वाले बोलते है, उनमे भी नाटकीयता नही होती। फिर भी जब राधा-कृष्ण अपना नृत्य या सवाद आरम्भ करते है तो एक अनौखा समा बँधता है और भक्त विह्वल हो उठता है।"

कुछ विद्वान रास के क्षेत्र मे लोक-सगीत व लोक-नृत्य को कुछ भी स्थान नही देते। वास्तव मे रास का जन्म तो बहुत पहिले ही लोक-जीवन मे हो चुका था। इसलिए किसी भी काल मे रास लोक-सगीत की रसमयी धारा से अपने को अलग रख सके होगे, ऐसा मानना उचित नही। वास्तव मे रास मे रसिया तथा दूसरी पद्धति के लोकगीतो का समावेश हुआ है। इनमे लोक-जीवन की गरिमा एव लोक-हृदय की सगीतात्मक भावनाओ की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है।

रास-लीला के अनेक पद है इनमे एक दृष्टव्य है—

रास मे नृत्यत री। रस भीने।
प्यारी प्यारे रूप उज्यारे दोउ गलबहियाँ दीने॥
थेई-थेई रट सुघर उघट ही सुर सवट परवीने।
उरप तिरप मे तृवट सुलप घट अलग लाग दट लीने।
थुंकट थू थुकट अपट झपट जट, झॉं झॉं झकट झीने।
भीदी वीली झी, न न न न न न न न कीने।

यह तो रहा रास का वास्तविक रूप, अब इसके बिगडे रूप पर भी विचार कर लेना चाहिए। राधा-कृष्ण, गोप-गोपियो की लीलाओ के स्थान पर अब रास-लीला मे दूसरे कथानको और पात्रो का समावेश होने लगा है। अब इन रासो मे राधा-कृष्ण की जगह पूरनमल, लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, सुल्ताना डाकू, सती मञ्जरी आदि को स्थान मिलने लगा है। कई रास-मण्डलियाँ नये-नये कथानक लेकर चौराहो पर तख्त डाल कर नगाडे खडखडा कर अश्लील नृत्यो और गीतो को रास का रूप दे बैठी है। आगरे मे जमुना किनारे वसंत के आस-पास से ही रास-धारियो के डेरे लग जाते है। इनमे दिन भर तो "तालीम" दी जाती है और रात को विभिन्न बस्तियो मे नगाडो की धमा-धम तथा खडखडाहट के बीच अनेक प्रकार के गानो, हाव-भावो और अश्लील वाक्यो के साथ रास प्रस्तुत किये जाते है। इन रासो मे गाये जाने वाले कुछ रसियो के नमूने प्रस्तुत हैं—

सब सोवै नगर, जागै रसिया।
जब मोरा रसिया बागो मे आयो,
आय परी बैरन मलिया, बैरन मलिया। सब०—
पॉच रुपैया तोय दऊँ मलिया,
आवन दैयो मेरो रसिया।

सब सोवै नगर, जागै रसिया ।।
जब मोरा रसिया तालो पै आयो,
आय परो वैरी धिमरा, वैरी धिमरा । सब सोवै० —
पाँच रुपैया तोय दऊँ धिमरा,
आवन दैयो मेरो रसिया ।
सब सोवै नगर, जागै रसिया ।।
जब मेरो रसिया कुइअन पै आयो
आय-परो वैरी सक्का, वैरी सक्का । सब सोवै० —
पाँच रुपैया तोय दऊँ सक्का,
आवन दैयो मेरो रसिया ।
सब सोवै नगर ... .. ...
जब मेरो रसिया सेजो पै आयो
आय परी वैरन ससिया, वैरन ससिया । सब सोवै०
आधी रोटी तोय दऊँ कुतिया,
आवन दैयो मेरो रसिया ।
सब सोवै नगर, जागै रसिया ।।
जब मोरा रसिया सेजो पै आयो,
टूट गई वैरिन खटिया, वैरिन खटिया ।
सब सोवै नगर, जागै रसिया ।।

यही गीत आगरे मे ही अन्य ढंग से भी गाया जाता है। इसका दूसरा रूप इस प्रकार प्रचलित है .—

सुनौ रसिया, मैं तो अधर धरी पलका पै, सुनौ रसिया
जब मोरा रसिया सडकिया पै आयौ, सडकिया पै आयौ,
भूँस पडी वैरिन कुतिया, वैरिन कुतिया ।
मैं तो अधर धरी पलका पै ।।
जब मोरा रसिया देहरिया पै आयौ, देहरिया पै आयौ ,
खाँस पड़ी वैरिन बुढिया, वैरिन बुढिया
मैं तो अधर धरी पलका पै ।
जब मोरा रसिया सिजरिया पै आयौ, सिजरिया पै आयौ
टूट पडी वैरिन खटिया, वैरिन खटिया,
मैं तो अधर धरी पलका पै ।

इस गीत मे शृ गार-रस का वर्णन कितने कुत्सित ढग से किया गया है ! इस गीत को हाव-भाव और कमर के लचको के साथ जब रासधारी लडके गाते हैं

तो उन पर नोटो की वर्षा होने लगती है। एक और गीत इससे भी आगे बढ गया है—

गौने वारी रैन कटन दै वारे रसिया
गौने वारी रैन '' ''
पहलौ पहर जु बीतौ रैन को
बिछ गये तोसक-तकिया, गौने वारी रैन
दूजौ पहर जु बीतौ रैन कौ होवे लगी प्यार की बतियाँ,
गौने वारी रैन, कटन दै बारे रसिया।
तीजौ पहर जु बीतौ रैन को, बजन लगे पाय के बिछुआ,
गौने वारी रैन, कटन दै बारे रसिया।

भरतपुर के जाट राजाओ की वीरता इतिहास प्रसिद्ध है। उन्होने मुगलो से मोर्चे लिये और,फिर अग्रेजो से भी टक्कर ली। भरतपुर पर अनेक वार आक्रमण हुए। आक्रमणकारियो ने उसे लूटा भी। इस भरतपुर की लूट का वर्णन एक गीत मे शृंगारी भाव से किया गया है। रासो मे यह गीत अब भी बड़ा प्रचलित और लोक प्रिय है। युवती अपनी माँ से कहती है कि मुझे घर मे रात के समय बड़ा डर लगता है। माँ इस डर का कारण पूछती है तो वह बताती है—

अकेली डर लागै रात मोरी अम्मा।
जब रे सिपैया ने अँगिया के बद खोले,
अनारदाना लुट गयौ रात मोरी अम्मा।
अकेली डर लागै रात मोरी अम्मा॥
जब रे सिपैया ने लँहगा उठायौ,
भरतपुर लुट गयौ रात मोरी अम्मा॥

रासो मे "जगलिया" नामक एक रसिया किसी समय बहुत प्रसिद्ध था। सन् १९३७ और ४२ के बीच इस "जगलिया" ने आगरे मे धूम मचा रक्खी थी। एक रास मण्डली का लडका इस गाने को बडे हाव-भाव और मधुर कण्ठ से गाया करता था। जहाँ "जगलिया" होता था वहाँ भीड के कारण स्थान नही मिल पाता था। स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध सभी न्यौछावर थे इस गाने पर। वह लड़का सिसकियाँ भर-भर कर इस गाने की एक-एक पक्ति भिन्न प्रकार से गाता था। "जगलिया" इस प्रकार था—

गौना करि कें लै आयौ जगलिया।
वही सासु कौ पीसनो और वही ससुर की खाट
रे सुन जगलिया,
घम्मर-घम्मर होय कि लाजनि मरि गई रे जगलिया।

एक रजाई द्वै जनै सुन जगलिया
ईंचा तानी होय कि जाडिन मरि गई रे जगलिया।
जगलिया धोकेबाज कै धोका दै गयौ रे जगलिया ।।

पति गौना कराने अपनी ससुराल आता है। वहाँ अपनी पत्नी के साथ छेड-छाड करता है। इस छेड-छाड से पत्नी घबराती है। रास के मच पर नाच-नाच कर पत्नी कहती है—

मोहै पीहर मे मत छेड बलम तू,
घर लै धीर जिगरिया मे। मोहै.....
सासुरौ तेरौ बलम मायकौ मेरौ
वो तो जग रही सास कुठरिया मे। मोहै.....

कही-कही रासो मे राधा-कृष्ण के नाम लेकर भी गाने गाये जाते है। जैसे भक्ति काल के राधा-कृष्ण रीति-काल के प्रेमी-प्रेमिका बन गये वैसे ही रास मण्डलियो मे भी इस राधा-कृष्ण की जोडो ने नायक-नायिका के रूप मे उछलना कूदना आरम्भ कर दिया। नायिका कहती है—

नदी नारे न जाओ स्याम पइयाँ पडूँ।
नदी-नारे जो जाओ तौ जइबे करौ
बीच धारे न जाओ स्याम पइयाँ पडूँ। नदी...
बीच धारे जो जाओ तौ जइबै करौ
उस पारे न जाओ स्याम पइयाँ पडूँ। नदी.......
उस पारे जो जाओ तौ जइबे करौ
सग सौतनिया न लाओ स्याम पइयाँ पडूँ। नदी....

इस गीत मे ब्रज-भाषा के साथ खडी बोली के शब्द भी आ गए है। इसका कारण है इन गीतो का नगर मे गाया जाना। नगर की भाषा खडी बोली का पुट नगर मे होने वाले रास, नौटकी और भगत मे स्पष्ट दिखाई देता है। "मोरध्वज-लीला" नगर मे स्थान-स्थान पर प्रदर्शित की जाती है। इसकी एक झलक प्रस्तुत है—

भगवान कृष्ण अर्जुन को साथ लेकर राजा मोरध्वज की परीक्षा लेने जाते है—

टेक—चले सत्त जाँचन को दोनो अर्जुन और भगवान।

झड—बन गए पूरे सन्त चले भगवन्त गवन करि दीनो।
यमराज बना कर शेर सग मे लीनो।।

भस्म रमाय लई गात चीमटा हाथ नाथ लै लीनो ॥
चन्दन कौ टीकौ लाल भाल मे दीनो ॥

चौक—कर लकुट बगल मृग छाला ।
तुलसी की गल मे माला ।
दोउ सुन्दर रूप बिसाला ।
सग चलै शेर मतवाला ॥

तोड—मग मे देर न करी, चले नर हरि सग ।
केहरी पहुँच गए नगर के दरम्यान ॥

इसी प्रकार "सारगा-सदाबृज" का किस्सा मिश्रित भाषा मे है। इसमे ब्रज भाषा और खडी बोली का मिश्रण है। यह नगर का ही प्रभाव है—

श्री गुरु गिरा प्रनाम करि, गनपति चरन मनाय ।
सारगा बरनन करूँ, सब कोई करौ सहाय ॥
भूत जगै मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय ।
प्रेम सुधारस जिन पिए, तिनन रहत सुधि कोय ॥
भली घडी बेटा भयौ सुघड़ घड़ी अवतार ।
सदाबृज के नाम से जानै सब ससार ॥
सुभग मुहूरत सुभ घडी, ग्रह नछत्र सुभ जान ।
सारगा जब ग्रह भई, रूप-रासि गुन खान ॥

सारङ्गा—कहा करूँ कैसे करूँ, लगौ प्रेम कौ तीर ।
आँख लगे की होत है, आँखन की सी पीर ॥

सदाबृज—नयन नयन हो जात है, नयन नयन के हेत ।
नयनन के ही निमित ये नयन नयन कहि देत ॥

यह एक बडी सुन्दर, सरस और लोक-प्रिय प्रेम कहानी है। कहते हैं कि किसी समय अम्बावती नगरी मे एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम सदासुखलाल था। उसकी पत्नी सुखमना बहुत सुन्दर, सुशीला और पतिव्रता थी। पति-पत्नी एक दूसरे को बहुत चाहते थे। एक-दूसरे के बिना एक पल भी जीना उनके लिए असभव प्रतीत होता था। इनकी प्रीति सारे नगर मे प्रसिद्ध थी। नगर के लोगो ने इनकी प्रीति मे विघ्न न डाल इनकी सब प्रकार से सहायता ही की। दोनो भोग-विलास मे लीन रहते थे। धीरे-धीरे वृद्धावस्था आई। कुछ समय बाद इन्हे लेने मृत्यु आयी किन्तु दोनो प्राणी एक दूसरे के बिना अपने प्राण नही छोडते थे। इस अवसर पर गुरु गोरखनाथ आए और इन्हे वरदान दिया कि अगले जन्म मे तुम्हे नर देह फिर मिलेगी। गोरखनाथ जी का यह आशीर्वाद प्राप्त कर दोनो ने प्राण त्याग दिए।

कुछ वर्षों बाद सदासुखलाल ने राजा जगदीश के यहाँ जन्म लिया। उसी समय पदम साहू के घर एक कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या ही सारगा थी। सात वर्ष के होने पर दोनो पाठशाला मे भेजे गए। यहाँ एक-दूसरे को देखकर दोनो प्रेम-प्रवाह मे बहने लगे।

अनेक परिस्थितियाँ आयी और अन्त मे सदावृज को सारग मिल गई। सदावृज का नाम कही-कही "सदावृक्ष" भी आया है। यह प्रेम-कहानी आगरा नगर और आसपास के नगरो मे अब भी बडी प्रसिद्ध है। इस पद्य में गाया जाता है और इसे स्वाग मे प्रस्तुत किया जाता है। इसमे अनेक दोहे बडे सुन्दर और बोलचाल की बोली मे है। उदाहरण के लिए –

मत मुरझावौ बालमा, प्रेम सुधा रस खीच।
और न चाहूँ पल घड़ी, तुमको पलको बीच॥

× × ×

कैसे मोती अनमना, कैसे बदन मलीन।
तुम बिन ऐसी हो गई, जैसे जल बिन मीन॥

इस प्रकार सारी कहानी दोहो मे चलती है। यह कहानी बडी प्रभावपूर्ण और आकर्षक है। इसमे पुनर्जनम और सच्चे प्रेम को बडे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है। "सारगा-सदावृज" की कथा अनेक-अनेक शैलियो मे मिलती है किन्तु आगरे मे यह दोहो वाली शैली ही प्रसिद्ध है।

## आल्हा

आल्हा 'आल्हा खण्ड' का सक्षिप्त नाम है। इस खन्ड के रचियता महोबा के राजकवि जगनिक (सवत १२३०) माने जाते है। आगरा जिले मे 'जगनेर' गाँव कवि जगनिक से सम्बन्धित माना जाता है। वैसे तो आल्हा-खण्ड बुन्देली बोली मे ही है किन्तु आगरा जिले के गाँवो मे भी यह बडी धूम-धाम के साथ गाया जाता है। इसके शब्दो मे कुछ स्थानीय परिवर्तन अवश्य हो गए है।

पृथ्वीराज रासो के कुछ समय के बाद के कुछ ऐसे ग्रन्थ मिलते है जिनमे जिनमे चरण-काल की शैली और उसके आदर्शो का पालन किया गया है। "आल्हा खन्ड" इसी प्रकार का ग्रन्थ है। इसकी हस्तलिखित प्रति अप्राप्य है। पृथ्वीराज चौहान के निधन के ग्यारह वर्ष बाद महोबा का पतन हो गया। 'आल्हा खण्ड' मे महोवे के राजा परमाल की कीर्ति का वर्णन है। महोबा के पतन के बाद परमाल के इस कीर्ति-ग्रन्थ को लोग भूल से गए। केवल जनश्रुति के आधार पर ही इसके लेखक का नाम जगनिक मान लिया गया। इस काव्य का साहित्यिक दृष्टि से इतना महत्व

नही जितना लोक-रुचि की दृष्टि से है। मौखिक होने के कारण इसका पाठक अत्यन्त गड़बड़ा गया है। बारहवी सदी की रचना होने पर भी इसमें 'पिस्तौल' और 'बन्दूक' जैसे शब्दो का प्रयोग दिखायी देता है। इससे सिद्ध होता है कि मूल शब्द कितने बदलते चले आए है।

घटा बाजे गल कोथिन के, चमके कौवा सम तलवार
गोल तिलगन के निकरत है, हाहाकारी सबद सुनाय
मुहर कटोरा पानी ह्वै गयो, सूखे पडे कुआँ और ताल।
आँगू फौजें पानी पी जाँय पीछे पड जाय नीर अकाल।
केहरि गुफा दौड़ कर भागैं, औ मुँह बाँधे फिरैं सियार।
भूल चौकड़ी गई हिरन्न की, पछी उड गए गगन मझार।

"आल्हा" की भाँति ही 'ढोला' भी आगरे मे बड़ा प्रसिद्ध है। 'ढोला' का एक उदाहरण प्रस्तुत है। यह ढोला राह चिकाडे मे है—

भेंट—मैया तोई है मनाऊँ मोरी माय भारत मे जिताय दए पण्डवा
मैं तौ तेरौई गुन गाउँ करौ सहाय ऊँचे परबत तेरौ मण्डवा,
तेरी सूरज बरनी पौर
सोने के तखत परे मन्दिर मे चन्दन की रमाएं बैठी खौर
अर्जुन जोधा भीम
टाँकेनु-टाँकेनु पर्वन कारो, औड़ी दै गए भवन तेरे नीम
पंचौ मोय गायबे कौ चाहु
गाम फतेपुर कहत गजाधर नल के ढोल कुमर को होयगौ ब्याहु

चाल—बुध ने खोजा लयौ है बुलाई
खोजा से राजा कहि रह्यौ खोजा सुनले मेरी बात
सीधौ चलौ जा कुलबारे कूँ राजा नल है लिवायला अपने सात

धुनि—सुनि के बचन खोजा उठि धायौ, कुलबारे को सीधौ ही आयौ
नल राजा जाइ बैठाई पायौ, दीयौ है सीस नवाइ
हाथ जोर के करी बीनती राजा बुधसिंह रह्यौ है बुलाई

लहर—सुनि खोजा की नल मुसिकायौ रे, बुध माटी ने मोय काए को बुलायो रे
इतनी सुनि के खोजा के वचन सुनायौ रे, सग तौ लिवाय ला ऐसे कहि समझायौ रे

तोड़—खोजा के सग मे अरे परिचल दियौ नरवर वारौ
और कुलबारे ते अपनो ले लयो दुधारौ

लोकगीत-गायक अपने गीतो की नयी-नयी और अनौखी धुने अथवा तर्जे भी वना लिया करते है। "मारू का गौना" "दैया-भैया" की एक अनौखी तर्ज में वहुधा गाया जाता है। एक उदाहरण है--

कवि का—लगी कचहरी बुध राजा की अरेरे दइया, वैठे पिंगुल के सरदार।
अरे सरदार वैठे, पिंगुल के सरदार॥
एक तरफ को भारामल वैठो अरेरे दइया ढिंग सी वैठो ढोल कुमार
अरे कुमार ढिंग ही वैठो ढोल कुमार॥
तेली को वुध ने तुरत वुलायो अरे दइया हाजिर भयो कचहरी आय
अरे आय हाजिर भयो कचहरी आय॥
पास वुलाय लयो राजा ने अरेरे दइया अरे दइया अपनो दीन्हो हुकम सुनाय
अरे सुनाय अपनो दीन्हो हुकम सुनाय॥

राजा का—आज औसरौ जेहि ब्राह्मण की अरेरे दइया अरे दइया वाको जल्दी लाउ वुलाय
अरे वुलाय वाको जल्दी लाउ वुलाय
देर करन को समय नही अरेरे दइया अरे दइया मेरी नजर गुजारौ लाय
अरे लाय मेरी नजर गुजारौ लाय॥

मेवाती का—जेहि ब्राह्मण कौ हौय ओसरौ अरेरे दइया अरे दइया वाको करो सामने लाय
अरे लाय वाको करो सामने लाय॥
हमे पठायो वुध राजा ने अरेरे दइया अपनौ दीन्हो हुकम सुनाय
अरे सुनाय, दीन्हो हुकम सुनाय॥

आगरे के गाँवो और नगर के मोहल्लो में ढोला सम्वन्धी एक लोकगीत और प्रसिद्ध है—

राजा नल कौ री वेटा राजा वोधा सिंह घर व्याहौ
ल्हौरी ननदी को व्याहो, छोटी लाली को व्याहौ
डौडी[1] है जा री धीमरिआ।
डौड़ी है जा री मालिनिया॥
जा दिन मेरो री पति आवै,
चन्दा-सूरज रे छिपेगे।

---

1. सीधी।

गलियन सोर रे मचैंगो,
गंगा[1] गगन उड़ैंगो—
तमुआ[2] डेड़ सौ तनैंगे ॥
लड़ुआ डेढ़ सौ लुटैंगे
लड़ुआ गड़ुआ[3] से लुटैंगे
वो तो लैवैं कूँ आयो री गोराली[4]
डौड़ी है जा री सांकिनिया

## बहर ढोला

जब नल के पुत्र ढोला का विवाह हुआ—
अब खलु लिखति चिरौंजा गोरी ।
अपनी माणारूँगी छोरी ॥
नलु लेलिन कौ है टुक टेरा ।
कबऊ न डारूँगी धीय के फेरा ॥
वालम करम करै मति खोटे ।
नाइ रहै राजन के टोटे ॥
वादर फारे मेरे पीय ।
सोने की सी प्रथमा और कुआ में,
नटकि दइ मेरी धीय ॥

आगरा के साँप का जहर उतारने वाले "वायगी" ढाँक वजाते समय मन्त्रो के उच्चारण और ढाँक के गीतों के साथ ही जाहरपीर के गीत भी गाते हैं। इन वयगियो के मन्त्र इतने प्रभावशाली कहे जाते हैं कि साँप का विष उतर जाता है, कंठमाला गले मे फोड़ो की बीमारी होती है। पूरे कन्ठ में फोड़े हो जाते हैं। कहा जाता है कि पूर्व जन्म में साँप द्वारा डसे जाने पर इस जन्म में भी उसके विष के कारण कन्ठमाला हो जाती है। इसे 'विष-बेलि' या बिसबेल भी कहते हैं। ठीक हो जाती हैं और डसने वाला सर्प स्वयं आ जाता है। इन वायगियों का मन्त्र इस प्रकार है—

वज्जर-वज्जर वज्र किवार, वज्जर ठोंको दस्सो द्वार ।
जो वज्जर पै घालै घाय, उल्टो वेद वाइए खाय ॥

इस मन्त्र को पढ़ कर वायगी दसों दिशाओं में काले उड़द फेंकते हैं।

इन वायगियों के ढाँक के गीत भी बड़े रोचक होते हैं। एक मटके पर काँसे की थाली उल्टी रख ली जाती है उसे एक छोटे डंडे से वजाया जाता है और अनेक

---

१ धूल, रज, २ तम्बू, ३. लोटे जैसे बड़े लड्डू ४. गोरी ।

वायगी मिल कर गाते है। जिस व्यक्ति को सर्प डस लेता है या जिसे विसवेल या कन्ठमाला होती है उसे बीच मे वैठा लिया जाता है। सभी वायगी मिल कर गाते है—

हमारे विस-बाचा पै काये न भरे।
वाचा के बाँधे राम-लखन बनवास गये।
हमारे बिस-बाचा पै काये न भरे॥
बाचा के बाँधे महादेव कैलास गए।
हमारे बिस-बाचा पै काय न भरे॥
बाचा के बाँधे बलि राजा पाताल गए।
हमारे बिस-बाचा पै काए न भरे॥

धीरे-धीरे रोगी के शरीर मे सिहस होने लगती है और वह अपना सिर हिला कर झूमने लगता है। उसके सिर पर सर्प आ जाता है अर्थात सर्प उस रोगी के मुख से अपने विचार व्यक्त करता है। सर्प से प्रार्थना की जाती है कि वह उस रोगी को छोड दे। सर्प दण्ड-स्वरूप कुछ दान माँगता है जिसमे ब्राह्मणो का भोजन, गऊ दान, गगा-स्नान आदि भी होते है। आश्चर्य की बात है कि कुछ रोगी इस क्रिया से सचमुच ठीक हो जाते हैं। आगरे मे बायगियो के अनेक दल है जो सूचना या निमत्रण मिलने पर तुरन्त पहुँच जाते हैं।

ढाँक के गीतो मे हरिश्चन्द्र लीला भी गाई जाती है एक उदाहरण इस प्रकार है—

बोले तब इन्दर तौ रिसी ते सुनौ मुनीसुर बात
सुनौ मुनीसुर बात भयौ हरीचन्द अभिमानी
करै सत्य कौ गर्व जगत मे भारी दानी
जाकी नारद करै बडाई
मोहि ऐसो डर लगि रहौ लेहि पद हमरो रे छुडाई।

आगरा मे जाहरपीर के गीत गाने वालो मे मदिया कटरे के माधो प्रसाद जोगी सर्व प्रमुख हैं। इनके गीत नगर और आस-पास के गाँवो मे बडे लोकप्रिय है। इनके गीतो को श्रोता घन्टो मत्र-मुग्ध से बैठे सुना करते हैं। माधोप्रसाद आगरे के जोगियों के मुखिया है।

## सम सामयिकता

आगरा के होली के लोकगीतो मे सम-सामयिकता भी देखी जा सकती है। यहाँ के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन की झाँकी उनमे मिलती है।

होली के एक गीत में सन् १९२४ ( संवत् १९८० ) मे आगरा की जमुना जी की वाढ का वर्णन है । इस बाढ से हाहाकार मच गया था । नगर के प्रमुख बाजार वेलन गंज मे पानी आ गया था और उस बाढ के कारण वटेश्वर का मेला भी नही हो सका था । उसका वर्णन एक होली के गीत मे है—

जमुना जी आई जोर मे अस्सी की साल मे ।
घुसि आई वेलनगज मे फिर कूदी माल मे ।।
औरु लयौ तनैरौ घेरि डूब गई अ र र र र र र र ।
विधिवारौ रह्यौ घबडाइ कै ।
ताई सौ नाने लग्यौ मेला वटेश्वर कौ—
पानी फिरौ बदन वारे मे ।

इसी प्रकार सवत १९८५ ( सन् १९२९ ई० ) मे जब भयकर हिम-प्रपात हुआ था, सारे खेत नष्ट हो गये थे और किसान अत्यधिक क्षुब्ध एव विह्वल था तो लोकगीतकार उस व्यथा की कथा कहे बिना कैसे रह सकता था ? उसने रुँधे कठ से गाया—

एसूँ की दोवी साल पिचासी, कहि कैसे कटै गोरी ।
फटि गए रूख बम्हूर छेंकुरा काहु बिधि गहि जाय होरी ।
औरु बीच ही मे जौहरु कर डार्यौ बानें माह बदी छटि-सातैं पै ।
दैदई गरे मे ऐसी लात, सो ठाढ़े बौहरे मीडे हाथ ।।
ना छोडी दादु हरी ऐ, ऐसी बरफ झरी ऐ
कटि गई लैनि, बन्द भई रेल जानि परेसानी मे ।
फँसि गए जहाज पानी मे ।।

आगरा मे भोगीपुरा के पास पृथ्वीनाथ महादेव जी के मन्दिर से लगी हुई जोगियो की एक बस्ती है । ये जोगी गृहस्थ है किन्तु इनका मुख्य कार्य गीत गा-गा कर बस्तियो मे भीख माँगना ही है । ये शिवजी के भक्त है और अपने को नाथ पथी कहते है । इनके कान फटे हुए नही होते । इनके द्वारा गाये जाने वाले कुछ गीत निम्नलिखित है—

वहेली[1] भामर पर गई ऐं जा भोला जी के सग ।
अरी जा भोला जी के सग, मैया जा लटधारी के सग ··· ···

---

१ सहेली

बहेली भामर पर गई ऐ जा भोला जी के सग
डेढ हाथ की कछनी काछै, दो जग पडी भुजग,
भामरिया मेरी डार दी जा लटधारी के सग,
अरी जा लटधारी के सग, मैया जा बौरगी के सग ।
बहेली भामर पर गई ऐ जा भोला जी के सग ॥
सेर भर पीवे कुटी तमाकू, सेर भर पीवै भग,
सेर भर पीवे गाँजौ-सुल्फा, रहे नसे मे तग,
भामरिया मेरी डार दी जा भोला जी के सग ।
बहेली भामर पर गइ ऐ जा भोला जी के सग ॥
कोई बजावै ढोल खजरी, कोई बजावै चग,
मेरे भोला जी को बजै जे डमरु भलौ बनौ सतसग,
भलौ बनौ सतसग री मैया, भलौ बनौ सतसग ।
भामरिया मेरी डार दी जा भोला जी के सग ॥
कोई वैठै रथ-मझोली, कोई छडै[1], तुरग,
मेरे भोला को डूडौ[2] नादिया, मैया उडै पवन के सग,
(मैया उडै पवन के सग, अरी मैया उडै पवन के सग)
भामरिया मेरी डार दी जा बावरिया के सग ।
बहेली· ·· ··
कोई ओढै साल-दुसाल, अरी मैया कोई ओढै मखमल,
मेरे बलम की फटी बघम्बर, रहै बडौ मसतग,
(रहै बढौ मसतग री मैया, रहै बडौ मसतग)
भामरिया मेरी डार दी जा भोला जी के सग ।
बहेली · · ·

यह गीत कैलाश नाथ नामक एक जोगी से सुन कर मैने लिखा है । पृथ्वीनाथ महादेव के मन्दिर वाले कुए पर पानी भरता हुआ यह युवक बडी सुन्दर लय मे गा रहा था—

बहेली भामर पर गइ ऐ जा भोला जी के सग

मैं जब उसके पास पहुँचा तो वह गीत बन्द कर मेरी ओर देखने लगा । मेरे बार—बार आग्रह करने पर उसने यह गीत पुन. गाना आरम्भ किया । गीत सुन कर मैंने उसे एक रुपया भेट मे दिया । रुपया पा कर वह प्रसन्न हो अपना अँगौछा बिछा कर बैठ गया और फिर बिना मेरेकहे ही गाने लगा—

---

१ चढ़ै २ बूढ़ा

दरस दिखा दे मैया मोहन प्यारे का
रूप दिखा दे अपने नद दुलारे का
दरस न होगा तोये मेरे तारे का
दरस न होगा मेरे नन्द दुलारे का
मैं कासी से आया, और सग नादिया लाया
द्वारे तेरे आया, मैंने सिंगी नाद बजाया, जगत ससारे का
दरस करा दे मैया मोहन प्यारे का
मैं आया तेरे पासा, मेरी पूरन करियो आसा, जगत समारे का
दरस करइयो मैया मुरली बारे का
तू मनमानी भिच्छा लै लै, तेरे मन भाये जे ना भाये
दरस कराय दै मैया मुरली बारे का
मैं नई भिच्छा का भिखारी, दर्सन का बना भिखारी
दर्सन दीजो मैया मोहन प्यारे का
दरस न होगा तोये मेरे तारे का
तैंने ऐसा डमरू बजाया, मेरा सोता लाल जगाया
जोगी पीछा छोड मेरे द्वारे का
दर्सन तोय न होय नन्द दुलारे का
तू डमरू हाथ बजावै, और विच्छु नाग लिपटावै
तेरी सूरत मोय न भाय, तोय देख-देख डर जाय—
करेजा बारे का
दरस''' '

मैंने उसका यह पूरा गीत सुन कर उससे परिहास मे कहा—"यह तो फिल्मी तर्ज का गीत है जोगी जी।"

वह आँखे तरेर कर बोला — फिल्मी तरज कैसे है भगवन् ?"

"रेशमी सलवार कुर्ता जाली का' शीर्षक एक फिल्मी गीत है। तुम्हारे गीत की वही तर्ज है।"

वह मान गया और बोला—"नई हवा का असर हमारे गीतो पर भी पडा है भगवन्। अच्छा पुराने गीत सुनिये।"

और उसने अनेक भजन सुनाये। मुझे उन सव भजनो मे एक कृष्ण सम्बन्धी गीत अच्छा लगा। वह गीत इस प्रकार है—

खाई री जसोदा रानी सामरे ने बिरजे रज खाई
खाई री जसोदा मैया कृष्ण ने माटी

ग्वालिनी को सग छोड खेलने अकेलो जाय
हाथ मे तो डेला लियो, बैठो-बैठो माटी खाय
ग्वालन ने कई तेरी मैया से कहूँगी, तेरे दादा से कहूँगी, तेरे बाबा से कहूँगी
देखैं जबई करैं लडाई मैया, सामरे ने ब्रिरजे रज खाई
इतनी सुनकै जमोदा उठ धाई
पकडै हरी के हाथ माटी कैसे खाई
ठुनक-ठुनक तुतलाय के बौले स्याम
मैंने नई खाई मोहे राम की दुहाई
झूँठी आन लगाई, सामरे ने बिरजे रज खाई
माता तेरे आगे बोलै नाये बाहर दिखावै जोर
सिंग हू के ग्वाल-बाल दाऊ जी की होवै ओर
खाई री जसोदा माता कृष्ण जी ने बिरजे रज खाई
छोटे से बलदाऊ मेरे झूँठ हूँ न बोलै राम
तू तौ लवार तेरी बात कौन माने
नैक मुख तौ फाड देउ माटी कैसे खाई
छोटे से मुखारविन्द कृष्ण जी ने फाड दिये
दीप और खण्ड जामे सातो समन्दर तीनो लोक दिखाये
खाई री जसोदा रानी सामरे ने बिरजे रज खाई

शिव-भक्तो मे कृष्ण-भक्ति भी पर्याप्त मात्रा मे देख कर मन प्रसन्न हो गया। पूर्व काल जैसा शैव्यो और वैष्णवो का विरोध आज बहुत कम हो गया है। ब्रज-भूमि मे रहने के कारण ये शिव-भक्ति जोगी कृष्ण के भी पुजारी है। इनके गीतो मे शैव्यो और वैष्णवो की एकता स्थापित होती दिखायी देती है।

जवानी बडी दीवानी होती है। कवियो ने इसके लिये अनेक उपमाये दी है। लोकगीतो मे भी जवानी के लिये अनेक उपमाये आयी है किन्तु आगरा मे गाये जाने वाले एक गीत मे उपमा बिल्कुल नयी और अनूठी है। इस गीत मे जवानी की उपमा अगरेजो के राज्य से दी गयी है। किसी समय भारत मे अगरेजो का राज्य भी अपने पूर्ण यौवन पर था। उसी से नव-यौवना के यौवन की उपमा बडी सार्थक बन गयी है।

जुआनी[1] सर सर सर्रावै
जैसै अगरेजन कौ राज
अगरेजन कौ राज
जैसै उडइ हवाई जहाज

१ पाठांतर-जुवानी सरर-सरर सर्राय, कै जैसै अगरेजन कौ राज।

जुआनी सर-सर सर्राय
जैसै अंगरेजन कौ राज
काजर दे मैं का करूँ
मेरे वैसेई नैन कटार
जुआनी सर-सर सर्रावै
जैसै अंगरेजन कौ राज
जातें मिल जाय निगाह
वही मेरा ह्वै जाय ताबेदार
जुआनी सर-सर सर्रावै
जैसै अंगरेजन कौ राज
उमर खिंचे पै कोऊ न पूछै
जुआनी कौ संसार
जुआनी सर सर सर्रावै
जैसै अंगरेजन कौ राज

एक सम्पन्न घर की लडकी का विवाह किसी परदेसी से होता है। उस लडकी को भय होता है कि कही परदेसी के घर उसे असुविधाएँ न हों। वह अपने पीहर की विशेषताएँ बताती हुई उस परदेसी के साथ जाने से मना करती है।

तिहारे (तोरे) संग नाँय जाऊँगी परदेसिया,
तिहारे (तोरे) सग नाँय जाऊँगी।
तिहारे (तोरे) सग जाऊँगी मे भूखी मर जाऊँगी,
मोरे पिहर मे जलेबियाँ ॥ तोरे ...
तिहारे (तोरे) सग जाऊँगी मैं प्यासी मर जाऊँगी,
मोरे पिहर मे सुराइयाँ ॥ तोरे ...
तिहारे (तोरे) संग जाऊँगी मैं नंगी मर जाऊँगी,
मोरे पिहर मे रजाइयाँ ॥ तोरे ...

आगरा मे गाये जाने वाले उपर्युक्त गीत जैसा ही एक गीत भोजपुरी बोली मे भी है। इसमे भी बिल्कुल इसी प्रकार के भाव हैं—

तोरा सगे न जइबो, तोरा सगे न जइबो, भूखन मरि जइबो।
मोरा बावा का पूडी मिठाई, तोरा संगे न जइबों,
तोरा सगे ना जइबो प्यासनि मरि जइबो
मोरा बावा का कोठा अमारी, तोरा सगे ना जइबों,
तोरा सगे न जइबो।

मोरा वावा का लाली पलगिया, तोरा सगे न जइबो,
तोरा सगे ना जइवो, भूखन मरि जइबो

आगरे मे कजडो का भी एक विशेप स्थान है। वजीरपुरा नामक मोहल्ले मे इनकी अलग वस्ती है। वैसे नगर के अन्य हिस्सो मे भी इनके घर है किन्तु यह बस्ती प्रमुख है। ये घुमक्कड परिवार के लोग अब यहाँ स्थायी रूप से बस गए है। इनका मुख्य रोजगार रस्सियाँ, छीके, पीढियाँ, सरकन्डे के झुनझुने आदि वनाना है। ये सूअर के वालो का भी व्यापार करते हैं। देशी ठर्रा पीना इनका दैनिक व्यसन है। इनके गीतो मे भी वडी मस्ती और अल्हडता है। एक एसा ही गीत प्रस्तुत है—

कल्हारी के द्वारे विलम गयौ रसिया
पूरी ठर्रा की बोतल पै रीझ गयो रसिया
मोची की गली में विलम गयो रसिया
मोचिन को देखि कै रीझ गयो रसिया
सुनरा की गली मे बिलम गयो रसिया
हँसुली को देखि कै रीझ गयो रसिया
ससुरा के घरि मे विलम गयौ रसिया
लुगइया को देखि कै रीझ गयो रसिया

शराब पीने पर मार-पीट, लडाई-झगडे भी होते है। पति अपनी पत्नी को मारता है। गदी-गदी गालियाँ वकी जाती है। पुलिस इन्हे पकड ले जाती है। नशा उतरने पर इनकी समझ मे नही आता कि इन्हे क्यो, कब और कैसे पकड़ लिया गया। पति के गिरफ्तार होने पर पत्नी थाने जाकर दरोगा जी से पूछती है 'कि उसके पति को क्यो पकड़ लिया गया। वह रिश्वत देकर अपने पति को छुड़ाना चाहती है। पाँच-दस रूपये की तो वात ही क्या वह अपना शरीर रिश्वत मे देकर पति को छुडाने के लिए तत्पर रहती हैं। ऐसी ही एक स्त्री का वर्णन निम्नलिखित गीत मे है —

वावू दरोगा जी ! कौन कसूर मे धर लियौ सैयाँ हो ?
पाँच रुपैया दरोगा को दऊँगी, दस दऊँगी कुतवार,
वाला जुवन मै फिरगिया को दऊँगी, सैयाँ को लऊँगी छुड़ाय।
वावू दरोगा जी ! कौन कसूर मे धर लियो सैयाँ हो ?

इस गीत से प्रकट होता है कि अग्रेज अधिकारी कितने दुश्चरित्र होते थे। वे अच्छा वेतन पाते थे अत उन्हे रुपयो की इतनी चिन्ता न थी जितनी रूप और यौवन की थी। वे वडे कामी थे। तभी तो इस स्त्री को पूरा भरोसा है कि उसका पति जेल से छूट जाएगा।

इच्छा अथवा अनिच्छा से किसी ने एक स्त्री का शील-भग कर दिया। उस स्त्री को उस पुरुष पर क्रोध आता है। वह उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने की धमकी देती है। यह धमकी झूँठ-मूँठ की भी हो सकती है और सचमुच की भी। हो सकता है कि वह ऊपर मन से उसे डॉट रही हो। वैसे सत्य तो यह है, कि कोई शीलवती स्त्री अपना शील-भग होने पर या उससे पूर्व ही अपने प्राण दे देगी। वह हँस-हँस कर और गा-गा कर यह नही कहेगी कि—

अरजी साजन तै दिलवाय दऊँगी तेने मोरा जुबना लूटा।
अ र र र ! तेने मोरा जुबना लूटा। अरजी०
दिल्ली जा के रपट लिखाऊँ, कलकत्ता मे केस चलाऊँ
बम्बई जेल कराय दऊँगी, तेने मोरा जुबना लूटा। अरजी०
चाहे बिकलै मौहन माला, चाहे घर कौ कढै दिवाला
चकिया तोय पिसाय दऊँगी, तेने मोरा जुबना लूटा।
अ र र र ! तेने मोरा जुबना लूटा। अरजी०

प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव भारत पर कम नही पड़ा था। युद्ध मे अग्रेज फँसे हुए थे। भारत अग्रेजो के शासन का अग था अतः भारतीय सैनिको को अग्रेजो की ओर से जर्मनी से युद्ध करना पडा था। भारतीय सैनिको को विवश होकर लाम पर जाना पड़ गया था। एक सैनिक की इस विवशता का चित्र निम्नलिखित लोक-गीत मे है—

अब के जान बचा मोरे प्यारे जरमन की लडाई तै।
तोप चलै, बन्दूक चलै और गोला चलै सन्नाई कै।
हालहि तौ मै गौना करि कै दुलहिन घरि मे लायौ थौ,
घुँघटा वाकौ अबहू तलक नाही थोरौ खसकायौ थौ,
मोकूँ लपटन ने बुलवायौ पाती तुरत पठाई कै।
अबके जान बचा मोरे भैया जरमन की लडाई तै॥
खदक मे पानी भरि जावे, जाडो बदन गलावै रे,
ऐसो जोर जुलम जरमन को ल्हासई ल्हास बिछावै रे;
अब तौ पीछौ छूटैगौ रे अपनी जान गवाँई कै।
अब कै जान बचा मोरे दद्दू जरमन की लडाई तै॥

ऐसे ही एक भारतीय सैनिक की पत्नी अपने पति की याद कर कहती है—

मेरो बालम रण मैं
मोर मचावत सोर।

मेरो साजन लडि रह्यौ जग
पपहिया क्यो मोइ करि रह्यौ तग
है रन केसरी मेरा साजन
रण को बाँधि लयौ है कॉकन
जर्मन कूँ मात खवावै
मेरौ साजन लौटि घर आवै

अग्रेजो की विजय भारतीय सैनिको के कारण ही हुई। भारतीय नागरिको को इस पर गर्व है। किन्तु अग्रेजो ने इस सहायता के बदले भारतीयो को क्या दिया ? गोलियाँ और जेलें—

× × ×

लीजो खबरि जगत के स्वामी
मेरी नाव पडी मझधार
जर्मन मे जब भई लड़ाई
अग्रेजो की अलवत होती हार
भारत ने जब मदद दई
रगरूटन की भरमार
वाकी एवज गवरमेण्ट ने
दीनी हमे लताड
चलि करिके जलयान बाग मे
कीन्हे अत्याचार
विन बूझें बिन खबर हमारी
भरि दिए कारागार
फॉसी दैकै हने हमारे भगतसिह सरदार

दूसरे विश्व-युद्ध मे जापान एक शक्तिशाली सैनिक-सगठन लेकर मोर्चे पर आया। उसकी वीरता के भी लोकगीत चल पडे। उन गीतो मे जापानी की शक्ति और प्रभाव का वर्णन होता था। जैसे—

अरे जापानी पूरब की उठी झकझौर, भयौ रन भारी रे।
पिचकी नाक, चपट्टौ म्होडा, बोनन जैसे कद के,
लै तोपे वन्दूक दनादन अग्रेजन पै कुदके,
अरे इनने करि दियौ जग मे भारी सोर, भयौ रन भारी ॥

स्वतन्त्रता के लिए लडे जाने वाले अहिसात्मक सग्राम के प्रणेता महात्मा

गाँधी जन-जन के नेता हो चुके थे। लोगों ने उन्हें राम और कृष्ण के समान अवतार माना। इस प्रकार का एक लोकगीत है—

अवतार महात्मा गाँधी है भारत को भार उतारन को।
सिरी राम ने रावन मारो थौ, कान्हाँ ने कंस पछारो थौ,
अब गाँधी ने अवतार लियौ इन अंग्रेजन के मारन को।
सिरी राम के हाथ धनुस बान, कान्हाँ के हाथ सुदर्सन थौ,
गाँधी के हाथ में चर्खो है, भारतवासिन के तारन को।

गाँधी जी के साथ ही श्री जवाहर लाल नेहरू भी जन-मन पर प्रभाव डालने वाले एक युगान्तरकारी नेता माने गए। उनके त्याग, उनकी राष्ट्रभक्ति और उनकी दृढ़ता प्रकट करने वाले अनेक लोकगीत लिखे गए। एक गीत है—

भारत मइया के रखवार जुग-जुग जियो जवाहरलाल
मोती जैसी चमक तिहारी
दुनिया जानें गमक तिहारी
कमला रानी के करतार, जुग-जुग जिऔ जवाहरलाल।
कँपा दई अंग्रेजी सरकार
करी जनता सिगरी हुसियार
हमारी नैया के पतवार, जुग-जुग जिऔ जवाहरलाल।

पुरानी 'आल्हा' की तर्ज पर नई 'आल्हा' गाई जाने लगी। यह "स्वतन्त्रता की आल्हा" थी। इस तर्ज पर राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी भाव प्रकट किए जाने लगे एक उदाहरण है—

सीस नवाऊँ गुरु अपने कूँ, दुर्गाजी में ध्यान लगाय।
आल्हा गाऊँ आजादी की, भैया सुन लेउ कान लगाय।।
कारे मन के सभी फिरंगी जिनकी जालिम है सरकार।
खून पियें भारतवासिन के जे लोभी, कामी, मक्कार।।
सन सतावन में भारत की गुस्सा गयी जवानी खाय।
झाँसी वारी रानी ने ली तेज दुधारी हाथ उठाय।।
दन-दन गोला-गोली छूटे, धाँय-धाँय तोपें थर्राय।
कट-कट मुँड गिरे धरती पै, देख फिरंगी दहसत खाँय।।

आगरा में किसान कवि श्री उल्फत सिंह 'निर्भय' के लोकगीत भी बहुत प्रसिद्ध है। इनके गीतों में किसानों, गाँवों, वहाँ की परिस्थितियों आदि का तो वर्णन रहता

ही है साथ ही राष्ट्रीय चेतना भी भरी रहती है। 'निर्भय' जी ने राष्ट्रीय रसिये भी बड़े मार्मिक लिखे हैं। वाह, फतिहाबाद- किरावली, फतहपुर सीकरी आदि तक इनके गीतो की धूम है। यह राष्ट्रीय रसिया सन् १६३० के स्वतन्त्रता सग्राम के दिनो में लिखा गया था—

तेरे पापनु कौ अव पापी काहु दिन भँडा फूटैगो।
रावन करि करि पाप सिरानौ।
मिटि गयौ कस कौ नाम निसानौ
राजा वेन की सी गति है जइ, कर्मनु फूटैगौ॥ तेरो०
खून सरदनु कौ रग लावै
तेरी हस्तिऐ खाक मिलावै
खरा खोज जव तक न मिटै तेरौ पिंड न छूटैगौ॥ तेरे०
वम्व चलाई चाहे गोली चलाइ लै
वे अपराधिनु फाँसी चढाइलै
चाहै कितनिहु जेल भरौ, नहि ताँतौ टूटैगौ। तेरे०
कैसे हु करिलै आज धधाके
आखिर जाइ जैसे सीग गधा के
तू तौ पापी जाइगौ ही, जस 'निरभै' लूटैगौ॥ तेरे०

देश स्वतन्त्र हुआ। सारे देश मे आनन्द मनाया जाने लगा। दिल्ली के लाल किले पर १५ अगस्त १६४७ ई० को देश के प्रथम प्रधानमन्त्री राष्ट्रनायक श्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र-ध्वज लहराया। देश की प्रगति और विकास के कार्यक्रम वनने लगे। लोगो को अपनी राष्ट्रीय सरकार से वड़ी-वड़ी आशाये होने लगी। इस राष्ट्रीय चेतना ने लोकगीतो मे प्रकट होना आरम्भ कर दिया। "लांगुरिया" की पुरानी किन्तु लोकप्रिय धुन पर यह आधुनिक लोकगीत आगरा मे भी गूँज उठा—

गाँधी वावा ने वचाय लइ मोरे वारे लाँगुरिया।
अपने वापू ने वचाय लई मोरे वारे लाँगुरिया॥
अंग्रेजन की सत्ता भारी,
रहे न एकहुँ लत्ता सारी,
गोरी फौजे सव भगाय दइ मोरे वारे लाँगुरिया।
गाँधी वावा ने वचाय लइ मोरे वारे लाँगुरिया॥
सत्य-अहिंमा लै के वानो,
वीर जवाहर ने प्रन ठानो,
भारत माता ऊ वचाय लइ मोरे वारे लाँगुरिया।
गाँधी वावा ने वचाय लई मोरे वारे लाँगुरिया॥

पच-वर्षीय योजनाओ मे जगह-जगह बॉध बनने लगे, गाँवो मे सड़के बनने लगी, बिजली लगने लगी, खेती मे वृद्धि के उपाय खोजे जाने लगे तो लोकगीत गायक प्रसन्न हो गा उठे—

दये नदियन बॉध बँधाये लँगुरिया,
खुलि गए भाग हमारे हो ।
अरु बिजुरी दई लगाय लँगुरिया, खुलि गये भाग हमारे हो ॥
चमक उठी अब खेती-बारी
घरि-घरि ह्वै गए धन्धे जारी
संकट गए नसाय लँगुरिया, खुलि गए भाग हमारै हो ।
गॉमन-गाँमन ताल-तलैयाँ
रूखन की भई सीतल छैयाँ
कुआ दये खुदवाय लँगुरिया, खुलि गए भाग हमारे हो ।

पुराने लोकगीतो की धुनो मे नयी भावनाये मुस्कराने लगी । खादी के प्रचार के लिए गाँव-गॉव मे हाटे लगने लगी, खादी की विशेषताये बतायी जाने लगी और कोई गाँव की गोरी गा उठी—

अरै मैं तो ओढ चुनरिया जाऊँगी मेले मे
मोहि देख सँवरिया रीझे अकेले मे
चटकीले रंग मोय मँगादो धोये छूट न जाय
अपने हाथन रंगूँ चुनरिया देखि पिया मुसकाय
जब मोरी पचरग चुनरी चमकै उजेले मे
मैं तो ओढ़ चुनरिया जाऊँगी मेले मे
खादी की मोटी बनी चुँनरिया देसी झलकै रग
जरी किनारी और विदेशी जाके मारे तग
अरै मोरी बात राखि लेई खादी ने मेले मे
मैं तो ओढ चुनरिया जाऊँगी मेले मे

किन्तु आनन्द अधिक दिनो तक नही टिक सका । देश की स्वतन्त्रता के बाद भी जनता को सुख न मिल सका । वही निर्धनता, बेकारी, तगी और परवशता अब भी नगर-नगर और गॉव-गॉव मे थी , इन परिस्थितियो के चित्रण लोकगीतो मे भी होने लगे । इस निर्धनता और विवशता का चित्रण निम्नलिखित लोकगीत मे देखा जा सकता है—

मत बेचै बलम भैंसिया
लड़का मट्ठा कूँ जायेगे

साग तरकारी न होयगी
मीड रोटी खायेंगे, वड़े प्रेम सो—
मेरी परोसी के द्वै-द्वै भैंसिया
धमके होत फटै छाती
सेर का बाँट विनौरे
घिउ द्वै मन डरौ डूँड़ पै
का छाय रही भैंस मूँड़ प

जिस लाँगुरिया की धुन पर गाँधी वावा की जय और नदियो मे बाँध वनाए जाने की प्रसन्नता व्यक्त हुई थी उसी लाँगुरिया की धुन पर निर्धनता रो उठी—

घर मे नाय नाज को दानो गुजर कैसे होयगी लाँगुरिया ।
मौज उड़ामे नेता हाकिम और मेम्वर वैठे ।
अपने घर से काम और की करत सुनाई नाँय ।।
गुजर........ . ... ..........
दिन पै दिन अन्धेरे है रहे भारत के दरम्यान ।
वगुला भगत कर रहे भारी जनता को हैरान ।।
गुजर ............... .. ... .. .
तुम विन कौन खवर ले जग की दीन वन्धु भगवान ;
और नित नई पड़ रही मुसीवत भोजन नित की जान ।।
गुजर........................ ...
खाली पेट लगे जैकारे कढ़े न मुख से वोल ।
थाना कहै वजै भारत मे आजादी के ढोल ।।
गुजर .... . . . . .. ......

इन सव परिस्थितियो का दोप स्वतन्त्रता को तो नही दिया जा सकता किंतु स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने वाले कुछ अवसरवादियो ने देश की आर्थिक और सामाजिक दशा को विगाड़ना आरम्भ कर दिया । एक ग्रामीण स्त्री अपनी सखी से अपने अवसरवादी पति के विपय मे वता रही है—

टेढ़ी टुपिया लगामे, कुरता खादी कौ सिमामे, हो हमारे वालमा !
अग्रेजन के राज में, कवहु न काटी जेल
पुरिखा भूँखनि मरि गए हैं करमन का खेल
अव तौ किसमिस उडावें, रसगुल्ला चवामे, हो हमारे वालमा !
टेढ़ी ''

जा घर में टटुआ नहीं, वा घर ढूँ-ढूँ कार
गुइयाँ चोर वजार मे खूब वढ़यौ व्यौपार
घर कलक्टर के जामे, वढ़ि कै हाथ मिलामें, हो हमारे वालमा !
टेढ़ी ...... ... ...............

मोटर कौ परमिट मिल्यौ, रासन कौ लैसस
सैंयाँ नेता का भये, वनि गयौ कौआ हँस
एक वोतल के नसा में, पागल कुत्ता से घुरावे, हो हमारे वालमा,
टेढ़ी ...... ...... .. .

उधर एक अन्य स्त्री भी है जिसका देवर एम० एल० ए० हो गया है । उसके कार्यो पर व्यंग करता हुआ निम्नलिखित लोकगीत बड़ा रोचक और हास्य-वर्धक है—

एम० एल० ए० वनि आयौ री हमारौ देवरिया ।
नेता वनि आयौ री हमारौ देवरिया ॥
कांगरेस कौ टिकस मिल्यौ अरु वैलन की जोड़ी ।
अरी मोरी गुइयाँ सड़ी गधइया वन आई घोड़ी ॥
गधा हाथी वनि आयौ री, हमारौ देवरिया ।
म्हौ पै धर कैं चिलम सरीखी, भौंपू सो डकराय ।
ऊँचौ करि-करि हाथ हवा मे, तीनि-तीनि वल खाय ॥
मिनिट्टर संग मे लायौ री, हमारौ देवरिया ।

सुख-सुविधाये चाहने वाली एक फैशनेविल नारी अपने पति के सामने भाँति-भाँति के प्रस्ताव रखती है । वह अपने लिये फैशन की अनेकानेक वस्तुएँ मँगाती रहती है । ऐसी ही एक नारी का चित्रण उसी के शब्दो मे एक लोकगीत मे इस प्रकार किया गया है—

पिया फैसन कराय दे मन मानी
हम जानी कै तुम जानी
पिया जइयो वजार, सुनरा लइयो वुलाय
छागल करो तैयार, छैल चूड़ी मोहे सुहाय,
कि होय मन मानी हम जानी कै तुम जानी
पिया जइवो वजार, सीसा लइयो विसाय
कंगी होवै कड़ाकेदार, चप्पल नई चाल, हाथ रेसमी रूमाल
रंग असमानी, पिया फैसन
चूड़ा सोना को विसाय, चूड़ी होय चमक्केदार
अँगूठी होय नगीनादार. सितारखानी

पाउडर, क्रीम सुरमादानी, वट्टी तीन साबुनदानी
पिया फैशन ····
हरमुनिया सितार टेलीफोन हो तयार
जामे रेडियो का काम जर्मन-जापानी पिया
तोता मैना दुरग लोडी बाँदी हो सग
मोटर कार हो पास बडी तूफानी पिया० ··· ·· ···
पिया कमरा सजाय, वापै पलिका बिछाय
बामैं गद्दा लगाय, बामैं तकिया सजाय
लगा मच्छर दानी पिया०
पलिका ऊपर पावदाना, पलिका नीचे पीकदाना
वामे इत्ते सामान और नल का पानी
पिया फैशन ······ ··

चटक-मटक कर रहने वाली स्त्री वहुधा दुश्चरित्र मानी जाती है। ऐसी ही एक स्त्री को सम्बोधित कर निम्नलिखित गीत गाया गया है। कहावत है कि ऐसे पै तौ ऐसी, जाने काजर दिये कैसी ? वह स्त्री वैसे ही वडी सुन्दर और नव युवती है फिर इस पर उसने सौन्दर्य-प्रसाधनो का भी प्रयोग कर रखा है। ऐसी स्थिति मे भय है कि देखने वाले उस पर मुग्ध न हो जाये। इसीलिये उसका प्रेमी उससे कहता है—

गोरी पिछवारे को जानो छोडि दे। टेक
जुल्फें तिहारी कारी नगिनिया, गोरी अतरु लगानो छोडि दै।
आँखें तिहारी जैसे निबुआ की फाँके, गोरी सुरमा लगानो छोड़ि दै।
दाँत तिहारे है दाने अनारन के, गोरी मिस्सी लगानो छोडि दै।

चार दिन की चाँदनी की भाँति यह दीवानी जवानी नाच-गा कर जब चली जाती है तो बुढापे मे शारीरिक और मानसिक कष्ट वडे भयकर रूप से सताने लगते हैं। रह-रह कर अपनी जवानी की याद कर बूढ़े रोते-झीखते रहते है। इस दुर्दशा का वर्णन एक 'रसिया' लोकगीत मे दृष्टव्य है—

बुढापौ वैरी कैसै कटै मेरी ज्वानी को ससार
जवानी वैरिन जौई तौ गई
बुढ़ापे मे मट्टी ख्वार भई
न अब पहली सी कदर रई
कदर न पहली सी रही जब है तावेदार
वेई रडुआ दिन करै माम अव मारै फटकार

देह की सुकर गई सब खाल
मूड के धौरे परि गये वाल
दिन करे वैठ गये दोऊ गाल
गाल गये दोउ वैठ के आँखन ते लाचार
कानन ते कमती सुनूँ मेरी डगमग हालै नार
बऊ-बेटा नित करे कलेस
झीकने रह गये जेई हमेस
काऊ विध जाय न मेरी पेस
पेस कोइ जावै नही कहा करूँ रुजगार
जीवे तै मरवो भलो कोई ये मेरे करतार

## २. लोकगीतकारों के जीवन-वृत सम्बन्धी जन-श्रुतियों की परीक्षा

लोकगीतकार जनता की भावनाओ का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाला एक ऐसा कलाकार होता है जो जन-जीवन की प्रमुख गति-विधियो से परिचित रह कर उन्हे अपने गीतो मे प्रकट करता है। उसके गीतो की भाषा लोक-भाषा होती है। वह अपनी सरलता और सरसता से जन-मानस को प्रभावित करता रहता है। वह अपने गीतो मे सांस्कृतिक, राजनीतिक, समाजिक पारिवारिक, धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओ को व्यक्त करता रहता है। लोकगीतो के रचयिताओ के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त नही की जा सकती। हमारे लोकगीत तो अनेक वर्षो से चली आती हुई हमारे पूर्वजो की परम्पराओ के प्रदर्शक है। लोकगीतकारो का परिचय देना भी सभव इसलिए नही हो सकता क्योकि ये लोकगीत स्वाभाविक रूप से ही बनते, सुधरते, सँवरते, निखरते और विकसित होते चले आए है। इन गीतो के रचयिता इतने महान थे कि उन्होने अपने गीतो मे अपने नाम देना भी उचित नही समझा।

जिन लोकगीतकारो का परिचय मिला भी है वह जन-श्रुतियो के आधार पर ही मिल सका है। बाद के लोकगीतकारो ने अपने नाम अपने गीतो के अन्त या मध्य मे अवश्य रख दिये है। इनसे भी इनके विषय मे कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती है। आगरा जिले मे जिन लोकगीतकारो के गीत पिछले कुछ वर्षो मे लोकप्रिय हुए है उनके जीवन-वृत सम्बन्धी जन-श्रुतियो की परीक्षा अवश्य की जा सकती है। गत वर्षो मे लोकप्रियता पाने वाले कुछ लोकगीतकार निम्नलिखित है—

पतोला, सुखैया, मोहनसिंह, हरनाम सिंह (हन्ना), हरफूला, गनेसा, सोभाराम, चदसखी, ईसुरी (बुन्देलखन्डी), निर्भय, छाजू, नत्थन, माधो प्रसाद जोगी।

### पतोला

आधुनिक राजपूती होली के जन्मदाता आगरा जनपद के अन्तर्गत भाहई नामक गाँव के निवासी थे। वे जाति के धाकरे ठाकुर थे। इनका असली नाम पातीराम था किन्तु शरीर से दुबले-पतले होने के कारण लोग उन्हे 'पतोला' कहते थे। होली पर एक बार किसी ने उनके "पतोला" नाम की व्युत्पत्ति के विषय मे पूछा तो उन्होने तुरन्त उत्तर दिया —

अन्न टका भरि खाऊँ, सूखि गयौ चोला।
ताते मेरो परि गयौ नामु पतोला ॥

पतोला से पूर्व या तो एक 'कडी' की राजपूती होलियाँ गायी जाती थी अथवा ढफयायी होलियाँ। इन्होने होलियो को नया रूप देकर प्रस्तुत किया जिसके प्रभाव से गीत भी वड़े बनने लगे और वे राग-रागनियो मे बद्ध होकर गाए जाने लगे। पहले होलियाँ बहुधा 'चिकारे' पर ही गायी जाती थी, पतोला ने होलियाँ "इसराज" पर गाने की प्रथा डाली। ढफयायी होलियो मे प्रतिवर्ष प्रायः पुरानी होलियाँ ही गायी जाती है। इनका सम्बन्ध मुख्यतः राधा-कृष्ण की रास-लीला से होता है। राजपूती होलियाँ प्रतिवर्ष नई तर्जो पर स्वर-सम्वाद के साथ गायी जाती है। पतोला से पूर्व राजपूती और ढफयायी होलियो में कोई विशेष अन्तर नही था। इनमें अन्तर केवल साज और विषय-प्रतिपादन का ही था। राजपूती होलियो मे पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक जीवन के चित्रण रहते है।

## सुखैया

इधर आगरा जिले के भदावर क्षेत्र मे 'सुखैया' नाम के एक अति प्रसिद्ध लोकगीतकार हुए हैं। उनकी 'होली' देश भर मे प्रसिद्ध हो गई है। वैसे स्वर-सम्वाद की दृष्टि से राजपूती होलियों के जन्मदाता 'पतोला' ही हैं किन्तु राजपूती होलियो को अधिक लोकप्रियता दिलाने का श्रेय सुखैया को ही है। वे अपने समय के नामी 'हुरियार' थे। सुखैया का असली नाम सुखलाल पटवारी था। वे बाह के अन्तर्गत सुखलपुरा नामक ग्राम मे पैदा हुए थे। वे जाति के कायस्थ थे और पटवारी का काम करते थे। होली गाने के वाद से ही उनका नाम सुखैया पड़ा। उन्होंने स्वय एक गीत मे कहा है—

वंसी, मोहन सीग सुरीलौ, दिमना नीकौ ऐ,
अतरौली गामु जाकौ ने कराम गोकुल कौ सीखौ ऐ,
औरु विरखा गड़सा से देई तुकम वेतमीज गावुत ऐ ऽ ऽ ऽ रे
मुम्मा पतिया सूरा लालराम—
जे मैंने नामी सुने गवैया।
ताते मेरौ परि गयौ नाम सुखैया ॥

इस गीत से विदित होता है कि सुखैया अपने समय के अन्य अनेक लोकगीत-कारों से प्रभावित हुए थे किन्तु अपनी सरसता मे वे इनसे भी बढ गए। इन्हे बचपन ही से होली गाने की रुचि थी। प्रारम्भ मे वे अन्य गितारियो की फेंटी में रहकर होली गाते थे। बाद मे स्वय अपनी फेंटी वनाकर होली गाने लगे। वे रात को

होली गाते और दिन मे पटवारीगीरी की टीपन करते । एक टीपन करते समय वह लिख गए —

"झमकि अटरिया चढि गई पन्ना छप्पन की

हाकिम ने उन्हें डाँटा और कहा कि उन्हे होली और पटवारीगीरी मे से किसी एक को चुनना है । मुखैया ने होली को चुना । होली ने ही उनका नाम अमर कर दिया ।

मुखैया केवल हुरियार ही नही थे, उन्होने होली और शृ गारी गीतो के अतिरिक्त, अनेक सुन्दर भजन भी बनाये । सुदामा के विषय मे भी उन्होंने बहुत सुन्दर लोकगीत लिखे । सुदामा की पत्नी का एक कथन बडा मार्मिक है—

समझाइ रही मति मामा
पिया नैक द्वारिकानी जैयौ ।
महाँ सुने पुराने मित्र तुम्हारे
बिन सो सबहि विपति कहियौ ॥
तन भरि कपडा नहि पहरे तीनो पन गए बीति
भिक्षा सो गुजर करें—
जानें कबनो के पाप, खबरि ही नही, जानें ... . ...... . ...
अब कांटनि मे फिरैं डरहानें ।
घर नाँहि समा के दाने ॥

इस गीत मे मुखैया के समय की आर्थिक दशा का भी परिचय मिल जाता है । स्वयं, मुखैया की भी आर्थिक दशा अच्छी नही थी । इस गीत मे उनकी निजी दशा की भी झलक मिल जाती है ।

## ठा० मोहन सिंह

मुखैया के समान ही मोहन सिंह भी आगरा के प्रसिद्ध होली गायक थे । मोहनसिंह बिसैरा गाँव के निवासी जाट ठाकुर थे । वे आधुनिक राजपूती होलियो मे पतोला के शिष्य थे । उनकी होलियो मे भी विविध रसो का योग मिलता है । उन्होने सयोग और वियोग शृ गार की होलियाँ लिखी किन्तु जीवन के अन्य अङ्गो का भी उन्होने स्पर्श किया और उनमे सुन्दर रग भरे । उनकी होलियो मे जीवन की बारीकियो के बड़े सरल और सरस चित्र होते है । मोहनसिंह को होली-साहित्य के इतिहास का सर्वश्रेष्ठ सुरीला गितारी माना जाता है । आज भी उनकी होलियाँ गाँव गाँव मे बड़ी धूम के साथ गायी जाती हैं । "परदेसी की प्रीति" पर उनकी एक होली है—

परदेसी की प्रीति का है,
झोल कौ सौ तायनौ,
दियौ करेजा काढि,
तऊ भयौ नही आपनौ ।
कोऊ मति करियो ।
प्रीति करै तो ऐसी करियो—
नित उठि है जाय भेली ।
नित सबते भली अकेली ।

मोहनसिंह के विषय मे एक जन-श्रुति है कि इनके यहाँ प्रतिवर्ष होली वड़ी धूम-धाम से मनाई जाती थी । दूर-दूर से लोग इनकी होली सुनने आते थे । इन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनो ही प्रसन्न थी । होली सुनने जो हजारो लोग इनके यहाँ आते थे उनके ठहरने, भोजन आदि की व्यवस्था इनकी ओर से ही होती थी । यहाँ तक कि गाँव की किसी भी जाति का कोई अतिथि होता तो उसका भोजन भी मोहनसिंह के ही यहाँ होता था । वे बडे उदार और लोकप्रिय जमीदार थे ।

एक होली पर मोहनसिंह का नाती वहुत वीमार पड गया । वे होली का प्रवन्ध इस वार नही करना चाहते थे किन्तु इससे सभवत लोग यह समझते कि नाती की वीमारी का वहाना कर मोहन सिंह इस वार कंजूसी दिखा रहे हैं । उन्होने होली का पूरा प्रवन्ध कराया । सभी के लिये भोजन तैयार कराया गया । लोग भोजन करने आने लगे तभी उनके नाती का देहान्त हो गया । नाती युवक था अतः उसकी मृत्यु का दुःख असहनीय था किन्तु उन्होने सभी को आदेश दिया कि कोई आँसू की एक वूँद भी न गिराए । उन्हे इस बात की चिन्ता थी कि इतने हजार लोग होली का आनन्द मनाने आए है, वे निराश होकर न लौट जाऐं ।

लाश एक कमरे मे अलग रख दी गई । लोगो को भोजन कराया गया और रात को होली गाने का प्रवन्ध हुआ । अनेक लोगो ने होली गाई किन्तु मोहसिंह ने कुछ न गाया । लोगो ने वहुत आग्रह पूर्वक कहा कि आपकी ही होली सुनने तो हम इतनी दूर से आए हैं । लोगो को निराश न कर उन्होने प्रातः होते समय एक गीत गाया वह इस प्रकार था—

तन वध्यौ धर्‌यौ है,
निवटि गई साँस
जाकौ अब वचवैया कोऊ नानै
जोती है टूटी, होगी न वूटी
पचि हारौ ससार—

चाहै सौंपि देउ धन मगरौ ।
नाने काल ते झगरौ ।

इस गीत को सुन कर लोग आनन्द विभोर हो गए किन्तु गीत की समाप्ति पर ठा० मोहनसिंह की दशा दूसरी ही थी । उनकी आँखो से अविरल अश्रुधारा वह रही थी । इसराज अलग रख वे पेट पकड कर एक ओर बैठ गए । अब लोगो को वस्तुस्थिति का पता लगा । सारा वातावरण शोकपूर्ण हो गया । लोग ठाकुर मोहन सिंह की दृढ़ता और आतिथ्य से अवाक् रह गए । तुरन्त लाश निकाली गयी और उसका विधिवत दाह-संस्कार हुआ ।

ठा० मोहनसिंह के विषय मे एक और जन-श्रुति है । वे अपने गुरु पतौला के निधन के बाद प्रति वर्ष होली गाने अपने गुरु के द्वार पर आते थे । एक बार परिस्थितिवश वे न जा सके । पतोला के भतीजे ने उन्हे बुलावा भेजा किन्तु फिर भी वे न आसके । तब निराश होकर पतोला के भतीजे ने एक गीत गाया—

मोहन सिंह रयौ एकु चेला,
निकरौ बडौ अनारी है ।
आखिर गयौ कुल अपनो को-
नाहक जात बिगारी है ।
कोक पढायौ कौआ ।
वाकौ मौ-सौ गए लिबौआ ।।

गीत के मध्य मे ही मोहन सिंह आ गये । वे गीत सुनकर अप्रसन्न नही हुए अपितु उन्होंने क्षमा-याचना की । इसके बाद वे नियमित रूप से प्रति वर्ष पतोला के द्वार पर जाते रहे ।

मोहनसिंह प्रतिवर्ष नई-नई धुनो पर होलियाँ बना कर गाते थे । उनकी होलियो मे सम-सामयिकता और विषय-वैचित्र्य की विशेपता देखी जा सकती है । उनकी होलियाँ आज भी जन-समाज मे उसी आनन्द, रस और प्रेम के साथ गायी जाती हैं ।

जिकड़ी के भजन गाने वालो मे आगरा-मथुरा के बीच के चार मित्रो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । ये चार मित्र थे हरनाम सिंह (हन्ना), हरफूला, गनेसा और सोभाराम । इन्हे 'कुरसडा के पास का रहने वाला कहा जाता है । हन्ना और हरफूला जाट थे तथा गनेसा और सोभाराम ब्राह्मण । ये चारो मित्र जिकडी के भजन गाने मे वडे निपुण थे । जिकडी की रचना सरल नही होती । इसमे अनेक छन्द होते हैं । इसमें साखी से आरम्भ किया जाता है और फिर "गायौ", 'टेक", "अद्धा", "लावनी", "चौक", 'रगत", "कडी" और अत मे "झड" (तोड) का प्रयोग होता है ।

आगरा-मथुरा के गावो मे जिकड़ी के बड़े-बड़े अखाड़े जमते थे। इन अखाड़ो मे घण्टो विभिन्न छन्दो की बहारो के साथ रस-वर्षा होती रहती थी। अब भी कुछ गाँवों में जिकड़ी के भजन रात-रात भर गाये जाते हैं।

## चन्द सखी

"हिन्दी साहित्यिकारों में कबीर, तुलसी और मीरा की जितनी प्रसिद्धि है, लोक-गीतकारो मे चंदसखी का नाम उतना ही विख्यात है। उत्तर भारत के विशाल भू-भाग मे चन्दसखी की रचनाएँ जितनी जन-प्रिय हैं, उतनी शायद ही किसी लोक-कवि की हो। पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, पूर्वी राजस्थान और उत्तर-पश्चिमी मध्यप्रदेश के जन-साधारण मे, विशेषकर स्त्री-समुदाय मे, जो भजन और लोकगीत गाये जाते हैं, उनकी अंतिम पंक्तियो मे प्रायः "चद सखी भज वालकृष्ण छवि" की शब्दावली होती है। इस प्रकार की रचनाएँ व्रज, राजस्थानी, बुंदेली, मालवी, निमाड़ी आदि हिन्दी की अनेक वोलियो मे मिलती हैं, जो उनके वोलने वाले करोड़ो नर-नारियो की जिह्वा पर वसी हुई हैं।

"व्रजमंडल और राजस्थान मे इस प्रकार के भजन और गीत इतने लोक-प्रिय हैं कि वहाँ प्रत्येक अवसर पर इनका गाया जाना अनिवार्य-सा हो गया है। वहाँ की स्त्रियाँ चक्की, चर्खा, झाड़ू-बुहारी आदि गृह-कार्यो को करती हुई इन गीतो को गुन-गुनाया करती हैं, जिससे वह थकान के स्थान पर आनन्द-उल्लास का अनुभव करती रहती हैं। व्रज की नारियाँ पनघट और यमुना के मार्ग पर जाती आती हुई जब इन गीतो की मधुर ध्वनि से गाती हैं, तव भोर का स्वाभाविक सुंदर वातावरण और भी सुखद और सुहावना ज्ञात होता है। दैनिक कार्य-क्रम के अतिरिक्त त्यौहार, व्रत, उत्सव, पर्व और रात्रि-जागरण के अवसरो पर तो ये गीत आवश्यक रूप से गाये जाते हैं। संगीतज्ञो और गायको की मंडलियों मे भी चंदसखी की अनेक रचनाएँ परम्परा से प्रचलित हैं। इन सव वातो से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के अधिकांश जन-जीवन के साथ चदसखी की रचनाएँ दूध-खाँड़ की तरह घुल-मिल गयी हैं।"[1]

मीरा के वाद चदसखी के भजनो का राजस्थान मे सवसे अधिक प्रचार है, बल्कि औरतो मे तो मीरा मे भी अधिक इसके भजन प्रिय हैं।

—श्री अगर चन्द नाहटा

राजस्थान मे लोक-प्रियता के नाते चँदसखी का नाम मीरा से भी ज्यादा है।

—श्री मनोहर शर्मा ( राजस्थान-भारती, अप्रैल ५० )

---

१ चँदसखी के भजन और लोकगीत--श्री प्रभूदयाल मीतल (प्राक्कथन)

राजस्थान की मरुभूमि मे सगीतकार के रूप मे जितनी लोक प्रिय चँदसखी हुई है, उतनी मीरा भी नही।

—श्री कैलाश चन्द्र माथुर ('साप्ताहिक हिन्दुस्तान,' १२ जुलाई १६५३)

चंदसखी के भजन जितने प्रिय, उनकी जीवन-संबन्धी जानकारी उतनी ही तिमिरावृत्त है। अभी तक यह भी पता नही लग सका की वे क्या थे, कौन थे, कहाँ थे और कब हुए ?

—श्री अगर चन्द नाहटा ("विक्रम", मार्गशीर्ष २००६)

चँदसखी के जीवन वृत्त के विषय मे यत् किंचित ज्ञान-सचयन का कही कोई सूत्र उपलब्ध नही। · ·· ······ ···इनके जीवन पर कुछ भी कहना अद्यावधि प्राप्त सामग्री के आधार पर सभव नही।

—सुश्री पद्मावती "शबनम" (चन्दसखी और उनका काव्य)

मीतल जी की खोज के आधार पर चन्दसखी स्त्री नही, पुरुष थे उनका मूल नाम चन्द या चन्दलाल था, किन्तु साम्प्रदायिक भावना के अनुसार वे स्वय को 'चन्द-सखी' कहते थे। उनका जन्म और देहावसान सम्भवत ओडछा मे माना जाता है। किन्तु उनका अधिकाश जीवन वृन्दावन मे ही बीता था। वे राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वे वृन्दावन के केशीघाट पर रहते थे। वहाँ उन्होने एक विशाल कुन्ज बनवाया था जो अब तक 'चन्द सखी की कुन्ज' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण उनके पदो मे उक्त सम्प्रदाय की भक्ति-भावना प्रकट हुई है। उनके पदो मे नारी हृदय के सहज भावो की सरस अभिव्यक्ति हुई है। इनके अनेक पद हेर-फेर कर कबीर, सूर, तुलसी, और मीरा के बना दिये गये प्रतीत होते है।

सुश्री 'शबनम' ने लिखा है कि चन्दसखी के गेय पदो की भाषा देश-भेद और काल भेद से बदलती रही ····· ··· जिस प्रात मे पदो का प्रचार हुआ, वहाँ के लोक-समुदाय ने भाषा का चोला अपने रग मे रग दिया।

चन्दसखी के अनेक गीत आगरा के लोकगीत बन गये है। उनके गीत स्थानीय लोकगीतो मे ऐसे भिन्द गये है कि चन्दसखी के गीतो और अन्य लोकगीतो में भेद करना असम्भव सा प्रतीत होता है।

चन्दसखी के कुछ गीत निम्नलिखित है—

मन मोहन कुन्ज बिहारी जी, तम रोको मोरी गैल।<br>
मै दहि वेचन को जाती, मेरे सग सहेली साथी,<br>
मैं तुमसे हूँ सरमाती जी ॥ मत रोको मोरी गैल० ॥<br>
तुम ओढ़े कमरिया कारी, अब कहा करहु बनवारी,

हम छाँडि चले ब्रज सारी जी ।। मत रोको मोरी गैल० ।
हम जमुदा जी पै जावें, सब तुम्हारौ हाल सुनावें,
मन चाह्यौ दन्ड दिलावें जी ।। मत रोको मोरी गैल० ।।
तुम्हारौ "चन्दसखी" जस गावै, पर पार कोऊ नहि पावै,
भव आवागमन छुडावै जी ।। मत रोको मोरी गैल० ।।

× × ×

मैं तो तोरा फुलवा बिनन गई स्याम !
फुलवा बिनन गई, कलियाँ चुनन गई, एक पन्थ दो काम ।
घर जाऊँ सो मेरी सास लडेगी, नाम होत बदनाम ।।
बहियाँ मुरक गई, चुडियाँ करक गई, अब का करूँ, मेरे राम !
'चन्दसखी' भज बालकृष्ण छवि, प्रगटे मथुरा धाम ।।

× × ×

मेरी उरझी लट सुरझाय जइयो, मोहन ! मेरे कर मेहदी रची है ।
सिर की साडी सरक गई है, अपने ही हाथ उठाय जइयो ।। मोहन ० ।।
माँथे की बिंदिया गिर जो पडी है, अपने ही हाथ लगाय जइयो ।
हा-हा खाऊँ तेरे पैया परत हूँ, बेरी तनक खवाय जइयो ।। मोहन० ।।
कगन कीले गिर जो गई है, अपने ही हाथ लगाए जइयो ।
'चन्दसखी' भज बालकृष्ण, हरि के चरन चित लाय जइयो ।। मोहन० ।।

× × ×

तेरी साँवरी सूरत मन बसिया ।
हो जी, आज यही रहो राम रसिया ।।
जब हरि मैने आवत देखे, झटपट खोल दई टटिया ।
चन्दन चौकी कौ बैठन दऊँगी चरन पखारें सब सखियाँ ।। हो जी० ।।
तातौ पानी, सियरौ उबटनौ, उबत न्हवावै सब सखियाँ ।
पाट पटवर और पीताम्बर बस्तर पैन्हावैं सब सखियाँ ।। हो जी० ।।
घिस-घिस चन्दन भरी है कटोरी,
खौर लगावें सब सखियाँ, हार पैन्हावें सब सखियाँ ।
दूध दुहायौ, औट सिरायौ,
चामर राधूँ भर पतियाँ बूरौ डारुँ भर पसियाँ ।। हो जी० ।।
छप्पन भोगे, छत्तीसो व्यजन, थार परोसें सब सखियाँ, भोग लगावें सब सखियाँ
सोने की झारी, गगाजल पानी, बीरियाँ चबवावैं सब सखियाँ ।। हो० ।।
चुन चुन, कलियन सेज बिछाई, चरन पलोटें सब सखियाँ ।
'चन्दसखी' भज बालकृष्ण छवि, हरि चरनन की मै दसियाँ ।। हो जी० ।।

## ईसुरी

हल्का गोरा रग, कुछ लम्बा कद, शुक-नासिका, सम शरीर और वेशभूषा मे घुटनो तक धोती, शरीर पर कलियोदार कुर्ता या मिरजई, सफेद साफा ओर पैरो मे बुँदेलखण्डी झब्बेदार जूते तथा हाथ मे छडी—यह चित्र बुन्देली फाग-गीतो के गुरु ईसुरी का है।

ईसुरी का जन्म सवत १८९६ मे झाँसी जिले के मऊरानीपुर गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम भोलानाथ अड़जरिया (तिवारी) था। इनका बचपन लुहरगाँव मे बीता था। इनकी मृत्यु सवत १९६६ मे हुई। ईसुरी बुदेलखण्ड के लोक-कवि थे। वे आशु कवि थे। उनकी फागो मे जन-जीवन का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। ईसुरी की लगभग चार हजार फागे तो प्रकाशित हो चुकी है किन्तु अभी और भी अनगिनती फागें अप्रकाशित ही पड़ी हैं। ग्रामीण क्षेत्रो मे ईसुरी की फागो को गा-गा कर लोग झूमने लगते है। शायद ही कोई ऐसा गाँव झाँसी जिले मे हो जहाँ ईसुरी की फागो की गूँज प्रतिध्वनित न होती हो। आगरे के दक्षिणी गाँवो मे ईसुरी की फागे आ गयी है। जाजऊ, सैंयाँ और आस पास के गाँवो तथा नगलो मे ईसुरी की फागे वहुधा सुनाई देती हैं। इन फागो की बुन्देलखण्डी बोली आगरे की व्रजभाषा मे मिलकर एक प्रथक सौन्दर्य प्रस्तुत करती है। बुदेलखण्डी के कुछ शब्द तो ऐसे उपयुक्त और प्रभावपूर्ण हैं कि उनकी जगह व्रजभाषा के भी सरस शब्द नही लगाए जा सकते। ईसुरी का एक गीत है—

> जुवना गौने कैसे नोने, जुवना गौने कैसे नोने।
> ऐसे मिले बिदरदी सैयाँ मुरका दए दोउ कोने॥

इस गीत मे 'नोने' शब्द बुँदेलखण्डी वोली का वडा उपयुक्त शब्द है। इसी गीत को आगरा के कुछ गाँवो मे इस प्रकार भी गाया जाता सुना गया है—

> जुवना गोरी तोरे नीके, जुवना गोरी तोरे नीके।
> ऐंचि-ऐंचि वेदरदी सैयाँ ने करि डारे फीके॥

किन्तु इन पक्तियो मे 'नोने' और 'कौने' की विशेपता नही आयी। अस्तु, ईसुरी की फागे आगरे के गाँवो मे अपने मूल रूप या परिवर्तित रूप मे जन-मन को आनन्दित करती रहती है।

## ठा० उल्फतसिंह

आगरा के प्रसिद्ध किसान-कवि ठा० उल्फत सिंह 'निर्भय' भी लोकगीतकारो मे प्रमुख स्थान रखते है। इनके लिखे सैंकडो गीत आगरा के गाँव-गाँव मे गाये जाते

है। इनके गीत पौराणिक और ऐतिहासिक इतिवृत्तो पर भी आधारित है और आज की ग्रामीण समस्याओ को भी प्रकट करने वाले हैं। इनकी जिकडियाँ भी बडी प्रसिद्ध है। इनकी एक दुकौडिया जिकडी निम्नलिखित है—

बरुआ धीरै तै वजै ये रस बैन
बाँबी मे सोय नागिनी।
तोको जागत ही डस ले
घर मर जायगी तेरी कामिनी ॥ (साखी)
हर चरनन रत वरस बीत गए सहस सतासी
तब कहुँ खुली समाधि जगत देखे कैलासी
सती सिरोमनि नार पति पद हित सो वदि कै
बैठी आसनि डारि
बैठी आसनि डार सुनत हरिचरित सुहाए
ताहि समय विधि सोच प्रजापति दक्ष बनाये
जव है गह दच्छ ब्रजेस हृदय बढौ अभिमान अति
जिन समझे तुच्छ महेस
प्रभुता पाय जिन्है मद नाने ऐसे बिरले जनमे जगत मे
पद पाय भूपति गरबाए। टेक०
मुनि बुलाय मख रचि दई भारी

कडी—मख भागी सुर सिद्ध नौति दए
छेकि दियौ विधि हरि हर कूँ
बधुनि समेत चले नभ मारग
दच्छ प्रजापति के घर कूँ
सुर सुन्दरि गामे कल मगल मुनिवर ध्यान डिगाए
पद पाय फूल गरवाए। टेक०

## छज्जू-नत्थन

छज्जू और नत्थन नाम के दो लोकगीतकार भी आगरा मे प्रसिद्ध हुए है। ये सवादी भजन गाने वाले थे। इस प्रकार के भजनो मे सवाद होते है और प्रश्नोत्तर रूप मे ये आगे बढते जाते है। ये भजन खजडी पर गाते थे। भक्ति-प्राण जन समाज घण्टो आनन्द विभोर हो इनके भजन सुना करता था। इनके गाए हुए अनेक भजन आजकल भी गाँवो मे गाये जाते है।

## माधोप्रसाद जोगी

जाहरपीर के गीत गाने वालो मे माधोप्रसाद जोगी प्रमुख है। ये आगरा के जोगियो के मुखिया है। जोगी दो प्रकार के होते है—निहग और गृहस्थ। माधो प्रसाद गृहस्थ जोगी है। ये मदिया कटरा (आगरा नगर) मे रहते है और वैद्यक करते है। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी वहुधा घण्टो जाहरपीर के गीत गा-गा कर श्रोताओ को मन्त्र-मुग्ध किया करते है। इनके जाहरपीर के गीतो मे जाहरपीर के जीवन के चार अग प्रमुख हैं—जन्म, युवावस्था, युद्ध और उत्तरार्ध।[1]

---

१ इनका एक गीत अत मे दिए गए गीतो मे है।

# ३. लोक-गीत और काव्यरूप का संतुलन

## लोकगीतों में कला

कला वह तत्व है जिससे काव्य मे सौन्दर्य की वृद्धि होती है अंग्रेजी शब्द 'आर्ट' को ही आज हिन्दी मे 'कला' के अर्थ मे लिया जाता है। कला दो रूपो मे मानी जाती है—

(१) सप्रयोजन कला ( Useful Arts ) यह कला शिल्प, बातचीत, विज्ञापन आदि मे देखी जा सकती है।

(२) ललित कला ( Fine Arts )—यह कला मूर्ति-निर्माण, चित्रकारी, सगीत और काव्य मे देखी जा सकती है। कला का एक तीसरा रूप और माना गया है। इसे कला का अनुभूतिमय अथवा सहृदय सवेदन रूप कह सकते है। यह रूप विशेषत. काव्य मे मिलता है। जब कविता अपने उत्कृष्ट रूप मे होती है तो वहाँ यह तीसरा रूप होता है।

भारत मे कला के ६४ अग माने जाते थे। इन ६४ कलाओ मे सप्रयोजन कला और ललित कला दोनो ही आ जाती है। वैसे काव्य की गणना आचार्यो ने कला मे नही की है किन्तु काव्य को कला से नितान्त अछूता भी नही छोड़ा है। काव्य के जो कौशल-प्रधान अग है उन्हे कला माना ही है। जैसे—समस्या पूर्ति, प्रहेलिका (कूटपद) और मानसी काव्य क्रिया। आचार्यो ने कला के अनुभूतिमय रूप को नही माना है और इसीसे कदाचित शुद्ध या उत्कृष्ट काव्य अर्थात अनुभूति-प्रधान कविता को उन्होने कला नही कहा। कला का सामान्य अर्थ "कौशल" ही होता है। कौशल मे बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है, अत कला मे भी बुद्धितत्त्व की प्रधानता माननी पडती है।

## कला का रूप

यथार्थत किसी कार्य के सपादन का कौशल ही कला है। कला स्वय साध्य नही, साधन है जो किसी भी कार्य के सपादन मे आवश्यक होता है। साध्य के अनुकूल उपकरणो को कौशल से जुटाने और प्रयुक्त करने मे ही साधन की सार्थकता है और साधन मे ही सपादन की सफलता है। साधन का व्यापार यथेष्ट तभी होता है जब वह साध्य के साथ एक रस होकर उसमे अपनी सत्ता लीन कर दे। कला साधन है।

इससे उसकी सार्थकता की कसौटी यही ठहरती है। अत काव्य मे कला को उसके उपकरणो के यथेष्ट सयोग द्वारा उसे रमणीय रूप देने मे ही विलीन हो जाना चाहिए। काव्य के सम्वन्ध मे कला की सार्थकता यही है कि वह काव्य को यथेष्ट रमणीय बनाने के लिए प्रयुक्त हो।

काव्य मे भाव के साथ भाषा को सयुक्त होना चाहिए, उसे यथेष्ट समन्वित होना चाहिए। न तो भाषा की शक्ति की उपेक्षा होनी चाहिए कि भाव अपरूप लगे और न उसका अनपेक्षित प्रयोग ही हो कि उसके चमत्कार मे भाव विलीन हो जाय। इस प्रकार हम इस निश्कर्प पर पहुँचते है कि कला भाव और भाषा से प्रथक अपनी कोई सत्ता नही रखती। भाव को कलपना के यथोचित सहाय्य और भाषा के समन्वित प्रयोग द्वारा सवेदन शील बनाने मे ही कला की सार्थकता मानी जानी चाहिये। कला को चमत्कार की वस्तु नही मानना चाहिये। अलकार विहीन काव्य भी श्रेष्ठ काव्य हो सकता है।

काव्य के स्वभाविक स्वरूप के निर्माण मे जो भाव सवेदन-रूप कवि-कर्म आवश्यक होता है वह कवि-कर्म ही वास्तव मे कला है। लोकगीतो मे कला प्राकृत और सहज रूप मे आई है। गीतो की रचना मे गीतकारो को किसी भी नियत्रण का सामना नही करना पडा है। उन्होने अपने आत्म-सतोष के लिये ही गीत रचे है। उनमे सरसता और भाव-प्रवणता अनायास ही आ गयी है। ऐसे गीतो के लिये तुलसीदास जी ने सत्य ही कहा है—

> मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी। अहि गिरिगज सिर सोह न तैसी॥
> नृप किरीट तरुनी तन पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
> तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही। उपजहि अनत अनत छवि लहही॥

लोकगीतो मे अलकार, उक्ति-वैचित्र्य आदि स्वाभाविक रूप से आ जाते है। साहित्यिक काव्य मे परिष्कृत रूप मे छदो और अलकारो का प्रयोग होता है किन्तु लोकगीतो मे ये स्वत: ही अपना स्वाभाविक सौन्दर्य लिये आते है। साहित्यिक काव्य मे इनके प्रयोग से कृत्रिमता स्पष्ट दिखायी देती है। शास्त्रीय वधनो से मुक्त ये गीत अपनी उन्मुक्तता के कारण हृदय के अधिक समीप प्रतीत होते है। लोकगीतो मे अनजाने मे ही जो शव्दालकार—अर्थालकार आ जाते है उनसे उनका सौन्दर्य और अधिक वढ जाता है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के साथ अनुप्रास की छटा यत्र-तत्र दिखाई देती है। लोकगीतो मे ध्वन्यात्मक व्यजना का बाहुल्य रहता है। ध्वन्यात्मक व्यजना की शक्ति मनुष्य मे उसकी सस्कृति से आती है। भारतीय लोक-गीतो मे ध्वनिकाव्य की वहुलता से यह सिद्ध होता है कि भारतीय लोक समाज बहुत सरकृत रहा है।

डा० ग्रियर्सन ने 'लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' मे लिखा है कि भारत की बोलियाँ वहुत सस्कृत है।

लोकगीतो मे शब्द-चयन भी स्वाभाविक, सरल और कर्ण-प्रिय होता है। शब्दो का उचित चुनाव होने से भावो की व्यजना मे कसापन आ जाता है।

लोकगीत वहुत रमणीक काव्य है। उनमे भाव वहुत ही स्वाभाविक है और कल्पना तथा भाषा के अनुकूल प्रयोग से उनका सरस सवेदन हुआ है। इन गीतो में कला परिष्कृत नही, पर प्राकृत अवश्य हैं। शिष्ट काव्य से उनमे यही विशेष भिन्नता है। इस भिन्नता के कारण यदि उनका काव्य मे सम्मान न किया जाय तो हिन्दी मे ही कवीर, जायसी और मीरा आदि की रचनाओ पर पुन' विचार करना होगा। लोकगीत तो ऐसी रचनाएँ हैं कि उनकी सरसता मे उनके रचियताओ के नाम नही हैं किन्तु वे लोक के कठहार है।

लोकगीत को शिष्ट-काव्य के उपादान या स्रोत कहा जा सकता है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"जव पडितो की काव्य-भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे वढ़ती हुई लोक भाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तव शिष्ट समुदाय लोक-भाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य-परम्परा मे नया जीवन डालता है। यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के सम्वन्ध में भी समझना चाहिए। जब-जव शिष्टो का काव्य पंडितो द्वारा वँधकर निश्चेष्ट और सकुचित होगा तव-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द वहृती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्व करने से ही प्राप्त होगा।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृष्ठ ७२५)

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—"यदि सव देशों के लोकगीत संकलित किये जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष होगा कि उनमे एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है जो मनुष्य मे समान है।"

(मॉडर्न रिव्यू, सितम्बर १९२४)

## चतुर्थ अध्याय

# 1. ऐतिहासिक मान्यताओं के आधार पर इन लोकगीतो की परम्पराओं का निश्चय

लोक की उपेक्षा न कभी हुई है और न कभी हो सकती है। किसी भी विषय के प्रतिपादन के लिये 'लोके वेदे च' का ध्यान किया जाता है। 'सो जानव सत्सग प्रभाउ, लोकहु वेद न आन उपाऊ।' यह कहकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने लोक और वेद का समान रूप से स्मरण किया है। लोक का महत्व केवल व्यवहार क्षेत्र मे ही नही, वरन् साहित्य-क्षेत्र मे भी होता है। कालिदास ऐसे कवि ने 'मेघदूत' 'रघुवश' आदि मे ग्राम-बधुओ, ग्राम-वृद्धो और उनकी कथाओ का सरस उल्लेख किया है। तुलसीदास जी ने तो यह कहकर—

"गिरा ग्राम सियाराम-यश, गावहिं सुनहिं सुजान"

प्रत्यक्ष ही 'रामचरित-मानस' ऐसे उत्कृष्ट काव्य मे 'ग्राम-गिरा' का मान किया है। अत लोक का सर्वत्र मान देखते हुए लोक-गीत केवल ग्रामीणो के गीत कहकर टाले नही जा सकते। आज, जहाँ बहुत से मनुष्य नवीनता की ओर आकृष्ट हुए हैं वहाँ कुछ सहृदय-जन इन पुरानी निधि, गीतो की ओर भी मुड गए है। ऐसे विद्वानो ने इन गीतो से यह दिखा दिया है कि ये केवल ग्रामीण-जन की ही सम्पत्ति नही है, जन-सामान्य की भी है। नवीन सभ्यता का इतना प्रसार हो चुका है कि उसमे पडकर लोक का स्वरूप ही कुछ दूसरा हुआ जा रहा है। ऐसी दशा मे यदि सच्चा लोक-स्वरूप देखने को मिलता है तो नगरो के आडम्बर और कोलाहल से दूर शान्त-सरल गाँवो मे ही। यही कारण है कि लोक-गीतो से लोक के प्रतिनिधि ग्रामीणो का विशेष वर्णन मिलता है। किन्तु इससे इन्हे केवल ग्रामवासियो की ही वस्तु समझना भूल है। मूलत ये लोक की ही वस्तु हैं।

मानव जाति और लोकगीतो के जन्म मे बहुत कम अन्तर माना जा सकता है। मानव जाति मे जब से भाषा ने जन्म लिया तभी से लोकगीतो का भी जन्म हुआ। यह तो मान ही लिया गया है कि भाषा का उद्गम सगीतात्मक था। कालान्तर मे गद्य-भाषा और सगीत के रूप मे इसका विकास हुआ। लोकगीतो की परम्परा आरम्भ मे मौखिक रही। जितना स्मरण रह सका वह आगे बढता गया और शेष

विस्मृत होता गया। यही कारण है कि प्राचीन सामग्री सुरक्षित नही रह सकी। लिपि-बद्ध न होने से लोकगीतो की परपरा किसी भी देश मे क्रम-बद्ध नही मिलती।

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे यूरोपियन देशो और अमेरिका मे लोक-भाषा और लोकगीतो की विशेषताओ तथा अध्ययन की ओर विद्वानो का ध्यान गया। इस समय इन देशो मे पर्याप्त कार्य हुआ। भारत मे लोकगीतो की ओर बीसवी शताब्दी से ध्यान दिया जाने लगा।

लोकगीतो की परम्परा के विषय मे विद्वानो के मत भिन्न-भिन्न है। कुछ का मत है कि लोकगीतो की उत्पत्ति किसी समुदाय द्वारा साथ-साथ गाए जाने से हुई। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि इनकी रचना व्यक्ति-विशेष द्वारा होती रही। दूसरी मान्यता वालो का तर्क है कि आदिकाल मे चारण ही गीत गाया करते थे अतः इनकी रचना इन्ही लोगो ने की। लोक-साहित्य के कुछ विद्वानो ने जाति-विशेष मे ही इन गीतो का उद्गम माना है।

लोकगीतो की परम्पराओ के विषय मे ग्रिम ने समुदायवाद को, श्लेगल ने व्यक्तिवाद को, स्टेन्थल ने जातिवाद को, बिशप पर्सी ने चारणवाद को, चाइल्ड ने व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद को, डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने समन्वयवाद को प्रमुख माना है। ग्रिम का मत है कि लोक-काव्य का निर्माण स्वत ही होता है। इसके निर्माण के पीछे किसी विशिष्ट कवि या रचयिता का हाथ नही होता, समस्त जनता द्वारा इसकी उत्पत्ति होती है।[1] ग्रिम के अनुसार जिस प्रकार इतिहास का निर्माण नही किया जा सकता उसी प्रकार महाकाव्य का भी निर्माण नही किया जा सकता। सर्व साधारण जनता ही प्राचीन घटनाओ पर काव्य की धारा प्रवाहित करती है और इस प्रकार काव्य की निष्पत्ति होती है। ग्रिम का सिद्धान्त वाक्य है—"जनता लोक-काव्य की रचना करती है।"[2] ग्रिम का कथन कुछ अशो तक तो सत्य है किन्तु यह बात सभी लोकगीतो के लिए सत्य नही कही जा सकती।

श्लेगल ने ग्रिम के इस कथन का खडन करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि जिस प्रकार कला की कोई कृति कलाकार की अपेक्षा रखती है उसी प्रकार कविता भी किसी व्यक्ति की सृष्टि होती है। लोकगीतो मे अनेक लोगो का सहयोग रहता तो है किन्तु वे किसी विशिष्ट व्यक्ति की रचना होते हैं।

स्टेन्थल ने ग्रिम के मत मे कुछ सशोधन सा किया है। उनका कथन है कि किसी जाति (Race) के समस्त व्यक्ति मिलकर लोकगीतो की रचना करते है। इनके

---

१ गूमर—ओल्ड इ गलिश बैलड्स, पृष्ठ ५०

२. "दैस वोक डिशटेट" (Das volk dischtet)

मत के अनुसार व्यक्ति सभ्यता तथा युग-युग के विकास की परिणति है। किन्तु आदिम जातियों मे सामूहिक भावना प्रधान होती है। जिस वस्तु का अनुभव कोई एक व्यक्ति करता है अन्य लोग भी उसी जैसा अनुभव करते है। इस प्रकार लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नही रह जाते।[1] स्टेन्थल का यह भी मत है कि लोक मे या जन्य-काव्य का निर्माण उन्ही विधियो से होता है जिनसे भाषा, कानून और समाज के नियम बनते है। स्टेन्थल का कथन भी ग्रिम के मत के समान ही अपूर्ण कहा जा सकता है। जिस प्रकार जन-तन्त्र जनता का शासन कहा जाता है किन्तु वास्तविक शासन जनता के चुने हुए व्यक्ति ही करते है उसी प्रकार लोकगीतो की रचना भी कुछ चुने हुए व्यक्तियो द्वारा ही अवश्य हुई होगी।

इगलेड के प्रसिद्ध लोकगीत-सग्रहकर्त्ता बिशप पर्सी ने लोकगीतो की रचना चारण या भाटो द्वारा मानी है। ये चारण लोग प्राचीन काल मे इगलेड मे ढोल या सारगी बजाते हुए भीख माँगा करते थे और साथ-साथ गीतो की भी रचना करते जाते थे। इगलैड मे चारण और कवि दो पृथक व्यक्ति हो गए थे। लोकगीतो की रचना चारणो द्वारा ही होती थी।[2]

बिशप पर्सी के मत का समर्थन अनेक विद्वानो ने किया है। जोसेफ वितसन और वाल्टर स्कॉट ने इस मत को विशेष रूप से मान्यता दी। भारत मे लोकगीतो की रचना मे चारणो या भाटो का हाथ अवश्य रहा है। जगनिक का 'आल्हा-खण्ड' और चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' इस बात के उदाहरण हैं। गोरखपंथी साधु आज भी गीत बना-बनाकर गाते घूमते है। इतना होने पर भी सभी लोकगीतो को चारणो द्वारा बनाया नही माना जा सकता।

प्रो० चाइल्ड ने उपर्युक्त सभी मान्यताओ को मानते और न मानते हुए लिखा है कि लोकगीतो की रचना किसी व्यक्ति विशेष द्वारा तो हुई है किन्तु उसके व्यक्तित्व का विशेष महत्व नही है। ये लोकगीत लिखे तो किसी व्यक्ति विशेष ने ही होगे किन्तु इन्हे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा गाया जाता रहा अत इनमे क्रमश. परिवर्तन और परिवर्धन भी होता रहा। धीरे-धीरे इन लोकगीतकारो का व्यक्तित्व तिरोहित होता चला गया और ये रचनायें जन-सामान्य की सम्पत्ति बन गयी।[3]

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने उपर्युक्त सभी सिद्धान्तो को कारण-भूत माना है। उन्होने इन सबके सहयोग को स्वीकार करते हुए माना है कि लोक-साहित्य के

---

१ गूमर—ओल्ड इंगलिश बैलड्स भूमिका पृष्ठ ३६-३७।

२. बिशप पर्सी—रेलिक्स आव् एन्शेण्ट इंगलिश पोइट्री, भूमिका पृष्ठ २४।

३. इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलड्स—प्रो० हैजन चाइल्ड सार्जेण्ट।

निर्माण मे व्यक्ति-विशेष का सहयोग अवश्य हुआ है। किन्तु अनेक गीत ऐसे भी होते है जिनका प्रचार जाति विशेष के लोगों मे मुख्य रूप से होता है। अहीरो, धोबियो, महतरो और चमारो के गीत उनकी जातियो के अनुरूप ही होते है। इसी प्रकार सोहर तथा अन्य मागलिक गीतो को स्त्रियाँ मिलकर गाती है और सामूहिक रूप से आगे की कड़ियाँ जोडती जाती है। अधिकाश लोकगीतो के निर्माता अज्ञातनामा ही है अत. उनकी रचनाओ मे उनके व्यक्तित्व का अभाव देखा जा सकता है। समन्वय-वादी दृष्टिकोण अपनाते हुए डा० उपाध्याय ने उपर्युक्त सभी विद्वानो के सिद्धान्तो को मिलाकर सही माना है।[1]

लोकगीतो की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके रचयिता अज्ञात होते है। हीर-राँझा, ढोला-मारू, गोपीचन्द, सदावृक्ष-सारंगा, राजा भरथरी आदि ऐसी लोक-गाथाये उत्तरी भारत मे प्रचलित है जिनके रचयिताओ के नाम अब तक विदित नही हो सके। यह भी पता लगाना बडा कठिन होता है कि किस काल मे किस लोकगीत की किसने रचना की। लोकगीतो का प्रामाणिक मूल पाठ भी नही होता। वे समुदाय की सम्मिलित रचना होते है अतः उनके मूल पाठ के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। विभिन्न प्रदेशो या गाँवो मे प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी उनमे अपनी भाषा या बोलियो की शब्दावली भी जोड देते है। इस प्रकार इनके मूल कलेवर मे परिवर्तन और सवर्धन होता रहता है। जैसे-जैसे लोकगीत एक गवैये से दूसरे, तीसरे, चौथे गवैये तक गया वैसे ही वैसे वह परिवर्तित होता गया। अनेक बार पुराने पद निकाल दिए जाते हैं और उनमे नये पद लग जाते है। इसकी लय भी बदल जाती है, पात्रो के नामो मे भी भिन्नता आ जाती है और अन्य लोकगीतो के कुछ पद भी जोड दिये जाते है। इस प्रकार दो-तीन सौ वर्षो मे तो लोकगीत इतने बदल गए होगे कि उनके मूल लेखक, उनके मूल रूप और उनके मूल भावो का कही पता ही नही होगा। वास्तव मे लोकगीत उस विशाल नदी के समान है जिसमे अनेक छोटी-छोटी नदियाँ मिलती जाती है और उसे बहुत गहरा चौडा कर देती है।

आल्हा-खण्ड के मूल लेखक जगनिक थे। उनकी आल्हा मे इतने अधिक परिवर्तन हुए है कि उसका मूल रूप समझना अब असम्भव ही है। उसमे अनेक घटनाएँ जुड़ गयी है। जगनिक ने यह मूल ग्रन्थ लिखा तो बुन्देली भाषा में होगा किन्तु सर्वत्र प्रचार के कारण इसमे कन्नौजी और भोजपुरी शब्द भी जुड गये है। ब्रजभाषा मे भी आल्हा गायी जाती है।

आगरा जिले के लोकगीतो का अध्ययन करने से विदित होता है कि इनमे पौराणिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एव सांस्कृतिक

---

१. भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन—डा० कृष्ण देव उपाध्याय

परम्पराओ के वर्णन तो है किन्तु उन्हे किसी काल विशेष मे नही बाँधा जा सकता। आगरा एक पौराणिक और ऐतिहासिक स्थान है। राजा शूरसेन के समय से आज तक के जीवन को इसने देखा और अनुभव किया है। इसमे समय-समय पर बडे-बडे परिवर्तन हुए है। उस समय से लेकर आज तक के जीवन की विभिन्न गति विधियो के चित्र यहाँ के लोकगीतो मे देखे जा सकते है। यहाँ कृष्ण ही मुख्य उपास्य रहे है। ब्रजमण्डल उनकी लीलाभूमि थी अत आगरा उनकी विभिन्न लीलाओ को तो किसी प्रकार भी नही भुला सकता। कृष्ण-भक्त होने के साथ-साथ राम के प्रति भी यहाँ अगाध श्रद्धा-भक्ति रही है। शिव की भक्ति भी यहाँ कम नही दिखायी देती। बगालियो के सम्पर्क मे आने से यहाँ काली माई की उपासना भी होने लगी। शिव की शक्ति का रौद्र रूप यहाँ भवानी या दुर्गा मे देखा गया। अतः यहाँ राम, कृष्ण, शिव और दुर्गा की उपासना के अनेक लोकगीत मिलते है।

आगरा के जन-जीवन पर हिन्दू-सस्कृति और सभ्यता का प्रभाव तो रहा ही किन्तु बाद मे सिकन्दर लोदी और मुगलो के अधिकार मे रहने से इस पर इस्लामी सभ्यता और सस्कृति का प्रभाव भी पडा। यहाँ के सामाजिक रीति-रिवाजो तथा बोल-चाल मे इस्लामी झलक स्वत ही आती चली गयी। अंग्रेजो के राज्य ने यहाँ के जन-जीवन मे नये शब्द और नयी उपमाएँ दी। "जवानी सरर-सरर सर्राय कि जैसे अगरेजन को राज" और "अगरेजन ने ऐंच दयो तार, रोसनी बिजुरी की" जैसे लोकगीत स्वत बनते चले गये। राष्ट्रीय क्रांति, प्रथम और द्वितीय महायुद्धो तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति ने भी लोकगीतो को प्रभावित किया। इन सब के साथ ही जो सामाजिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत परिवर्तन होते रहे उन सब की झलक यहाँ के लोकगीतो मे देखी जा सकती है। आगरा के जन-जीवन का सच्चा इतिहास यहाँ के लोकगीतो मे ही वास्तविक रूप मे देखा जा सकता है। भाषा के लिपि बद्ध होने, मुद्रण की सुविधाये आ जाने तथा टेप-रेकार्डर जैसे ध्वनि यन्त्रो से अब लोकगीतो को उनके वास्तविक रूप मे सुरक्षित रखा जा सकेगा किन्तु ऐसा होने मे इस बात की भी आशका है कि ये लोकगीत अपने उत्तरोत्तर विकास एव प्रवाह को न छोड बैठे। लोकगीत तब तक विकसित और स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित होते है जब तक उनकी परम्परा मौखिक रहती है। इन्हे लिपि मे बाँधने या टेप-रेकार्डर मे भर लेने के बाद इनकी गति और प्रगति के रुक जाने की भी आशका हो सकती है। इन लोकगीतो का पाठ निश्चित हो जाने से इनमे अन्य गायको द्वारा परिवर्तन और परिवर्धन किये जाने की आशा नही रहती। लोकगीत तो विभिन्न पाठो और विभिन्न धुनो मे ही शोभा पाते, बढते और पनपते है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन लोकगीतो को सुरक्षित रखते हुए भी इनके विकास और प्रवाह को स्वाभाविक रूप से बढने दिया जाये।

'जाहरपीर' सम्वन्धी एक लोक-पाषंड व्रज-मण्डल में वहुत प्रचलित है। "जाहरपीर" को ही "गुरु गुग्गा" कहते है। भारत के कुछ उत्तरी क्षेत्रो मे गुरु गुग्गा को सर्प-देवता के रूप मे पूजने वाले उनके अनेक अनुयायी अव भी पाये जाते हैं। इनके वारे में अनेक किंवदन्तियाँ है। कुछ लोग इन्हे चौहान मानते है और कहते हैं कि वाद मे ये मुसलमान हो गये थे। टेम्पल महोदय ने जाहरपीर अथवा गुरु गुग्गा का एक वड़ा लोकगीत अपने सग्रह मे दिया है। यह गीत एक 'स्वाग' है जो जालन्धर मे खेला जाया करता था। यह गीत हिन्दी मे है। एक दूसरा गीत टेम्पल ने दिल्ली के किसी व्यक्ति से प्राप्त किया था।

गुरु गुग्गा राजस्थान, पजाव और पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे ही अधिक प्रसिद्ध है। गुजरात मे भी कुछ लोग इन्हे जानते-मानते है किन्तु पूर्व मे इनका नाम कहीं नही मिलता। राजस्थान मे गुरु गुग्गा को योद्धा संत माना जाता है। साँप के काटे लोगो की रक्षा करने मे इनकी प्रसिद्धि है। इनकी मूर्ति दो रूपो में पूजी जाती है— घोड़े पर चढ़े हुए अथवा सर्प के रूप मे।

डा० सत्येन्द्र ने लिखा है—"लोक साहित्य मे इनके दो रूप मिलते हैं। एक तो सामान्य मनोविनोदार्थ स्वाँग वाला रूप जिसका सकलन टेम्पल महोदय ने किया है। यह जालन्धर मे खेला जाता था व्रज अथवा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश मे स्वांग वाला रूप नही मिलता।"

"व्रज मे गुरु गुग्गा के गीत का अनुष्ठानिक महत्व है। गुरु गुग्गा या जाहरपीर एक देवता के रूप में माने जाते हैं। इनके अनुयायी भक्त अपने घरों पर इनका जागरण भी कराते है और इनके थान की यात्रा भी करते हैं, यात्रा को 'जात' कहते हैं। जागरण के अवसर पर कपड़े पर कढ़ा हुआ इनका जीवन वृत्त दीवाल पर टाँग दिया जाता है, और एक वड़ा लोहे का कोड़ा या चावुक जागरण करने वाला नाथ हाथ मे लिये रहता है। जागरण मे गुरु गुग्गा का गीत गाया जाता है। इस गीत मे गुरु गुग्गा का ही जीवन-वृत्त रहता है। उसे गाते-गाते नाथ पर गुरु गुग्गा का आवेग आ जाता है, नाथजी खेलने लगते हैं। जागरण अव सफल माना जा सकता है। इस समय गुरु गुग्गा अथवा जाहरपीर से मनचाही मुराद माँगी जा सकती है और अन्य विविध वाते भी पूछी जा सकती है।

'जात मे गुरु गुग्गा के सोहले गाये जाते है।"

"इस प्रकार गुरु गुग्गा विपयक एक दूसरे प्रकार के लोक-साहित्य का धार्मिक महत्व है।"[1]

---

१. जाहरपीर : गुरु गुग्गा—डा० सत्येन्द्र (पृष्ठ ५)

गुरु गुग्गा का जन्म भादों की नवमी को हुआ था इसलिये यह नवमी "गोग्गा नवमी" कही जाती है। इस दिन सर्प के रूप मे गोगा (गुग्गा) की पूजा होती है। कहीं-कही नाग पंचमी को भी गोगा या गूगा पंचमी कहा जाता है। व्रज की कहानियो मे गूगा के सम्वन्ध मे एक स्थान पर उल्लेख किया गया है कि गूगा ने अपने चमत्कार से वासुकी को वश मे किया कि वह उसकी माँ की गाड़ी के वैलो को डस ले। एक अन्य कहानी मे गूगा के विवाह के अवसर पर एक झील पर साँपो के पुल वनाये जाने का भी वर्णन मिलता है।

'जाहरपीर' के सम्वन्ध मे आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी विद्यापीठ ने शोध-कार्य किया है। डा० सत्येन्द्र ने नेतृत्व मे जोगियो के 'जाहरपीर' के गीत और सोहिले आदि का सग्रह हुआ है। एक जोगी लोहवन (मथुरा) के मट्टानाथ है', दूसरे अछनेरा (आगरा) के पास के गाव 'सीरोठी' के सुखानाथ है। जोगी सम्प्रदाय वालो का वैसे तो 'जाहरपीर' से कोई सीधा सम्वन्ध नही दिखायी देता किन्तु सम्भव है कि जीविकोपार्जन के लिए जाहरपीर के जागरण को इन जोगियों ने अपना लिया हो। आगरा मे जोगियो की निम्नलिखित शाखाये है—

१ डागौर जोगी (सीरोठी, अछनेरा, आगरा)
२. ढाकरे जोगी (पटयर, तहसील खेरागढ, आगरा)
३. वड गूजर जोगी (सीरोठी, अछनेरा)
४. पहवा जोगी (शाहगंज, आगरा)।

## २. इसी प्रकार के बुन्देलखण्डी, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी लोकगीतों से इन लोकगीतों की तुलना

चन्द्रावली के नाम से आगरा तथा अन्य स्थानों में अनेक मल्हारे गायी जाती है। इन मल्हारों में चन्द्रावली की गाथा परिवर्तित होकर आती गयी है। एक चन्द्रावली मुगलों के समय की युवती मानी जाती है। जब उसका भाई सावन मे उसे ससुराल से विदा करा घर ले जा रहा था तो मार्ग मे एक मुगल उसे पकड़ लेता है। चन्द्रावली के ससुर-जेठ आदि उस मुगल को धन देकर चन्द्रावली छुड़ाना चाहते हैं किन्तु वह नही छोडता। उनमे मुगल से लड़ने का साहस नही। अन्त मे चन्द्रावली ही अपने सतीत्व की रक्षा करती है। वह आत्म-हत्या कर लेती है। इस घटना का वर्णन निम्नलिखित मल्हार मे है—

सरग उड़ंती चिरहुली लागौ सामन मास।
हमरे बावल सौं नो कहौ, अपनी बेटीऐ लेइ बुलवाइ
लागौ सामन माँस।
ले डुलिया वीरन चले, लागौ सामन मास।
जाइ पहुँचे जीजा दरबार, भेजो जीजा जी बहिन कों जी।
भैया कूँ राँधूँगी सेमई जी, ऊपर बूरौ खाँड,
सैयाँ कूँ कोधई जी, ऊपर रोटी साग।
लै जाऔ सारे अपनी वहैन जी ;
लै वहैना वीरन चले, लागौ सामन मास।

इसी प्रकार का एक लोकगीत बाराबंकी जिले में भी गाया जाता है। उसमे इसी प्रकार का कथानक है, केवल बोली में थोड़ा भेद अवश्य है—

सात बहिनि चन्दा सिकिया जे चीरैं,
सिकिया चिरैं ए रे सदौली के घाट जी।
आइगै लस्कर मुगल कै
चन्दा परी बन्दिखान जी॥ १॥
अब रितु आई गोरी भोजन की
चन्दा परी बन्दिखान जी।
रूपिया पइसा क ढेर लागी है,
मोहरा जे लागी है लाख जी॥ २॥

भोजपुरी के एक लोकगीत मे भी चन्द्रावली जैसी एक 'कुसुमा' नाम की युवती का वर्णन है। मुगलो के समय का चित्रण इस लोकगीत मे भी है—

तनियक डोलिया थमाओ मिरजवा
वावा के सगरवा पनियां पीइत हो ना।

मिर्जा कहता है—

वावा के सगरवा मुन्दरि ढबइल पनियाँ
हमरे सगरवा पनियाँ पीयो हो ना।

वह स्त्री कहती है—

तोहरा सगरवा मिरजा नित उठ होइ है
वावा के सागरा दूलम होइ है हो ना।

और पानी पीती हुई—

एक घुँट पियली दूसर घुँट पियली
तिसरे मे गइ है तराई हो ना।

मिर्जा रो-रोकर जाल डालता है किन्तु—

फँसि आवै घोंघिया सेवरिया होना।

भइया के जाल डालने पर वहिन कुसुमा जाल मे फँस जाती है। भाई उसके साहस पर प्रसन्न होता है—

दूनौ कुल राखेउ वहिनी कुसुमा हो ना।

बुन्देलखण्डी लोकगीतो के अनेक भाव आगरा के लोकगीतो से मिलते है। 'ईसुरी' की फागें तो वहुत कुछ आगरा की ही हो गयी है। ननद—भावज का हास्य प्रसिद्ध है। एक नारी अपनी अप्राप्त-यौवना ननद के वर्णन मे हास्य और व्यग का पुट दे रही है। ईसुरी ने उसी का वर्णन वड़े आकर्षक ढग से किया है—

भौतऊ हलकी सी ननदुलिया, लागी दैन निंदुलिया।
ऐसी निगन निगत लरकन मे, डारे हात हतुलिया।
छूटी नही लरम मुइयाँ से, जा तोतली नतुलिया।
'ईसुर' फिरत पान सी खाँये, मिस्सी लगी दतुदिया।

वहुत छोटी ननद माथे पर विंदी लगाने लगी है। लड़को के साथ चलती हुई उनके हाथो मे हाथ डाल देती है। छोटे से मुख से तोतली बोली तो अभी तक नही छूटी है किन्तु दाँतो मे मिस्सी लगाये पान सा खाये फिरती है।

बुन्देलखण्ड मे 'चपेटा' गोलियो के वजन के चौकोर आकृति के वनाये जाते जाते है। चूनरियो पर यदि चपेटे जैसे छाप हो तो ये चूनरियाँ यहाँ की लडकियो को बहुत अच्छी लगती है। ईसुरी का एक नायक अपनी नायिका की इन्ही चपेटो से ढिकी हुई चूनरी की प्रशसा कर रहा है—

चूनर चारू चपेटनवारी, पैंरे यार हमारी।
कऊँ पिस्तई प्याजी जगाली, अगरई कउँ अनारी।
पीरी कउँ हरीरी नुकरई, कुसमानी कउँ कारी।
कऊँ मुस्तई कऊँ सरदई सुन्दर, सुर्खी कऊँ सुनारी।
कॉलो लेवे नाम ईसुरी सब रगन नारी।

नायक को नायिका की ऐसी चोली अच्छी लगती है जिस पर विभिन्न प्रकार के पक्षी या बेल-बूटे चित्रित हो रहे हो? वह कहता है—

जी मे लिखे पपीरा मोरे, ऐसी अगिया तोरे।
मुकते लाल मुनैयाँ लिपटे, चिरवा चारु चकोरे।
पीरी हरी चिरैयाँ चिपकी, सुआ मुरक मुख मोरे।
बूटा भरे भुजन पै भारी, बेलन बाँदी कोरे।
कायल करन कुयलिया 'ईसुर' दो छाती के दोरे।

ईसुरी का फागे बुन्देलखण्ड की सीमा तोड़कर व्रज मण्डल मे प्रवेश कर गई हैं। इन फागो का स्वागत आगरा जिले मे सबसे अधिक हुआ है। ग्वालियर मे लगे हुए आगरा के गाँवो मे तो ईसुरी की फागे पूर्ण रूप से ही अपना ली गई है। अन्य गाँवो मे भी थोडे-बहुत हेर-फेर के साथ ईसुरी की फागे बड़े आनन्द और प्रेम से गायी जाती है।

एक अति प्रसिद्ध पूर्वी लोकगीत है जिसमे कन्या के विवाह का बड़ा करुण दृश्य है। इसमे बेटी को दूर देश मे विवाह कर भेजने की स्थिति का वर्णन है—

द्वारे की इटियाँ न दइयो मेरे बाबुल।
बिटिया न दइयो परदेस॥
द्वारे की इटियाँ खिसब जै है बाबुल।
बिटिया विसूरे परदेस॥

इसी पूर्वी लोकगीत जैसा ही एक लोकगीत आगरे के गाँवो मे भी सुनाई देता है। इसे हम शुद्ध व्रजभाषा या खड़ी बोली का नही कह सकते। इसमे पश्चिमी और पूर्वी बोलियो का मिश्रण है।

द्वारे मे ईंट मत दियो मेरे बाबुल
बिटिया न दियो विदेश सो मेरे लाल॥

द्वारे की ईंट खिसक जावे बाबुल ।
बिटिया रोवे बिदेस सो मेरे लाल ॥
मइया रोवे से गंगा बहत है ।
बाबुल के रोवे सागर ताल सो मेरे लाल ॥
भइया के रोवे मे छाती फटत है ।
भाभी का हृदय कठोर सो मेरे लाल ॥

यह दूसरा गीत भाई-बहन के स्नेह का है। भाई अपने पिता से कहता है कि बहिन को दुःख मत दो। बहिन तो चिड़िया के समान है जो विवाह होने पर उड जायगी। बहिन अपने भाई के स्नेह को देखकर उसकी बलैयाँ लेती है—

× × ×

बाबा निबिया का पेड मत कटवइयो ।
निंबिया चिरैया बसेरा बलैयाँ लेऊँ वीरन की ॥
बाबा बिटिया को कोई दुःख मत दो ।
बिटिया चिरैया के नाय बलैयाँ लेऊँ वीरन की ।

महाराष्ट्र मे ओवी घर-घर गाई जाती है। चक्की पर आटा, बेसन या दाल पीसते समय प्राय दो स्त्रियाँ आमने-सामने बैठकर, चक्की के हत्थे को एक साथ पकड़ कर, पीसने के कार्य मे जुटती है। अक्सर भोर होने से पहले ही यह कार्य करना होता है। घर की कोई स्त्री साथ देने वाली न हो तो पडोसिनें एक-दूसरी का हाथ बटाती है। इसीलिए बहुत सी ओवियो मे पडौसिन को सम्बोधित किया गया है। भोर समय से पहले का शान्त वातावरण भी ओवियो मे कही-कही बड़ी कलापूर्ण शैली मे अकित किया गया है। बहन को भाई की प्रतीक्षा रहती है, बहन का हृदय भाई की बाट जोहते उमड़ पडता है। कही-कही कोई लोक-विश्वास भी ओवी मे गूँथ दिया जाता है। बडी बहन को कही कुकुम की पुडिया पडी मिल जाय तो छोटी बहन सोचती है कि यह अच्छा शकुन है, बहन का पति आयुष्मान होगा।

ओवी गाते समय पिसनहारियाँ मुक्त भावना के मन्त्र प्रस्तुत करती है। कोई इन्हे काव्य के प्रयोग ही समझे, ऐसा आग्रह नही रहता। किसी-किसी ओवी को किसी मगल समाचार का स्पर्श प्राप्त हो जाता है। पुरानी ओवियो के भण्डार मे नई ओवियो का समावेश होता रहता है।

किसी-किसी ओवी मे गाँव की बदलती हुई अवस्था की ओर भी सकेत करना आवश्यक समझा जाता है। 'गाँव विघडल' (गाँव विगड गया)—बहुत सी ओवियो की यही उठान है। गाँव की मुख-मुद्रा तो सुन्दर रहनी चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति का आचरण ऐसा हो कि समूचा गाँव उस पर हर्ष की फुहार-सी छोड़ता नजर आये—

इसी भावना से प्रेरित हो कर पिसनहारियाँ कुछ कहती है, भले ही ओवी के केन्वेस पर एक आध स्पर्श देने से अधिक की गु जाइश ही न हो ।

स्वर्गीय साने गुरुजी ने 'स्त्री-जीवन' ( श्याम) मे २५९२ ओवियों का सग्रह प्रस्तुत किया है । साने गुरुजी ने सातवी-आठवी शताब्दियो मे चक्की पीसते समय गाई जाने वाली ओवियो का उल्लेख बताया है ।

पिसनहारियाँ तो आज भी अपनी ओवियाँ गाते समय लोक-मजूषा मे अपने-अपने व्यक्तित्व को सजाकर रखने की कला मे जुटी नजर आयेगी, सरगम के सप्तक पर ओवी के बोल उछालते हुए वे उससे अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा मिला कर गाती है । ओवी जीवित व्यक्तित्व का गान है । कही प्रकृति की शोभा का तनिक-सा वर्णन ही ओवी के लिए यथेष्ट समझ लिया जाता है तो कही सुख समाचार ही ओवी की मधु लक्ष्मी का चौक पूरता है । एक प्रकार का आत्म-चैतन्य ओवी का आधार बनता है । जीवन का अभिनव परिचय ही ओवी गायिकाओ को प्रिय रहा है । इसीलिए अग्रेजी काल के प्रथम स्पर्श को ओवी मे टाँका गया है ।

कुछ उदाहरण—

१ कुंकवाचा पुड अक्काबाईल सापडाला
आयुष्याचा लाभ झाला तिच्रा कथा

(कुंकुम की पुड़िया बड़ी बहन को कही मिल गई
आयु का लाभ हुआ उसके पति के लिए)

२. गाँव बिघडला गाँवा च गेली शोभा
मोठे मोठे लोक लाभा गुन्तताती

(गाँव बिगड गया, गाँव की शोभा चली गयी,
बड़े-बड़े लोग लोभ मे गुँथ जाते है )

३. अगाई चे घरी मंगाई राखण
सगवाई ये दुकान रस्त्या बरी

(अगाई (लोरी) के घर पर मंगाई (निरर्थक शब्द है)
रखवाली करती हैसस्तेपन की दुकान है रास्ते पर)

४ जाते करु दाचे खुन्टा पाषाण चा
वर हात काँकणाचा उषाताई चा

(चक्की कुरुन्द पत्थर की है, मुठ्ठा है पत्थर का ऊपर चूड़ियो
वाला हाथ है उषा दीदी का)

५ बालपट्टी खण पट्टीला चवल
शिंपी करतो नवल चोसीयेचे

(बालपट्टी वस्त्र का टुकडा, चवन्नी की एक पट्टी
दरजी वाह-वाह कर रहा है चोली पर)

६ बोरी बन्दराबर मड्डम पीते चहा
आगीन गाडी आली यहा रूलावरी

(बोरी वन्दर पर मैडम पीती है चाय
देखो आगीन गाडी आ गई रेल की पटरियो पर)

७ अत्तरदानी गुलाबदानी काचेधा हिरवा पेला
पाण्यात बगला केला इग्रजानी

(अतरदानी, गुलाबदानी, कांच का हरा प्याला
पानी में बगला बनाया अंग्रेजो ने)

ओवियो की भाँति ही उत्तर-प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो मे चक्की-पीसने के गीत होते है। चक्की पीसने, चूल्हा जलाने और चरखा कातने के समय महिलाये गीत गाती है। इन गीतो मे जीवन के विभिन्न रूपो के वर्णन होते है। एक ओर तो उनके समय का सदुपयोग होता रहता है दूसरी ओर उनकी भावुकता, कल्पना और उल्लास का प्रदर्शन।

चक्की पीसने का समय रात का तीसरा प्रहर होता है। स्त्रियाँ सायकाल मे ही पीसने के लिये अनाज रख लेती है और रात के तीसरे प्रहर उठकर वे चक्की लेकर बैठ जाती हैं। चक्की के दोनो ओर आमने-सामने बैठ कर स्त्रियाँ पीसने मे सुविधा समझती है। इस कार्य मे एक-दूसरे का सहयोग भी चलता रहता है। यदि कोई स्त्री अपनी पडोसिन का आटा पिसा आती है तो बदले मे वह भी उसका आटा पीसने बडी प्रसन्नता से आ जाती है। विवाह के अवसर पर तो आसपास के घरो में तीन-तीन चार-चार पसेरी गेहूँ कम समय मे सरलता से पिस जाता है। निर्धन और कर्कशा स्त्रियाँ सहयोग के इस कार्य से वचित रह जाती है। निर्धन स्त्री तो अपनी निर्धनता के कारण इधर-उधर के कामो मे इतनी व्यस्त रहती है कि उसे किसी के यहाँ आटा पीसने मे सहयोग देने का समय ही नही मिल पाता, दूसरे यह भी कारण हो सकता है कि उसके पास अपनी चक्की भी न हो और वह इधर-उधर से मिले आटे या भोजन से अपना निर्वाह कर लेती हो। कर्कशा स्त्री घर की सम्पन्न होने पर भी अपने दुर्व्यवहार के कारण किसी से अच्छा सम्बन्ध नही रख पाती। इस कारण न तो उसके पास कोई आता है और न वही किसी के यहाँ जाती है।

चक्की पीसने के गीत एक ओर जहाँ थकावट दूर करते हैं वहाँ दूसरी ओर पीसने वाली स्त्रियो के मन को प्रेम, करुणा और उदारता से रिक्त कर कुटुम्बियो के असहनीय व्यवहार के कारण उत्पन्न हुए आक्रोश को प्रकट करने मे भी सहायता करते रहते है।

शीतकाल की ठडी और लम्बी रातो के सन्नाटो मे उषाकाल के मन्द मन्द समीर में, ग्रीष्म के भिनसारे मे चक्की पीसती हुई जब ग्रामीण महिलाएँ अपने कल-कण्ठो के मधुरगीत गाती है तो सुनने वाले मुग्ध हुए बिना नही रहते। चक्की घर्र-घर्र की ध्वनि के साथ एक-एक कड़ी पर दम लेकर गाये जाने वाले चक्की के गीत अपना अद्भुत प्रभाव दिखाते हैं। अब नगरो की भाँति अनेक गाँवो मे भी आटा पीसने की मशीनें लग जाने से घरो मे चक्की पीसने की आदत छूटती जा रही है। ओवियो जैसे आगरा में भी चक्की पीसते समय के अनेक गीत है। निम्नलिखित गीत मे किसी के प्रेम मे एक स्त्री इतना अधिक निमग्न हो रही है कि उसे अपने अपयश की भी चिन्ता नही। वह सदैव अपने प्रेमी के ही साथ रहना चाहती है। वह स्पष्ट रूप से कहती है—

तेने करी है बदनाम सँवरिया
जैसे कचहरी मे कलम चलत है
वैसे चलूँ तोरे साथ सँवरिया
जैसे सड़क पै इक्का चलत है
वैसें चलूँ तोरे साथ सँवरिया
जैसे कुमन मे डूबै गगरिया
वैसे डूबूँ तोरे साथ सँवरिया
तेने करी है बदनाम सँवरिया

इस प्रकार का एक गीत भोजपुरी मे भी है। इन दोनो गीतों मे बहुत साम्य है—

सँवरिया रे काहे मारै नजरिया।
मारै नजरिया जगावै पिरितिया॥ सँवरिया रे॥
जैसे दूध मे पानी मिलतु है,
वैसे मिलौं तोरे साथ। सँवरिया रे॥
जब से छुटि रेल कै गाड़ी कटिगा जगल पहाड़।
पैसा रहा सोगोड़े क सौतेड पेटवा पीठि कै हाड़।:

भोजपुरी में इसी प्रकार का एक लोकगीत है। इस गीत मे झुलनी गिरने का उल्लेख है। भाव 'बिंदिया' के गीतो जैसे ही है—

ना जाने यार झुलनी[1] मोरा काहाँ गिरा।
पनियाँ भरन जाऊँ, राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो॥
ना जानो यार डोरिये मे लिपट गया।
रोटियाँ पोवन जाऊँ, राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो॥
ना जानो यार वेलने मे लिपट गया।
सेजिया सोवे जाऊँ राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो॥
ना जानो यार सेजिया मे लिपट गया।
ना जानो यार झुलनी मोरा कहाँ गिरा॥

एक और भोजपुरी लोकगीत मे अँगूठी खोने का वर्णन है यह गीत झुमका खोया रे' वाले गीत से मिलता है। इस गीत मे पीसने की बात अलग से कही गई है किन्तु अँगूठी खोने से पीसने का कोई सम्वन्ध नही। अत. ये पक्तियाँ अनुपयुक्त प्रतीत होती है।

कलकत्ता बाजार मे मोरे अँगूठी गीरे रे। टेक०
सासु मोरे खोजे, ननद मोरे खोजे, सइयाँ खोजे रे
मसाल दिया बारी बारी सइयाँ खोजे रे॥
सासु मोरा पीसे, ननद मोरे पीसे, सइया पीसे रे
वहियाँ गले डाल डाल, सइयाँ पीसे रे॥
सासु मोरा मारे, ननद मोरा मारे, सइयाँ मारे रे
बबूर डण्डा तानि तानि, सइयाँ मारे रे॥
सासु मोरा रोवे, ननद मोरा रोवे, सइयाँ रोवे रे
रूमाल मुख डाल-डाल, सइयाँ रे॥
(भोजपुरी लोकगीत)

इसी "झुमका खोया" गीत से बहुत कुछ मिलता हुआ एक और गीत है जो मैनपुरी मे सुना गया है। इस गीत मे हाथ के कगन की कील गिर पडी है और साथ ही माथे की बिन्दी भी कही खो गई हैं। शृगार की वस्तुएँ खोने के ऐसे गीत बहुधा गाये जाते है।

ककन तेरी किलिया कहाँ गिरी रे।
कहाँ गिरी किलिया, कहाँ गिरो ककना,

---

१ नाक का गहना।

सिर माथे की बेदी कहाँ गिरी रे
बाजार गिरी किलिया, ऊसार (आँगन) गिरो ककना,
सिर माथे की बेदी सेज गिरी रे।
किन्नै पाई किलीया, किन्नै पायो ककना,
किन्नै पाई रे, सिर माथे की बेदी, किन्नै पाई रे।
सास पाई किलीया, ननद पाओ ककना,
सैया पाई रे, सिर माँथे की बेदी, सैया पाई रे।

(गॉव किसनपुर, मैनपुरी)

शृंगार की ये वस्तुये प्रेमालिंगन, रति-क्रिया, भावातिरेक आदि मे ही बहुधा खो जाती है। अल्हड सुन्दरी अपने रूप-यौवन के गर्व मे भी ऐसे इठलाकर चलती है कि उसे अपने वस्त्राभूषण का भी ध्यान नही रहता। मुग्धा, रूप-गर्विता, भाव-मग्ना सुन्दरियो की स्वाभाविक दशा का ही वर्णन इन गीतो मे बडी सरसता और सुन्दरता से किया गया है।

जैसे साहित्यिक कविताओ मे वियोग शृंगार होता है वैसे ही लोकगीतो मे भी वियोग शृंगार का सौन्दर्य देखा जा सकता है। निम्नलिखित लोकगीत किसी भी साहित्यिक कविता की तुलना में रखा जा सकता है। जायसी की नागमती से लेकर गुप्तजी की उर्मिला तक के विरह की तुलना इस गीत से की जा सकती है—

मोरी धानी चुनरिया इतर गमकै।
धनि बारी उमरिया पिहर तरसै॥
सोने की थारी मे भोजन परोसे।
खाबे वारौ बलम हाय विदेस तरसै॥
सोने के लोटा मे लाई जमुना जल।
पीवै बारो बलम हाय विदेस तरसै॥
लौग इलाइची कौ बीड़ा लगायौ।
बीड़ा खावै वारौ विदेस तरसै॥
चुन-चुन कलियन सेजे बिछाई।
सोवे बारौ बलम हाय विदेस तरसै॥

ऐसा ही एक लोकगीत भोजपुरी बोली मे भी है। दोनो गीतो मे कितना साम्य है, यह दोनो गीतो को पढ़कर ही देखा जा सकता है--

मोरी धानी चुनरिया इतर गमकै।
धनि बारी उमरिया नइहर तरसै।
सोने की थारी मे जेवना परोसलो।

मोरे जे वन वाला विदेस तरसे ।।
झझरे गेडुववा गंगाजल पानी ।
मो घूटन वाला विदेस तरसे ।।
कलिया चुनि चुनि सेजवा लगवली ।
योर सूतन वाला विदेस तरसे ।।

आर्थिक परिस्थिति से सम्बन्धित एक छत्तीसगढी लोकगीत है जिसमे रावत दम्पति का सवाद है—

छेरीला वेचौ, मेढीला वेचौ
वेचौ भैंसी वगार
वनी भूती मे हम जी जावे
सोवो गोड समाय
छेरी न वेचौं मेढी न वेचौ
न वेचौ भैंसी वगार
मोले मही मे हम जी जावो
औ वेचौ तोहूला घलाय
कौन तोरे करिहो रामे रसोई
कौन करे जेवनार

राजस्थान मे तीजो का त्यौहार वड़े उल्लास से मनाया जाता है। आगरा के तीजो के गीतो की भाँति राजस्थान के भी तीजो के गीत बडे सरस और प्रभावपूर्ण होते है। एक राजस्थानी गीत है—

आयी आयी माँ सावणिया री तीज।
मायसा, पहले ने सावणमह राखे
घियाने सासरो।
मेल्यो मेल्यो ए मा, वड़ोड़ो वीर।
विच मे वीरे रो सासरौ।
रह गया, ए मा दिनड़ा दो च्यार।
जोड़े ए मा, सावण ढल ग्यो।

(ए मा सावन की तीज आ गई है। विवाह के वाद के इस पहले सावन मे तो मुझे ससुराल मे मत रख। मा ने तो वहिन को लाने को वड़ा भाई भेजा है परन्तु मार्ग मे ही उसकी भी ससुराल है। वह वही रुक गया। मा, अव तो दो-चार दिन रह गए, सारा सावन ही ढल गया।)

वहिन को लेने भाई आया। उसका आना सुनकर पलंग पर सोई हुई

बहिन तुरत उठ कर उससे मिलने दौडी। उसका हार टूट गया किन्तु उसे उसकी कोई चिन्ता नही। हार तो फिर भी गुँथ लिया जायेगा किन्तु भाई से मिलना कठिन हो जाता है। इस स्थिति का एक सुन्दर गीत है—

हूँ सूती लाल पिलग पर,
झीणा सालू ओढ्या राज,
हूँ उठी वीर मिलणने
टूट्यो बाईरो हारो राज।
हारो तो फेर पावास्यां,
वीरां सू कद मिलस्यां राज,
चूग देसी म्हारी सोन चिड़कली,
यो देगो बिणजारो राज।

तीज आने पर लडकी अपनी माँ से चम्पा बाग मे झूला डलवाने की प्रार्थना करती है। उसकी हठी सहेलियाँ उसे अपने झूलो पर झूलने नही देती इसीलिये तो वह माँ से आग्रह कर एक अलग झूला डलवाना चाहती है। इस दशा का एक गीत है—

ए माँ, चम्पा बाग मे हीडो घला दे,
तीज नवेली आयी,
ए माँ, और सहेल्याँ को घररा हीडो,
म्हारे हीडो नही।
ए माँ, हीडो हीडण हू गयी,
कोइयन हीडे हिंडाई,
संग सहेल्या म्हासू मुख मोडियो,
बिना हीडियांई आई।
ए माँ, चम्पा बाग मे हीडो घला दे,
तीज नवेली आयी।

आगरे का एक तीजो का गीत है--

आयौ तीजन कौ त्यौहार भैना मेरी झूलना जी।।
चलौ मिलिकें चम्पा बाग, भैना मेरी झूलना जी।।
पीहर से मोरा वीरन आयौ, सामन की सौगातें लायौ।
मिलि गाओ मेघ-मल्हार, भैना मेरी झूलना जी।।

राजस्थानी मल्हारों की भाँति आगरा में गाया जाने वाला झूले का एक और गीत है—

मेरी मइया मोर पपइया करैं सोर झूलुँगी झूला बाग में।
संग सहेली बुलवाय दैं, अरी मइया मो मन उठत हिलोर ॥

पूर्व का अति प्रसिद्ध लोकगीत है—

धीरैं बहौ नदिया, धीरैं बहौ
तोरा पिया उतरैं दै पार
काहे की तोरी नैयारे, काहे की पतवार
कहाँ तोरा नैया खिवैया, कौनवाँ उतरैं पार
धीर बहौ नदिया, .. .
धरम की मोरी नैया रे
सतकी रे पतवार
सैंया मोरा नया खिवैया हम धन उतरैं पार

आगरे मे भी कुछ इसी प्रकार का एक गीत प्रचलित है—

हौलैं-हौलैं ते वहियो री जमना जी की धार।
सैंया मोरे जावन हारे आजई पल्लीपार ॥
धरम करम की खेती अपनी, सत के बीज बुआए,
सुख-दुख के बरखा-पानी ते, खेत सबी लहराए,
घरि में बने रसोई नित-नित, मूँग-उरद की दार। हौलैं०

होली का एक राजस्थानी लोकगीत है—

होली आई ए सहेल्याँ, मिल खेलाँ लूर।
होली आई ए।
कोई कोई ओढ्यां झीणी झीणी चूनड़
कोई कोई ओढ्यां विखणी चीर।
होली आई ए ॥
कोई कोई पहर्या पायलड़ी,
होली आई ए ॥

भोजपुरी का एक बड़ा सरस सावन-गीत है—

बरिसहु बरिसहु देव हे अजु के रतिया, आरे पिया के
जतरवा सेहु विलमावहु रे कि,

जत्रतुहुं मनवलु हे धनी मेघ मनवलु, आर छतवा वेसाही के
हम पंच जाइवरे

इसी प्रकार के अनेक गीत आगरा में भी मिल सकते हैं। एक उदाहरण निम्नलिखित है—

घहरि-घहरि कै वरसौ मेहा, भौति दिना अरु रैना।
नेसे वरसो उमड़ि-घुमड़ि कै, सैयाँ जाय सके ना॥
तड़कि-तड़कि वीजुरिया चमकै, पवन चलै छकझोरा।
ऐसौ घिरै अँधेरौ चहुँ दिस घिरि जावै पिय मोरा॥
वाहिर वरसैं रिमझिम वदरा, घरि मे दोऊ नैना। घहरि०

**बारहमासे :**

वारहमासे मे वियोग ही अधिक रहता है। श्री रामइकवाल सिंह 'राकेश' ने अपनी पुस्तक 'मैथिली लोकगीत' मे कहा है कि वारहमासा अनुभूत्यात्मक अभिव्यञ्जना है। "वारहमासा के नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स के हल्के पैर, गहरे नील रंग की वनफ़शा सी आँखें, काढ़े हुए वाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेत कण्ठ और मलाईदार वक्ष-प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है।"

वारहमासे व्हुधा आषाढ़ से आरम्भ होते हैं। वैसे कुछ चैत से और कुछ अन्य महिनों से भी आरम्भ होते हैं।
गर्वा-गीत मे वारहमासी –

सखि, लागो असाड़े माम, प्रभु वन चाल्या रे
चाल्या, चाल्या रे दुवारकानाथ, हरि मन्दर सूनो रे
म्हारा प्रभुजी ने राख्या विलमाय कामणी करिया रे
सखि, एक सो दासी ने साथे, दूजी कुवजा रे
गिरधर वसी वाजु लाला तोरी आवाज सुनकर मैं दवड़ी
रमझम-रमझम मेहला वरसे कृष्ण घाट पे लागि झड़ी
पेला मेना असाड़ लगिया जंगल हो गई हरियाली
धारी धूरन याद करत रही झुररही अपना मेला मे
दुजार मेना सवरण लगिया मेरो मन हो रह्यो वेरागी
कोइ ढूंडे वामण-वनिया, मैं, ढूंढूं रमता जोगी
भादो मेना लगो लाल जी घमक पड़े मेरो मन हरखे
हे घमक पड़े वादल गरजे

वारहमासे अधिकतर आषाढ़ मास से ही आरम्भ होते हैं। निम्नलिखित उदाहरण मालवी, भोजपुरी, अवधी और व्रजभाषा (आगरा) के गीतो के हैं—

१ असाढ़—घन गरजे घोर (मा०)

× × ×

गरजि गरजि के सुनाई (भो०)

उमडि-घुमडि कै मेहा बरसै (ब्र०)

२ सावन—सावन रिमझिम बुँनवा बरिसे

पियवा भीजेला परदेस (भो०)

× × ×

रिमझिम बरस बूँदे हे, हमरो बलम परदेस (मै०)

× × ×

पिया गयौ परदेस चलै पुरवैया रे (आगरा)

३ भादौं—बडी बडी बुँदिया बरसत नीर

धमक पडे बादल

गरजे, छई रे दुधारी रात (मा०)

× × ×

भादो रहनी भयावन सखि हो

चारु ओर बरसेला धार (भो०)

× × ×

भादौ की कारी रैन सखी री,

बिन सैया मिलै ना चैन सखीरी। (आगरा)

४ क्वार—कुँवार ए सखि कुँवर विदेसे गइले

दे गइले तीन निसान

सीर सेनुर, नयन काजर, जोवन जीव के काल (भो०)

× × ×

कैसे काटूँ क्वार सखी री, क्वारापन तरसावै है,

चौकि चौकि रातन मे जागूँ, कोउ न धीर बँधावै है। (आगरा)

५. **कार्तिक**—कातिक ए सखी कातिकी लगतु हे
सब सखि गगा नहाय (भो०)

× × ×

आयौ कातिक मास, चलौ जमना जी न्हावे (आगरा)

६. **अगहन**--चहुँ दिसी उपजा धान
सियालो आयो (मा०)

× × ×

अगहन आगिन लगावै आली, कैसे धारू धीर पिया बिन (आगरा)

७. **पौष**—बयार चलेज स खड्ग की धार (अ)

× × ×

पिय बिन जाडा न जाय हमारो (ब्र०) (आगरा)

× × ×

पूस हे सखि, ओस परतु हे
भीजेला अँगिया हमार हे (भो०)

८. **माह**—माघ हे सखि पाला पड़तु हे
बिना पिया जाडो ना जाइ हे (भो०)

× × ×

जाड़िन मे देही ठिठुर गई रे, मोरे सैया तोरे बिन मैं मरि गई रे (आगरा)

९ **फागुन**—फगुनी बयार, तरुवर पात सबै
झरि जाय।
फागुन हे सखि फाग खेलतु हे
घर घर उडेला अबीर हे (भो०)

× × ×

होरी खेले री कन्हैया सखी राधा जी के सग (आगरा)

१०. **चैत**—चेत फुले हे वन टेसुल (अ०)

× × ×

चैत मास तौ आइ गओ, चेतौ अबि भरतार। (आगरा)

११ वैसाख—पवन चलत जस बरसत आग (अ०)

× × ×

वइसाख ए सखि उखम लागे

तन से ढरेला नीर (भो०)

लूहे चलैं भरी अँगार, मेरो जीया रही निकार। (आगरा)

१२ जेठ—धधकै धरती औ असमान (अ०)

× × ×

जेठ मास सखि लूक लागे

सर सर चलेल समीर (भो०)

× × ×

जेठ मे धरती सूख गई,

पिया मैं जल को तरसि गई। (आगरा)

# ३. ब्रजभाषा तथा हिन्दी काव्य को इन लोक-गीतों की देन

लोकगीतो मे व्यक्तित्व से प्रथक समान रूप मे समाज की आत्मा को व्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। लोकगीतो की अभिव्यक्ति सामूहिक होती है। उनके पीछे सामाजिक परम्परा होती है। वे मुख्यरूप से मौखिक ही होते है। लोकगीतो मे लोक-जीवन के समस्त तत्व उभरते हुए चले आते है, जन-मानस की सच्ची भावनाये प्रकट होती चली आती हैं, वे और अधिक स्पष्ट हो जाती है। लोकगीतो मे गम्भीर मानवीय मूल्य और मान छिपे रहते है। जीवन की ही भाँति लोकगीतो मे भी अबाध गति रहती चली आयी है। उनमे जीवन के नये-नये तत्वो को ग्रहण करने की भी क्षमता रही है। लोकगीतो को वैसे तो सामूहिक प्रयास के आधार पर उचित माना जाता है किन्तु इस मान्यता का कारण उनका मौखिक होना ही है। निश्चित रूप से इन लोकगीतो के पीछे कुछ विशिष्ट व्यक्तियो का प्रमुख हाथ रहा होगा। उन्होने उन गीतो के साथ अपने नाम नही जोडे और उनमे आवश्यक परिवर्तन परिवर्द्धन करने से किसी को रोका भी न होगा। अत मूल रूप से व्यक्ति विशेष के गीत होने पर भी ये कालान्तर मे धीरे-धीरे पूरे जन-समाज के लोक के गीत होते चले गए।

लोकगीतो और साहित्यिक गीतो या कविताओ के उद्भव एव विकास मे एक बात और विशेष रूप से ध्यान देने की है। लोकगीत समूह की आवश्यकताओ और प्रेरणाओ को व्यक्त करते है और साहित्यिक गीत व्यक्ति की आवश्यकताओ और प्रेरणाओं को ही अधिक व्यक्त करते है। वैसे कवि पर तत्कालीन समाज का प्रभाव तो पडता है किन्तु फिर भी उसकी रचनाओ पर उसका व्यक्तिगत प्रभाव कम नही रहता। हमारे प्राचीन काव्य मे सामूहिक मनोवृत्ति आज के काव्य की अपेक्षा अधिक दिखायी देती है। किन्तु कबीर के काव्य को लोक-काव्य इसलिए नही माना जा सकता क्योकि लोकगीत वस्तुत. किसी समाज विशेष के हृदय और मस्तिष्क की अभिव्यक्ति करते है जहाँ सत-काव्य किसी सन्त की स्वानुभूति का निदर्शन करता है जिस कारण वह अपनी कर्तप्रधानता एव आत्माभिव्यञ्जना की महत्वपूर्ण विशेषताओ का पूर्णत त्याग नही कर पाता।

लोकगीतो मे मूल मानव का स्वर होता है। साथ ही वे युग-युग से बदलती बोलियो को भी मुखरित करते है। उनकी व्यापकता मे न्यूनता नही आती। उनकी अनन्तता सदा रहती है। इनमे सस्कृति की आधार-शिला लोक-सस्कृति प्रतिबिम्बित होती रहती है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास देखने से विदित होता है कि आदिकाल से आधुनिक काल तक के कवियो ने विभिन्न धाराओ और शाखाओ मे विभाजित हो कर अपने-अपने मतो और दृष्टिकोणो को ही काव्य के माध्यम से प्रकट किया है। वीरगाथा काल मे उनका ध्यान अपने आश्रयदाताओं को उभारने मे ही लगा रहा, भक्तिकाल मे अनेक प्रकार से निर्गुण-सगुण के पक्ष-विपक्ष मे सघर्ष चला, रीतिकाल मे कुछ कवि तो सामाजिक उच्छृखलता को भुलाने या उस पर पर्दा डालने को भक्ति-मार्गी हो गए और कुछ घोर शृगारी। इनसे अलग कुछ कवियो ने इन कुघड और अप्रिय सच्चाइयो की चुनौती स्वीकार कर विभिन्न राजाओं-जागीरदारो आदि को उत्तेजित करना ही अपना धर्म समझा। आधुनिक-काल मे पहले तो इतिवृत्तात्मकता रही फिर व्यक्ति परक काव्य लिखा जाने लगा। इस काल मे अनेक वाद भी चल पडे जिनसे काव्य जन-भावना का प्रतिनिधि न रहकर 'वादो' का प्रचारक या विरोधी बन गया। जन साधारण को अनुप्राणित करने, उसे सशक्त बनाने की ओर इनका ध्यान बहुत कम गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारतीय सस्कृति और सभ्यता के पुनरुत्थान की ओर देश के कवियो का ध्यान गया तो उन्हे जन-मानस को भी समझने की चिन्ता हुई। स्वभावतः लोकगीत इनके साहित्यिक काव्य को प्रभावित करने लगे। छदो और अलकारो के बन्धनो से अलग होकर इन कवियो ने लोकगीतो की सरलता और सरसता को अपनाया। इन कवियो के शब्दो मे स्वत. ही कोमलता आने लगी। ब्रज-भाषा की कविता क्लिष्टता और दुरुहता से हट कर सरलता की ओर बढी। लोकगीतो ने जाने-अनजाने मे इन कवियो को प्रभावित किया। वैसे 'सूर' और 'तुलसी' के पदो मे भी लोकगीतो की झलक आने लगी थी। "ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनिया" जैसे तुलसी के पदो पर लोकगीतो का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सूर के अनेक पदो मे लोकगीतो का सा आनन्द आता है। "जसौदा हरि पालने झुलावै" एक सुन्दर सरल लोरी गीत है। "कन्हैया झूलै पालना नेक हौले झोटा दीयौ" जैसे लोकगीतो से इसकी समता की जा सकती है। "गोकुल प्रकट भए हरि राई" सूर की पक्ति है। एक लोकगीत है "जसोदा ने कारी अँधेरी मे जायो"। सूर-तुलसी के समय मे भी लोकगीत थे। इन महाकवियो ने लोकगीतो की लय, उनकी शब्दावली और उनकी स्वाभाविकता को अनुनाया तथा अपने काव्य मे उन्हे सँजोया। मीरा के भजनो पर भी लोकगीतो का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। भाव और शैली दोनो पर लोकगीत छाये हुए हैं। चरणो की पुनरावृत्ति मीरा के पदो मे देखी जा सकती है। जन-मानस को मुग्ध करने वाली कृष्ण-लीला मीरा के पदो मे परिलक्षित होती है। चन्दसखी के गीत तो शुद्ध रूप से ही लोकगीत कहे जा सकते है। चन्दसखी के गीतो का साहित्य मे तो स्थान है ही किन्तु वे लोकगीत अधिक है। चन्दसखी के अधिकाश गीत लोकगीतो के रूप मे गाए जाते हैं। अनेक गीत तो ऐसे है जो अति प्रसिद्ध लोकगीत बन

गए है और उन्हे चन्दसखी या किसी साहित्यिक कवि का लिखा मानने मे हिचक होती है। एक लोक-गीत है—

जसोदा तेरे री लाला ने, मेरी दई मटुकिया फोर।
दधि की मटुकी धरै सीस पै, मै आई बडे भोर॥
वृन्दावन की कुंज गलिन मे, मिल गयौ नन्द किसोर।
मोतें कहै नाच मेरे सग मे, करि बिछुअन घनघोर॥

चन्दसखी का इसी प्रकार का एक गीत है—

जसोदा तेरे लाला ने, मेरी दई है मटुकिया फोर।
दही की मटुकी धरै सीस पै, मै आई अति भोर॥
आन अचानक कुंज गलिन मे, मिलि गयौ नन्द किसोर।
मोसे कहत नाच मेरे सग मे, करि बिछुअन की घोर॥

इन दोनो गीतो को देखकर कहा जा सकता है कि चन्दसखी का ही गीत आगे चलकर कुछ परिवर्तनो के साथ लोकगीत के रूप मे गाया जाने लगा। अस्तु, चन्दसखी के गीतो के मूल मे लोकगीत ही है। इन लोकगीतो का चन्दसखी पर इतना अधिक प्रभाव था कि उनसे बचना उसके लिए सम्भव ही नही था।

ब्रज-भाषा मे गोविन्द दत्त शास्त्री की एक कविता है—

आली मतबारौ बारौ संवरिया
निक रोकै हमारी डगरिया
प्यारौ प्यारौ वो छैल बिहारी, वाकी अखिया लसे कजरारी
बरजोर बडौ वावरिया
धरै काँधे पै कारी कमरिया।

इसी प्रकार का एक लोकगीत है—

मै कैसे जाऊँ जमना
कन्हैया मोतै अटकै
विन्द्रावन की कुंज गलिन मे
वो रस्ता रोकै डटकै,
जाए कोउ नाई हटकै।

इन दोनो गीतो मे जो साम्य है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि ब्रज-भाषा के काव्य पर लोकगीतों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पडा है। सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीतों तथा सत्यनारायण 'कविरत्न' के "भ्रमर-दूत" मे लोकगीतों की धुनें और शब्दावली देखी जा सकती है।

हिन्दी के खडी बोली के काव्य पर भी लोकगीतो का प्रभाव पडा है। खड़ी बोली के प्रारम्भ से ही उसमे लोक-भाषा के शब्दो का प्रयोग होता रहा है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविताओ मे भी यह विशेषता देखी जा सकती है। उन्होने गैल, दैया, मैया आदि लोक-भाषा के शब्दो का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। पतजी के काव्य मे शब्दो की कर्ण-कटुता को समाप्त करने का जो प्रयास हुआ है वह लोकगीतो के शब्दो की सहायता से ही सभव हो सका है।

पतजी की कविता "मौन-निमन्त्रण" मे प्रयुक्त कुछ शब्द दृष्टव्य है—

स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ मे भोर
विश्व को देती है जब बोर,

× × ×

न जाने, अलस पलक-दल कौन ?
खोल देता तब मेरे मौन ?

उपर्युक्त पक्तियो मे 'भोर', 'बोर', और 'अलस' लोकगीतो मे प्रयुक्त होने वाले शब्द है। पन्त जी ने ऐसे अनेक शब्दो का अनेक बार प्रयोग किया है। उन्होने खडी बोली के काव्य मे इन्ही के प्रयोग से ब्रज-भाषा की भी मधुरता लाने की सफलता प्राप्त करली है। पन्त जी की काव्य-पुस्तक 'ग्राम्या' मे लोकगीतो की विशेषताएँ देखी जा सकती है। 'भारतमाता' शीर्षक कविता मे पत जी की लोक-सस्कृति परिलक्षित होती है—

भारतमाता
ग्रामवासिनी
खेतो मे फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गगा यमुना मे आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी

अति प्रसिद्ध युगान्तरकारी कवि 'निराला' के गीतो मे भी लोक-धुन के साथ साथ लोक-भाषा के शब्द है। 'आराधना' का एक उदाहरण है—

बादल वे बदल गये
कटे-छटे नये-नये
नभ मे आये, उनये
बन्द हुई पुरवाई

जुही आनवान भरी
चमेली जवान परी,
मालती खिली निखरी
शीत हवा सरसाई

कवि 'नेपाली' के गीतो पर भी लोकगीतो का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। उनके कुछ गीतो के अंश निम्नलिखित हैं—

कोई बदले नूतन कंगना
कोई चाहे चुनरी रंगना
पिया हमारे बदले अंगवा
हम घर-घर पायलिया बदलें
जनम-जनम हम गलियाँ बदले

× × ×

पूनम आयी तो मुख उनका
चन्दा के दरपन मे चमका
फिर श्याम घटा घिर आयी तो,
लट हिलती डुलती चली गयी
छवि नयन डोर से बाधी तो,
लट पर लट खुलती चली गयी

उपर्युक्त छन्दो मे धुन और शब्द लोकगीतो से ही प्रभावित है।

आज के लोकप्रिय गीतकार 'नीरज' ने भी लोकगीतो की धुनों और शब्दावली को अपनाया है। उनके कुछ गीत तो पूर्णतः पुराने लोकगीत ही पर आधारित है। जैसे—

काले मेघा पानी दे
पानी दे गुड़ धानी दे
काले मेघा पानी दे

× × ×

बरसो राम धड़ाके से
बनिया मरे पड़ाके से

यह गीत एक बहुत पुराने और प्रसिद्ध लोक-गीत का ही रूपान्तर है। उनके एक अन्य गीत की प्रथम पंक्ति है—

हमरे सैयाँ को रग गुलाव
हमारो रग केसरिया।

उनका एक अति प्रसिद्ध गीत है—

देखती ही रहो आज दरपन न तुम
प्यार का यह महूरत निकल जायेगा।

इन गीतो मे 'हमरे' 'सैया' 'हमारो', दरपन, आदि शब्द लोक-भाषा के शब्द हैं। इनके प्रयोग से स्पष्ट है कि कवि पर लोकगीतो का प्रभाव पडा है।

कुछ अन्य नवीन कवियो के उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

अलस वादरी वरसै री
मन तरसै री, अलस वादरी वरसै री। —घनश्याम अस्थाना

× × ×

रिमझिम-रिमझिम मेहा वरसै
घुमड घटा घिर आई रे।
गीले-गीले नयन दुआरे
याद किसी की आई रे॥ —कुलदीप

× × ×

पुरवैया पौरी पै गावै वटगमनी
अगना मे होवै फूलन का परिछावन
नहकू के अलते पै
उमगा कजरौटा
गुदने के आखर उभरे
रितु की सलहजने—
ननदोई के आगै
खोला पनवौटा
सुतली के धागे मे वाँधी चरक लडी
हल्दी के मडवे पै इगुरी चुभावन। —रामचन्द्र 'चन्द्रभूपण'

× × ×

भयौ मन मेरौ वागी रे।
घटाएँ छाई चारौं ओर,
नाचते दादुर पपिहा मोर,
सखी परदेस गयौ चितचोर पीर सोई उर जागी रे

भयौ मन मेरौ वागी रे !
हृदय पजरतु है सम अगार
पिया कौ आकुल उर मे प्यार
वतादे री ! कोई आधार लगन दर्शन की लागी रे !
भयौ गन मेरो वागी रे ।

—रामगोपाल परदेसी

एक और गीत द्रष्टव्य है—

बुँदियनु को रास रचे, बुँदियनु को रास
भीग रहा मनवा
भीग रहा तनवा
छुटपन की प्यास बुझे, छुटपन की प्यास
आँगन मे टपक टपक
गलियो मे छपक छपक
पाँव चले, आस लगी मिलने की आस
हाथो को हाथ मिले
मन चाहा साथ मिले
भोली सी आस मिले, भोली सी सास
श्रम की वदौलत
खुशियो की दौलत
सवके ही पास रहे, सवके ही पास
बुँदियनु को रास रचे, बुँदियन को रास —रामगोपाल परदेसी

× × ×

अलसायी गवन हरी
जैसे वो दोपहरी
दक्खिन की खिड़की से झाँक गयी परसो ।

—चन्द्रदेवसिंह

× × ×

हँसी चाँदनी जव गगन की अटारी !
फटा रात का पट
हटा खोर घूँघट
दिखा चितवनों मे वही हास नटखट
पलक झुक गई थी लिए आज भारी ! —अमर नाथ चतुर्वेदी

× × ×

मधुवन के सब सुमन भेंट, जब तुमको कर डाले सांवरिया
अब मैं किसे समर्पित कर दूँ, यह तन की झूँठी बाँसुरिया ।

—पुरुषोत्तम खरे
(ध० यु० ३१-१२-६१)

× × ×

हँसती हुई बहार सी
बजते हुए सितार सी
धीरे-धीरे डोल रही हे पुरवेया मिनसार की ।

—श्याम नारायण

× × ×

कूक-कूक कर कोयल कहती
आई बरखा रानी रे,
बरस गया लो पानी रे ।

—नरेन्द्र दीपक

× × ×

धरती का है व्याह बराती बादल आए रे
पुरवाई ने गैल बुहारी फूल बिछाए रे !

—प्राण गुप्त

इस प्रकार ब्रज-भाषा तथा खड़ी बोली के काव्य का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन्हे लोकगीतो ने बहुत कुछ दिया है। कविता की क्लिष्टता कम होती जा रही है और उसमे जन-मानस को प्रभावित करने और अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता आती जा रही है। लोकगीतो से स्वाभाविक उपमान लेकर जब हिन्दी का नवीन कवि उन्हे और सँवार-सुधार कर अपने गीतों में लाता है तो वे गीत और अधिक मधुर तथा अनुभूति पूर्ण हो जाते है।

## परिशिष्ट

# १. आगरा जिले का भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वर्णनः मेले, उत्सव, पर्व, त्यौहार आदि

भौगोलिक दृष्टि से आगरा ज़िला २६°४४' तथा २७°२५' उत्तरी अक्षाश तथा ७७°२६' तथा ७८°३२' पूर्वी देशान्तर के बीच पडता है। इसके पश्चिम मे राजस्थान का भरतपुर प्रदेश है, दक्षिण मे धौलपुर तथा ग्वालियर है, उत्तर मे मथुरा तथा एटा ज़िले है और पूर्व मे मैनपुरी तथा इटावा के जिले है। ज़िले का कुल क्षेत्रफल १८५३ २ वर्गमील है। जिले की सबसे अधिक लम्बाई पश्चिम-उत्तर-पश्चिम से पूर्व-दक्षिण-पूर्व तक ७८ मील है। उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम की सर्वाधिक लम्बाई ७५ मील है। उत्तर से दक्षिण तक जिले की सबसे अधिक चौड़ाई ३५ मील है। आगरा जिले की की जनसख्या १८,५६,९३० है। ग्रामीण क्षेत्र की लगभग १२ लाख और नगर की छै लाख से ऊपर है।

आगरा की प्रमुख नदी यमुना है। दूसरा स्थान चम्बल का है और तीसरा उटंगन नदी का। इन नदियो ने जिले को चार भागो मे विभाजित कर दिया है। यमुना के उत्तर मे फीरोजाबाद तथा एत्मादपुर की तहसीले है। ये तहसीले यमुना-गगा के दोआब मे आती है। यमुना और उटगन के बीच आगरा, किरावली, फतेहाबाद तथा खेरागढ का कुछ भाग आता है। यमुना और चम्बल के बीच बाह तहसील है। उटगन नदी तथा भरतपुर-धौलपुर मे बहने वाली सहायक नदियो के बीच खेरागढ का शेष भाग आता है।

धरती, उपज, जल-वायु आदि की दृष्टि से जिले के ये उपर्युक्त चारो भाग अलग-अलग से प्रतीत होते है किन्तु फिर भी ये सब भाग मिलकर स्वय मे अपना एक निश्चित स्वरूप लिये हुए है। वैसे बाह तहसील का दक्षिण-पूर्वी भाग कई दृष्टियो से प्रथम है। इस भाग की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थिति अन्य भागो से अलग है। एतमादपुर और फीरोज़ाबाद तहसीलो का भाग अधिकाश मे समतल है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। यमुना के किनारे वाले हिस्सो मे भूमि ऊँची-नीची तथा कगारो से भरी है। यमुना और उटगन के बीच के भाग में मिट्टी भुरभुरी है और भूमि समतल है। किरावली और फतहपुर सीकरी के बीच के

भाग मे छोटी-छोटी पहाड़ियाँ है। खारी नदी के किनारे कगार अधिक है। यमुना और उटगन के किनारे उपजाऊ हैं। वाह तहसील लम्बी है। इसके दोनो सिरे सँकरे हैं किन्तु बीच मे कुछ चौड़ी है। यहाँ का लगभग आधा भाग यमुना और चम्बल के कगारो से भरा है। मिट्टी के छोटे-बडे ढूह भी यहाँ वहुत हैं। यहाँ की बोली मे कगार को 'भरिका' और ढूह को 'डाडे' कहते है। उत्तरी भाग मे यमुना की रेतीली भूमि है। चम्बल के किनारे अच्छी मिट्टी के है। खेरागढ पथरीला हिस्सा है। यहाँ की मिट्टी कई प्रकार की है। यह भुरभुरी तथा काली होती है। पानी वैसे तो अधिक गहराई मे नही किन्तु निचले भू-स्तर अधिक सुदृढ नही, अत. सिंचाई के लिये कठिनाई होती है। अव यहाँ नल-कूप लगाये जा रहे है। किरावली तहसील मे छोटी-छोटी पहाडियाँ अधिक हैं। यहाँ का पत्थर प्रसिद्ध है। आगरा की ऐतिहासिक इमारतो मे तो यहाँ के पत्थर का उपयोग हुआ ही है वर्तमान समय मे भी आगरा के भवन-निर्माण मे यहाँ के पत्थर का उपयोग किया जाता है।

वैसे तो आगरा जिला समतल भूमि का प्रदेश है। कही-कही ऊचा-नीचा अवश्य हो गया है। नदी के किनारो का भाग यहाँ 'कछार' कहलाता है तथा ऊँचे समतल भाग को 'हार' कहते हैं। कगारो तथा कछार का भाग नीचा है। यहाँ की मिट्टी दुमट प्रकार की है जो भूर, मटियार, चिकनौट आदि रूपो मे है। तीन प्रधान नदियो (यमुना, चम्बल और उटगन) के अतिरिक्त आगरा जिले मे अन्य अनेक छोटी-मोटी धाराएँ भी वहती रहती है। यमुना बडी टेढी-तिरछी प्रवाहित होती है। पूरे जिले मे यह १४५ मील का चक्कर लगा कर वहती है। सिरसा और सेगर इसकी सहायक नदियाँ है। उटगन सबसे प्रमुख सहायक नदी है। यह पहाडी नदियो जैसी विशेषता रखती है। चम्बल नदी वर्षा मे वडी चौडी और गहरी हो जाती है। आगरा मे झीले वहुत कम है। कीठम झील नगर को जल देने के लिये वड़ी उपयोगी है।

आगरा जिले मे जगल वहुत कम है। जगली प्रदेश का लगभग दो तिहाई भाग आगरा तहसील मे ही है। वाह तहसील मे चम्वल के किनारे कुछ जगल अवश्य है। वरगद, पीपल, नीम, शीशम, गूलर, ढाक, बबूल, महुआ, वेर, ताड तथा बाँस के वृक्ष ही यहाँ के प्रमुख वृक्ष है। कम वर्षा और अधिक गर्मी के कारण यहाँ वृक्ष कम लग पाते हैं। राजस्थान का रेगिस्तान धीरे-धीरे आगरा की ओर वढता आ रहा है। स्वतन्त्रता के वाद वन-महोत्सवो के कार्य-क्रम के अन्तर्गत अव सामूहिक रूप से वृक्ष लगाये जा रहे है। नगर मे नई गृह-निर्माण योजनाओ के अन्तर्गत जो कोठियाँ वन रही हैं वहाँ वाटिकाओ और वृक्षो को प्रमुखता दी जा रही है। वैसे पूरे जिले मे वगीचो का अभाव ही है। कही-कही आम और जामुन के मिले-जुले वगीचे अवश्य मिल जाते हैं।

जिले के अधिकाश लोगो का जीवन-निर्वाह खेती कर के होता है। खेतिहर भूमि बढाने के प्रयास किये जाते रहे है। उपज सारे-जिले मे एक सी नही। सब जगह मिट्टी अच्छी नही है उसमे रेत के कण क्रमश बढते जा रहे है। सिंचाई के साधनो का अभी तक अभाव ही है। पूर्वी तहसीलो मे तो पानी साठिया अर्थात साठ हाथ गहरा कहलाता है। राष्ट्रीय विकास सेवा के अन्तर्गत अब जिले मे खण्ड-विकास-क्षेत्र बन गये है। इनके माध्यम से खेती तथा कुटीर उद्योगो मे उन्नति के प्रयास हो रहे है।

खरीफ और रबी की दो प्रमुख फसले आगरा मे होती है। खरीफ मे ज्वार, बाजरा, रुई तथा मक्का होती है और रबी मे गेहूँ, चना, वेझर, मसूर, सरसो, लाही तथा अलसी मुख्य है। बाजरा और वेझर ही यहाँ की ग्रामीण तथा निर्धन जनता का भोजन है।

यहाँ के उद्योग आगरा नगर मे ही सीमित है। यहाँ पत्थर की मूर्तियाँ बनाने का कार्य बड़ा प्रसिद्ध है। उनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र भी आगरा मे तैयार किये जाते है किन्तु ये सौन्दर्य तथा आकर्षण मे अधिक महत्व नही रखते। कीमखाब का काम यहाँ अच्छा होता है। चमडे का उद्योग सबसे अधिक है। गाँवो मे करघो पर बनाए गये गाढ़े और गजी के सूती कपडे ग्रामीणो के होते है। मिट्टी और कागज की लुगदी के खिलौने आगरा मे बडे सुन्दर बनते है। यहाँ के खिलौने दूर-दूर तक जाते है। गोकुलपुरे मे संगमरमर तथा सेल-खडी की मूर्तियाँ तथा ताजमहल बनाए जाते है। नगर से कुछ मील दूर फीरोजाबाद चूडियो के उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ काँच की चूडियाँ और बिजली के बल्ब बनते है जो देश मे दूर-दूर तक भेजे जाते है। काँच और चीनी मिट्टी के बर्तन भी फीरोजाबाद मे बडे सुन्दर बनने लगे है। आगरा मे यमुना पार नुनिहाई गाँव मे एक औद्योगिक बस्ती बनाई गयी है अभी यह बस्ती अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे ही है किन्तु आशा है कि इसमे शीघ्र ही प्रगति होगी। बेलनगज-पथवारी मे नाप-तौल तथा बाँटो का उद्योग भी अपने छोटे रूप मे चल रहा है। लोहे के पाइप, सरिया तथा रेल की पटरियाँ आदि बनाने के कारखाने भी आगरा मे थोडा-बहुत कार्य कर रहे है।

आगरा नगर मे अब तक मुख्य बाजार किनारी बाजार और उसके आस-पास का क्षेत्र था किन्तु नगर के विस्तार के साथ अब राजामण्डी-लोहामण्डी मे भी बाजार बढ गया है। सदर मे भी अच्छा बाजार है। नौलक्खा, शाहजादी मण्डी तथा बालूगंज तथा प्रतापपुरा मे भी बाजार विकसित हो रहे है।

डाकुओ के उपद्रवो से आगरा जिले के ग्रामीण क्षेत्रो मे असुरक्षा और अशान्ति रहने से ग्रामीण लोग नगर मे आ-आ कर बसने लगे है। यहाँ के ग्रामीण-

जीवन की आर्थिक विषमताओं, यातायात की असुविधाओं तथा उद्योगों के अभावों ने अनेक लोगों में अपराधी-मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है। रूपा और मानसिंह जैसे दस्यु और पुतली जैसी दस्यु-रानी ने यहाँ के गाँवों को अनेक वर्षों तक आतंकित किया। अब अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षा और शांति है। आगरा गजेटियर में लिखा है—"पिछले वर्षों में वाह अपने उपद्रवों तथा न्यायहीनता के लिए कुख्यात रहा है।"[1]

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि "जनश्रुतियों के अनुसार पांडवों का आगरा प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।" परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से आगरा जिले के सम्बन्ध में मध्ययुग के पूर्व की हमें प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। जिले के कुछ भागों में बुद्ध कालीन सिक्कों के मिलने से इस प्रदेश का ऐतिहासिक महत्व तो जान पड़ता है परन्तु इस प्रसंग में उपलब्ध सामग्री प्रायः नहीं के बराबर है।

"आगरा' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में भी अन्तिम निर्णय नहीं लिया जा सका है। अगर, आगर, अगु या अग्र तथा अग् से आगरा का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। इस भू-भाग में बसने वाली अगरवाल जाति से भी इस शब्द का सम्बन्ध जुड़ता है। पर किसी प्रामाणिक सामग्री के अभाव में वास्तविक स्थिति का पता लगाना कठिन है।"[2]

किन्तु आगरा का विशेष और गम्भीर अध्ययन करने पर आगरा के विषय में अनेक तथ्य विदित हो सकते हैं। डा० चतुर्वेदी का मत किसी ठोस प्रमाण के अभाव में ही व्यक्त हुआ प्रतीत होता है। आगरा का इतिहास इतने अंधकार में नहीं। आगरा भारत देश का एक अति प्राचीन नगर एवं जिला है। इसका इतिहास भी बहुत प्राचीन है। आगरा महाभारत काल में भी एक समृद्ध नगर था। यह स्थान पौराणिक काल से ही अपना विशेष महत्व रखता आया है। पुरातत्व सम्बन्धी खोजों से पता लगता है कि आगरा ईसा से कई शताब्दियों पूर्व भी एक सम्पन्न नगर था। प्राचीन मूर्तियों और सिक्कों से भी आगरा की प्राचीनता विदित होती है। महाभारत काल में आगरा श्रीकृष्ण के मामा कंस का कारावास था। बड़े-बड़े अपराधी यहीं के बन्दी गृह में रखे जाते थे। यह स्थान प्राचीन सूरसेन-प्रदेश का एक भाग था। इसकी राजधानी मथुरा नगरी थी। बटेश्वर क्षेत्र का अध्ययन करने पर इस बात की पुष्टि होती है कि महाभारत काल में आगरा का उत्तरी पश्चिमी समस्त भाग सूरसेन-प्रदेश में ही था बटेश्वर का सौरीपुर नगर सूरसेन ने बसाया था और उसे अपनी राजधानी बना लिया था। बटेश्वर में श्रीकृष्ण, उनके पूर्वजों एवं वंशजों के अनेक ऐसे चिन्ह प्राप्त हुए हैं। जिनसे यहाँ की प्राचीनता प्रामाणिक होती है। बटेश्वर के प्राचीन

---

१. आगरा : ए गजेटियर, पृष्ठ २३०।

२ आगरा जिले की बोली (पृष्ठ ६)—डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी।

खण्डहरो मे 'पदमन खेड़ा' और औधखेड़ा नाम मिलते हैं। ये स्थान श्रीकृष्ण के पुत्र 'प्रद्युम्न' (पदमन) और पौत्र 'अनिरुद्ध' (औध) के नामो पर बसाये गये थे। इन स्थानो के नामो से भी यहाँ की प्राचीनता प्रकट होती है।

आगरा पूर्वकाल मे हिन्दुओ का एक प्रमुख नगर था। ग्यारहवी शताब्दी तक आगरा हिन्दुओ के अधीन रहा। १०२८ ईसा के वाद मुहम्मद गजनी ने इसे हिन्दू राजा जयपाल से जीतकर अपने अधीन कर लिया था। 'पोटा लीमीज' ने आगरा को 'आगेरा' लिखा है। उनके अनुसार आगरा एक हिन्दू राजा 'अग्रमेश' अथवा 'अग्रा-मेश्वर' की राजधानी था। वैसे आगरा व्रज प्रदेश के १२ वनो मे से एक है। यह पहिले 'अग्रवन' नाम से प्रसिद्ध था। 'अग्रवन' का ही अपभ्रन्श 'आगरा' बन गया। प्रसिद्ध इतिहासकार टालबाय ह्वीलर ने आगरा आर्यो का प्राचीन स्थान बताया है। आर्यो के आगमन के बाद बसाये गये पाँच स्थानो मे आगरे का भी उल्लेख है। इसका पूर्व नाम इस आधार पर 'आर्य-गृह' माना जा सकता है। 'आर्य-गृह' से 'आगरा' बन जाना स्वाभाविक ही है। पुरातत्ववेत्ता श्री ए० सी० एल० कार्लायल ने अपनी खोज के आधार पर जो रिपोर्ट (सन् १८७० ई०) मे प्रस्तुत की उसमे आगरा नगर एव जिले को ईसा से कई शताब्दी पूर्व का प्राचीन नगर सिद्ध किया है। उन्होने यह भी लिखा है कि मेवाड के गहलौत राजपूतो का आगरे पर अधिकार था जिसे उन्होने लगभग दो हजार चाँदी के सिक्को मे बेच दिया था। गहलौत राजपूतो का राज्य ७५० ई० पू० मेवाड मे था। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा० वुहर्रर ने लिखा है कि संवत १८६३ मे आगरे के किले के सामने जैनाचार्यो की मूर्तियाँ निकली थी और अमरसिह द्वारे के सामने हिन्दू राजाओ द्वारा निर्मित कुछ किलो के अवशेष भी मिले थे। ताजमहल से आगे यमुना के किनारे पर ही राजा भोज के महलो के खण्डहर मिलते है। आगरा निवासी प० जगन्नाथ जी ने सन् १८७४ मे आगरा मे पुरातत्व सोसाइटी की स्थापना के समय अपने एक लेख मे लिखा था कि आगरा पहिले भरतपुर स्थित बयाना राज्य के अन्तर्गत एक परगना था। उस समय बयाना मे राजा बैन की राजधानी थी। राजा बैन की मृत्यु के बाद उसके पुत्र जयराज ने आगरे को अपनी राजधानी बनाया। उसने अपने राज्य की सीमा भी बहुत विस्तृत करली। यह विस्तृत क्षेत्र 'यमप्रश्त' या 'इन्द्रप्रस्थ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान (दिल्ली) इन्द्रप्रस्थ उसी का एक भाग है।

आगरा जिले मे अब भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पुरातत्व वेत्ताओ का ध्यान अब तक नही गया है। इरादतनगर के पास खारी नदी के किनारे 'लुहेटा' नामक स्थान 'लोहागढ' था। इसका इतिहास आल्हा-ऊदल के समय का बताया जाता है। 'पिनाहट' नाम का कस्वा पूर्वकाल मे 'पाण्डव हट' के नाम से जाना जाता था। 'पोइया घाट' और राजा भोज के महलो की खोज भी अभी पूर्ण रूप से नही

की गयी है। एत्मादपुर के निकट 'टेहू' नामक ग्राम तथा ताजगज मुहल्ले के समीपवर्ती क्षेत्र भी अब तक उपेक्षित ही है।

कालान्तर मे आगरे का महत्व घटता गया। गुलाम, खिलजी और सैयद वशी वादशाहो के समय तक आगरा एक साधारण सा स्थान रह गया। सिकन्दर लोदी ने आगरे के विकास के लिए अवश्य कुछ कार्य किया। उसने आगरे को राजपूताने का मुख्य द्वार माना और ग्वालियर, वयाना तथा एटा के विद्रोहियो की सूचना लेने और उन्हे दवाने के लिए उसने आगरे को उपयुक्त स्थान मानकर अपनी राजधानी वनाया। आजकल जहाँ आगरे का किला है वहाँ वादलगढ नाम का किला था। इसे सिकन्दर लोदी ने तुडवा कर अपने रहने के के लिए वनवाया। वाद मे अकवर ने लोदी द्वारा वनवाये गये किले को तुडवा कर सन् १५६२ ई० मे लाल पत्थरो का विशाल किला वनवाया। सिकन्दर लोदी ने आगरे की उन्नति और विकास से लिए अनेक कार्य किये। उसने यहाँ 'वारादरी' नाम एक प्रासाद भी वनवाया।

१० मई १५२३ ई० को वावर का आगरा मे प्रवेश माना जाता है। उसने यमुना के उस पार एक मुगलिया नौआवादी की नीव डाली और उस स्थान का नाम 'कावुल' रखा। यहाँ उसने अनेक प्रकार के पेडो, पौधो और फलो के वाग लगवाये। वावर के वाद उसका पुत्र हुमायूँ मुगल सम्राट हुआ। वह सुख से राज्य नही कर सका। वह अपने जीवन मे युद्ध ही लडता रहा। हुमायूँ की अदालत आगरे मे ही थी। सभवत उसने भी आगरा मे कुछ इमारतें वनवायी थी किन्तु उनके खण्डहरो का भी अब पता नही चलता। आगरे का जीर्णोद्धार अकवर के समय (१५५६-१६०४ ई०) मे ही हुआ। अकवर ने आगरा आकर टूटी-फूटी इमारतो को ठीक कराया और इसका नाम 'अकवरावाद' रख दिया। अकवर ने इसे मुगल साम्राज्य की राजधानी भी घोपित कर दिया। आगरा से पूर्व अकवर ने फतहपुर सीकरी मे अपनी राजधानी रखी थी। वहाँ पंच-महल, रंग-महल, दीवाने खास, दीवाने आम, अकवर का घर, फजल और फैजी के निवास, जोधावाई का मन्दिर, वुलन्द दरवाजा और गुरु शेख सलीम चिश्ती की दरगाह आदि का निर्माण कराया। 'वुलन्द दरवाजा' गुजरात जीतने की प्रसन्नता मे वनवाया था। किवदन्ती है कि शेख सलीमचिश्ती ने एक वार अकवर से कहा 'राजा और रक दोनो एक स्थान पर नही रह सकते' और अकवर शीघ्र ही फतहपुर सीकरी छोड़कर आगरा आ गया। आगरे मे अकवर ने कई इमारतें वनवाई और नगर के आसपास कई सुन्दर वगीचे भी लगवाये। यमुना पर उसने एक महल वनवाया जिसका नाम उसने 'नगर चैन' या 'अमनावाद' रखा। उसने अपने लिए एक 'आराम वाग' भी वनवाया जो अव 'राम वाग' के नाम से प्रसिद्ध है।

अकबर एक उदार हृदय वाला सम्राट था। वह विद्या-प्रेमी का और विद्वानो का आदर करता था। उसके दरबार मे नवरत्न थे जिनके नाम है—तानसेन, बीरबल, फैजी, फजल, राजा मानसिंह, रहीम, कविवर भगवान दास, हकीम हुम्माम और मुल्ला दो प्याजा। अकबर ने सिकन्दरा की इमारत स्वयं बनवायी थी जिसे उसके पुत्र जहाँगीर ने पूरा किया। यही अकबर का मकबरा है।

जहाँगीर ने अकबर के बाद (१६०५—१६२७) मुगल-शासन सँभाला। वह बड़ा रसिक था। नूरजहाँ से उसका प्रेम इतिहास प्रसिद्ध है। इससे पूर्व अनारकली और जहाँगीर के प्रेम की भी एक किंवदन्ती है किन्तु इसका इतिहास मे कही उल्लेख नही। जहाँगीर ने सिकन्दरा के अतिरिक्त अन्य कोई इमारत नही बनवायी। उसकी प्रेमिका और पत्नी नूरजहाँ ने अवश्य अपने पिता का मकबरा यमुना पार बनवाया जो ऐतमाद-उद्दौला के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के समीप ही अफजल खाँ का मकबरा भी है जिसे 'चीनी का रोजा' कहते है।

जहाँगीर का पुत्र शाहजहाँ (१६२६—१६५८) अवश्य वास्तु-कला का सर्व-श्रेष्ठ प्रेमी कहा जा सकता है। उसने आगरे के किले मे कई सुन्दर इमारते बनवायी। दीवाने आम, दीवाने खास, मोती मस्जिद, नगीना मस्जिद, शीश महल, अगूरी बाग आदि का निर्माण शाहजहाँ ने ही कराया। विश्व-विख्यात वास्तु-कला का श्रेष्ठतम् रूप ताजमहल भी शाहजहाँ ने ही बनवाया।

शाहजहाँ के बाद औरगजेब ने राज्य किया (१६५६—१७०७) इसने आगरा के सांस्कृतिक जीवन मे कोई सहयोग नही दिया। इसके बाद आगरे के बुरे दिन आते गये। अंगरेजों ने आगरे पर अपना अधिकार करने के बाद इसके महत्व को समाप्त करने के बडे प्रयत्न किये। किन्तु आगरा अनेक आघातो को सहता हुआ भी जीवित रहा और धीरे-धीरे, चुप-चुप साहित्य, संस्कृति और कला का विकास करता रहा।

यमुना नदी के दाहिने तट पर बसा आगरा आज भी अपने अतीत-गौरव का स्मरण कर गर्व से मस्तक ऊँचा किये विश्व को आमन्त्रित करता रहता है। आगरा संसार भर मे प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक, सास्कृतिक और साहित्यिक रूप मे इसकी बडी ख्याति है। आगरे की प्राचीन सस्कृति, श्रेष्ठ साहित्य और भव्य-भवन उसकी प्रतिष्ठा के कारण हैं। यहाँ कुछ ऐसे दर्शनीय स्थान है जो ऐतिहासिक, सास्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखते है। इनमे निम्नलिखित प्रमुख हैं—

## कैलाश

आगरा मे ६ मील दूर उत्तर पश्चिम मे यमुना तट पर बसा कैलाश आगरे की प्राचीनता का प्रतीक है। यहाँ के मन्दिर बहुत प्राचीन है। प्रमुख मन्दिर मे शिव जी के दो पिण्ड (लिंग) स्थापित है। श्रावण मास मे यहाँ बहुत बडा मेला लगता है। हजारो नर-नारी एव बालक यहाँ मेले के दिन आते है, स्नान कर शिवजी के दर्शन-लाभ करते हैं। यहाँ के शिव-लिंग अति प्राचीन कहे जाते है। दशहरे पर भी यहाँ स्नान एव पूजन होता है। श्रावण के मेले मे लोग कैलाश मे स्नान-पूजन कर सिकन्दरे मे जाते है। यहाँ अनेक दूकाने लगती हैं जिनमे चाट-पकौडियाँ, मिठाइयाँ तथा अन्य वस्तुएँ बिकती है।

कैलाश के अतिरिक्त आगरे मे पृथ्वीनाथ, राजेश्वर तथा बल्केश्वर महादेव के मन्दिर भी है। ये भी बडे प्राचीन मन्दिर माने जाते है। नगर के मध्य मे मनकामेश्वर महादेव का मन्दिर भी बडा प्राचीन है। नित्य और विशेष रूप से प्रत्येक सोमवार को हजारो भक्त दर्शन कर घी के दीपक चढाते है तथा मन-वाछित फल प्राप्त करने की आशा करते है। कहा जाता है कि यह मन्दिर आगरा नगर बसने से भी पूर्व का है। जिस स्थान पर यह मन्दिर है वहाँ पहिले रावत ब्राह्मणों का गाँव था, जो अब रावत पाडा नाम से प्रसिद्ध बाजार बन गया है।

## रुनकुता

कैलाश से आगे आगरा से लगभग ७—८ मील दूर यमुना जी के किनारे रुनकुता ग्राम बसा हुआ है इसे रेणुका क्षेत्र भी कहते है। यह महर्षि जमदग्नि की तपोभूमि और भगवान परशुराम की जन्मभूमि माना जाता है। यहाँ परशुराम जी की माँ रेणुका देवी का मन्दिर है। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान माना जाता है। यही से यमुना पश्चिम-वाहिनी (पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली) हो गयी है। जनश्रुति है कि परशुराम जी के पिता ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर परशुराम को अपनी माँ तथा भाइयो के सिर काटने की आज्ञा दी थी। परशुराम जी ने पिता की आज्ञा का पालन किया। पिता ने प्रसन्न होकर परशुराम जी से वर माँगने को कहा। परशुराम जी ने अपनी माँ और भाइयो के जीवित होने का वर माँगा और वे जीवित हो गये। कहते है कि इसी घटना के कारण इस ग्राम का नाम पहिले 'रुण्ड-कटा' था जो आगे चलकर रुनकुता बन गया।

## सूर-वन एवं सूर-कुटी

यह पुण्य-स्थली कृष्ण-काव्य के अमर गायक भक्त-शिरोमणि सूरदास की साधना-भूमि है। रुनकुता गाँव से तनिक आगे यमुना पर गऊ घाट नामक स्थान है। इसी घाट के समीप सूर कुटी है। कहते है कि इसी गऊ घाट पर महाप्रभु वल्लभाचार्य

से सूर की भेंट हुई थी। यहाँ सूर विनय के पद गाया करते थे। वल्लभाचार्य जी ने कहा—"सूरा ह्वै कै ऐसौ रिरियात काये है?" और सूर की वाणी ही वदल गयी। सूर इसके वाद से लीला के पद गाने लगे थे। यहाँ से लगभग चार मील दूर सूरदास जी का जन्म-स्थान साही गाँव माना जाता है। यह स्थान आगरा से भरतपुर जाने वाले कच्चे मार्ग पर है। यह ७००—८०० वर्ष पुराना कहा जाता है।

सूरकुटी के आसपास घना वन है जिसे सूर-वन कहते हैं। यह वन उत्तर प्रदेश राज्य के वन विभाग द्वारा सरक्षित है। इसके निकट ही कीठम नाम की झील है। इस झील और बन से यह स्थान बडा रमणीक वन गया है। यहाँ के करील-कुन्ज अव भी भगवान कृष्ण की स्मृति दिला देते है, यहाँ की वायु मे अब भी सूर के पद ध्वनित से होते रहते है—'मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै'।

## कुण्ड वृथला

आगरा से २४ मील दूर राजस्थान की सीमा पर वृथला का कुण्ड है। यहाँ प्रतिवर्ष वैशाख के महीने मे तथा जन्माष्टमी पर बहुत बडे मेले लगते है। इस कुण्ड की बड़ी मान्यता है। कहा जाता है कि यहाँ हर तीसरे वर्ष एक कोढी अच्छा हो जाता है। जन-श्रुति है कि यह कुण्ड दैवी-शक्तियो द्वारा एक ही रात मे बना दिया गया था। कहते है कि इन्द्र ने इसी स्थान पर वृत्तासुर का वध किया था।

## जैन मन्दिर (रोशन मोहल्ला)

आगरा नगर मे जामा मस्जिद के निकट ही रोशन मोहल्ला है। यहाँ का जैन-मन्दिर अति प्राचीन है। कहा जाता है कि इस मन्दिर मे जो मूर्ति स्थापित है वह अकवर के काल मे किले की नीव खोदते समय मिली थी। इसके विषय मे मि० कार्लायल का कथन है कि आगरा-किले के स्थान पर यमुना-किनारे कोई वहुत प्राचीन जैन-मन्दिर रहा होगा। इस मन्दिर को गिरवा दिया गया होगा। इस जैन-मन्दिर मे स्थापित मूर्ति बडी भव्य एव आकर्षक है। यह गुप्त-शैली की प्रतीत होती है।

## बटेश्वर

आगरा नगर से ४४ मील तथा शिकोहावाद स्टेशन से १३ मील दूर आगरा जिले के पूर्वी भाग मे यमुना नदी के किनारे पर बटेश्वर वसा हुआ है। यह एक प्राचीन सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यह पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व रखता है। इसका प्राचीन नाम सूरसैन पुर, फिर सौरपुर या सौरीपुर और अन्त मे वटेश्वर हुआ। यह राजा सूरसेन की राजधानी था।

वटेश्वर मे श्रीकृष्ण और उनके पूर्वजों के अनेक चिन्ह मिलते है। यहाँ के प्राचीन खण्डहरो मे दो मोहल्लो नाम पदमन खेडा "प्रद्युम्न" के नाम पर और औध-खेडा "अनिरुद्ध" के नाम पर बसाये गये थे। प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र थे और अनिरुद्ध पौत्र थे।

श्री कृष्ण के पिता वसुदेव की जन्मभूमि यही स्थान माना जाता है। "भगवत पुराण" मे यहाँ का उल्लेख किया गया है कि वसुदेव की बरात इसी सूरसेनपुर से मथुरा को गयी थी। वटेश्वर के पास ही बलभद्र जी की जन्म भूमि है। जरासध ने बार-बार आक्रमण कर इस नगर को ध्वस्त किया फिर भी इसकी पावनता मे कोई अन्तर न आया। महाभारत काल मे जब बलभद्र ने कौरव या पान्डव किसी पक्ष के साथ न होकर एकान्त वास का निश्चय किया तो वे वटेश्वर ही आये थे।

वटेश्वर जैनियो का भी तीर्थस्थान है। वटेश्वर मे मनिया देव (जो आल्हा-ऊदल के इष्टदेव थे) और शौरीपुर मे जैन मन्दिर बहुत दर्शनीय है। मनियादेव मे स्थापत्य-कला का सौन्दर्य देखा जा सकता है। वटेश्वर जैनियो के २२ वे तीर्थङ्कर श्री नेमनाथ जी की जन्म-भूमि और अनसूया तथा शबरी की तपोभूमि है।

इस स्थान का धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्व है कि इसे छोटी काशी कहा जाता था। जिस प्रकार काशी मे गगाजी के किनारे विशाल घाट बने है उसी प्रकार वटेश्वर मे यमुना तट पर विशाल घाट बने हैं। यहाँ एक ही पंक्ति मे १०१ दर्शनीय मदिर बने हुए है। कनिघम के अनुसार यहाँ १०७ मन्दिर थे, जिनमे ६ मन्दिर प्रधान माने जाते थे। इनमे पन्चमुखी यती मन्दिर, मण्डल मन्दिर, गौरीशकर, वटेश्वरनाथ तथा बिहारी राज आदि प्रसिद्ध है।

यहाँ प्रतिवर्ष १५ दिन तक 'लख्खी मेला' लगता है जिसमें दूर-दूर से पशु बिकने आते है। इसमे हर जाति के लाखो पशु होते है इसीलिये इसे लख्खी मेला कहा जाता है। यह मेला कार्तिकी पूर्णिमा तक चलता है। यहाँ अनेक सास्कृतिक कार्यक्रमो के अतिरिक्त एक विराट कवि-सम्मेलन भी होता है जिसमे देशभर के प्रसिद्ध कवि भाग लेते है। यहाँ लोकगीतो और लोकनृत्यो के भी सुन्दर आयोजन होते हैं।

उजडे हुए वटेश्वर को फिर से बसाने वाले राजा महेन्द्रसिह थे। इन्होंने वटेश्वर को अपने भदावर राज्य की राजधानी बनाया। राजा महेन्द्र सिह शिव के उपासक थे। उन्होंने यहां शिव के दो विशाल मन्दिर बनवाये।

वटेश्वर मे यमुना स्नान तथा भगवान शंकर की अर्चना मनोकामना पूर्ण करने मे विख्यात है। इस प्राचीन तीर्थ मे श्री वटेश्वर नाथ की भक्ति से वाछित फल प्राप्ति

के सम्बन्ध मे यहाँ अनेक अद्भुत जनश्रुतियाँ विख्यात है। कहा जाता है कि राजा महेन्द्रसिंह ने अपनी पुत्री को पुत्र बताकर उसका विवाह गैनपुरी के राजा की कन्या से कर दिया था। महेन्द्रसिंह ने अपनी पुत्री का नाम बदनसिंह रखा था। बटेश्वर नाथ जी की उपासना से बदन सिंह को पुरुपत्व प्राप्त हुआ। यमुना की धारा को मोडने की भी एक जन श्रुति प्रचलित है। पहिले बटेश्वर मे यमुना पूर्व की ओर बहती थी। राजा बदन सिंह ने आगरे के मुगल दरबार मे कह दिया कि यमुना पश्चिम की ओर बहती है। अपनी बात को सही रखने के लिये राजा बदन सिंह ने तपस्या की जिससे यमुना ने अपनी गति बदल दी।

इसके विपरीत पढ़े-लिखे लोगो का कहना है कि राजा बदनसिंह ने लगभग १ कोस लम्बा बाँध बनवा कर यमुना के प्रवाह को पूरब से पश्चिम की ओर मोड दिया। यमुना का प्रवाह बदलने से बटेश्वर दो धाराओ के बीच मे आ गया है और अब ऐसा प्रतीत होता है मानो यमुना बटेश्वर की परिक्रमा करती हुई जा रही है।

भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी यह क्षेत्र महत्वपूर्ण है। यहाँ की प्रमुख भाषा शौरसैनी प्राकृत थी जिसका प्रसार यहाँ के विद्वानो, नागरिको तथा आस-पास के लोगो मे होता रहा है। यही प्राकृत भाषा आठवी-नवी शताब्दी मे विकसित होकर सौरसैनी अपभ्रंश के रूप मे यहाँ प्रचलित थी। यह सौरसैनी अपभ्रंश आगे चल कर ब्रजभाषा के रूप मे विकसित हुई। ब्रजभापा का साहित्यिक शुद्धरूप भदावर मे ही मिलता है। मथुरा, वृन्दावन आदि की बोली ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप मे नही बोली जाती। इससे पता चलता है कि साहित्यिक ब्रजभापा भदावर की ही बोलचाल की भाषा है।

बटेश्वर मे अनेक लोकगीत प्रचलित है। ये लोकगीत कृष्ण-लीला और शिव-भक्ति से सम्बन्धित तो है ही साथ ही यहाँ के जन-जीवन की भी झाँकी देते है। कृष्ण-भक्ति का एक गीत है—

मोए दरसन देओ बिहारी।<br>
मैं देखूँ बाट तिहारी॥<br>
जमना जल मे न्हाऊँ नित-नित,<br>
तो सै लग्यो रहै मेरौ चित,<br>
मेरे मोहन किसन मुरारी।<br>
मोए दरसन देओ बिहारी॥

शिव-स्तुति के गीतो मे से एक गीत है—

मोपै दया करौ महाराज वटेसर बाबा हो ।
मेरी बिगरी लेउ सुधार वटेसर बाबा हो ॥
चमकै सूरज राज भदावर
गामै गीत तिहारे उमावर
मेरे पूरन हो सब काज वटेसर बाबा हो ।
राजा बदन सिंग रखवारे
हम आये हैं द्वार तिहारे
मैं तो घन्टा देऊँ चढाय वटेसर बाबा हो ।

कभी-कभी रसिया की धुन भी गूँज उठती है इस क्षेत्र मे । लेकिन इस रसिया मे भी एक आध्यात्मिक भाव है—

सुरति तौ करिलै वा दिन की,
जा दिन होयगो दूसरो ब्याह ।
लगुन लिखी तैयार धरी है,
लगी मिलन की चाह ।
उठिकै अब सिंगार बनाय लै,
लैवे को आय रहो नाह ॥
सुरति तौ करि लै वा दिन की,
जा दिन होयगो दूसरो ब्याह ।
कौल वचन तू सब ही भूली,
भूली साँची राह ।
अपने पति को सग न कीयो,
गैरन ते जोडी है निगाह ॥ सुरति०.... .......
छह दस, बारह, बीस सहेली,
मन मे भर्यो है चाह ।
पति के सग तोय जानो परैगो,
तज दे ईर्ष्या डाह ॥ सुरति०............
मोह छोड पीयर को प्यारी,
पिय सो हेत लगाय ।
श्री रघुवीर भजन बिनु तेरी ।
बाढैगो कष्ट अथाय ॥ सुरति०.... ....

## दयालबाग

आगरा नगर से ३ मील दूर उत्तर की ओर दयालवाग बसा हुआ है। यह स्थान राधास्वामी मत के लोगो का है। इस मत के मुखिया एक गुरु होते हैं जिनमे अलौकिक शक्तियों का होना माना जाता है। यह स्थान धार्मिक होते हुये भी औद्योगिक है। अपने उपयोग की लगभग सभी वस्तुये ये स्वय उत्पन्न करते है। खाद्य पदार्थ तो यहाँ उत्पन्न किए ही जाते है, वस्त्र, जूते तथा यन्त्र भी बनाये जाते है।

राधास्वामी मत के लोगो मे एक बार ऐसा मतभेद उत्पन्न हो गया कि यहाँ दो दल बन गये। ये दल दयालबाग और स्वामीबाग मे बँट गये है। उनके सिद्धान्त तो मूलत. एक से ही है किन्तु इनके गुरु अलग-अलग बन गये है।

स्वामीबाग मे इनके एक गुरुजी की समाधि बनायी जा रही है। इसके दो सौ वर्षो मे पूर्ण करने की योजना है। अब तक ५० वर्ष से अधिक इसे बनते हुए हो गये है। यह समाधि सगमरमर की बन रही है। कुछ लोगो का अनुमान है कि यह समाधि ताजमहल से भी बढ कर होगी। अस्तु, यह तो निश्चय ही हे कि पूर्ण होने पर यह समाधि ससार मे वास्तु-कला की एक अद्वितीय प्रतीक होगी।

राधास्वामी मत के लोगो का नित्य सतसग होता है। इस सतसग मे अनेक भजन गाये जाते है। इन भजनो पर कबीर और नानक के भजनो का सर्वाधिक प्रभाव है। सत्गुरु का महत्व बताने वाले अनेक भजन कबीर और नानक के भजनो के ही परिवर्तित रूप है। कुछ भजन इस प्रकार है—

सत्गुरु ने मारग दिखलाया जाग जीव अविनासी।
सत्गुरु की कर सदा वन्दना कटे तुरत जम-फाँसी॥
गुरु की सेवा सच्ची सेवा, निस दिन लगन लगा ले,
ओ मन मूरख अपने अन्दर ज्ञान की जोत जगा ले,
क्या करता तू तीरथ-मेले, क्या जावै तू कासी।
सतगुरु ने मारग दिखलाया जाग जीव अविनासी॥

दूसरा भजन इस प्रकार है—

तेरे चरनो मे मेरे हे पिता मुझे ऐसा ही विश्वास हो।
तेरा ध्यान हो मुझे रात-दिन, मुझे सिर्फ तेरी ही आस हो॥
मेरे खोट जितने छमा करो, मेरे हाल पर तुम ध्यान दो,
मैं निपट अपढ हूँ, गँवार हूँ, मुझे निज चरनन मे ही मान दो,
मे सदा रहूँगा तेरी सरन, मेरे पाप पुज का नास हो:
तेरे चरनो मे मेरे हे पिता! मुझे ऐसा विश्वास हो॥

## महाराजा जसवन्त सिंह की छतरी

आगरे मे जहाँ मुगल काल की भव्य और विशाल इमारते है वहाँ यमुना किनारे पर ही एक राजपूती भवन भी है। इसे महाराज जसवन्तसिंह की छतरी कहते है। यह राजपूती भवन महाराजा जसवन्तसिंह का समाधि-स्थल है। महाराजा जसवन्तसिंह भाषा-भूषण के यशस्वी रचयिता माने जाते है। ये काबुल मे औरगजेब की ओर से गवर्नर नियुक्त किये गए थे। इनका देहान्त तो काबुल मे ही हुआ किन्तु दाह-सस्कार आगरा मे। कहते है उनके साथ उनकी नौ रानियाँ भी सती हो गयी थी।

बलकेश्वर महादेव के समीप ही राजा जसवन्तसिंह की छतरी है। महाराज जसवन्तसिंह के वशजो ने यह छतरी और यहाँ की समस्त जायदाद नाथद्वारे के मंदिर को दान करदी है। नाथद्वारे की ओर से प्रतिवर्ष क्वार के दशहरे पर नाथद्वारे के पुजारी आगरा आकर छतरी की पूजा करते है और चढावा लेते है। नाथद्वारे की ओर से सुहाग की वस्तुऐ—लहँगा, दुपट्टा, हरी चूडियाँ, बिन्दी, मेहदी, काजल आदि चढाई जाती है। सतियो का पवित्र स्थान होने के कारण आस-पास के गाँवो की नव-विवाहिता स्त्रियाँ भी सुहाग की वस्तुऐं चढा कर अपने चिर-सुहाग की कामना करती है।

क्वार के दशहरे पर स्त्रियाँ भजन गाती हुई पूजा करने आती है। ये भजन माता के, सती के, शिव-पार्वती या राधा-कृष्ण के होते है। सती का एक गीत इस प्रकार है —

हमे दीजो री अचल सुहाग सती तेरी बलिहारी।
तोये पूजे सुहागिन नार सती मगलकारी॥
लहँगा चढामे, फरिया चढामे, चुरियाँ चढामे हजार,
माथे की बेंदी, काजर, मेहदी सतियन के सोलह सिगार;
दीजो-दीजो सती वरदान हमे सब सुखकारी।
हमे दीजो री अचल सुहाग सती तेरी बलिहारी॥

# ३. लोकगीतों के प्राप्ति-स्थान और उनके समय तथा व्यक्तियों की सूचना

फ्रेंच भाषा का एक बड़ा सुन्दर प्राचीन लोकगीत है—

पा द़ रिवयेर सा पोसाँ
पा द़ मान्तान साँ वैलाँ
पा द़ प्राता साँ वायलत्
नि पाल माँ साँ मैंत्र्यस

इसका अनुवाद इस प्रकार हैं—

बिना मछलियाँ कोई नदिया कही नही हैं
बिना घाटियाँ कोई पर्वत कही नही है
बिन नीलोफर कोई भी मधुमास नही है
बिना प्रियतमा कोई प्रीतम कही नही है

अपनी ओर से इस लोकगीत मे यदि हम एक पंक्ति और जोड़ दे—

"बिना गीत के कोई जग मे गाँव नही है"

तो इस लोकगीत मे पूर्णता आ सकती है। वास्तव मे किसी भी गाँव मे चले जाइये, लोकगीत किसी-न-किसी रूप मे वहाँ अवश्य मिलेगे। बिना लोकगीतो के किसी गाँव की कल्पना नही की जा सकती।

लोकगीत प्रकृति के उन्मुक्त गान होते है। इनका निर्माण स्वाभाविक रूप मे ही हुआ है। लिपिबद्ध न होने से इनका सग्रह करना बडा कठिन हो जाता है। भारत का प्रत्येक गाँव लोकगीतो का भण्डार है। यहाँ के नगरो मे कुछ पुराने रीति-रिवाज मानने वाले परिवार अवश्य लोकगीतो को सुरक्षित रखे हुए है किन्तु इनके मूल रूप नगरो मे आकर वहुत कुछ वदल गये है। विखरे हुए लोकगीतो को एकत्र करने के लिए सग्रही को यह जान लेना आवश्यक है कि कौन सी सामग्री कहाँ से प्राप्त हो सकती है। कुछ प्रथाये केवल पुरुष मानते है और कुछ स्त्रियाँ। कुछ रीतियाँ विशिष्ट व्यवसाय अथवा कार्य करने वालो के ही यहाँ प्रचलित है। उच्च जातियो मे सामाजिक प्रथाऐ, व्रत, उत्सव और रूढियो को सुरक्षित पाया जा सकता है। किन्तु यदि

इन उच्च जातियों के लोगो पर आधुनिक शिक्षा और सभ्यता का प्रभाव पड गया है तो इनके जीवन का ढग ही बदल गया है। इस दृष्टि मे तो पुरानी रूढियो, परम्पराओ और मान्यताओ को ग्रामीणो, निर्धनो, नीच जातियो और वृद्ध-वृद्धाओ मे ही देखा जा सकता है।

सोफिया बर्न का कथन है कि "प्रणय गीतो, टोटको, शकुनो तथा भूत-प्रेतो के विषय मे तो अधिकृत रूप मे युवतियाँ ही बता सकती है। शिशु-गीत (पालना-गीत) लोक-कथा, जन्म, मृत्यु, और रोगो की जानकारी वृद्धाओ को होती है। चिडियो और पशुओ के विषय मे शिकारी से बाते करनी चाहिये, वृक्षो के विषय मे किसी लकडहारे से और पाक-विद्या तथा कपडे धोने के विषय मे किसी गृहिणी से बाते करनी चाहिये।"[1]

इन उपर्युक्त विशेष तथ्यो को ध्यान मे रखकर ही मैंने आगरा जिले के लोक-गीतो का सग्रह आरम्भ किया। सर्व प्रथम मैंने आगरा गजेटियर पढा। उसके अध्ययन मे आगरा की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सास्कृतिक आदि स्थितियो का परिचय मिला। यहाँ वर्ष भर लगने वाले मेलो और पर्वों की भी जानकारी प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशित नियोजित पुस्तकमाला—५२ के आधार पर आगरा जिले की सक्षिप्त रूप-रेखा भी समझी। आगरा जिला बोर्ड के सेक्रेटरी प० निहाल सिह शर्मा और अध्यक्ष ठा० उल्फत सिह 'निर्भय' से आगरा जिले की सभी तहसीलो का सक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। तत्कालीन जिला नियोजन अधिकारी चौधरी शकरसिह और श्री के० एन० घूमिया (वर्तमान हरिजन कल्याण निदेशक, उ० प्र०), राष्ट्रीय प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र के प्रधानाचार्य श्री सुमेरसिह भदौरिया तथा आगरा क्षेत्र के उप शिक्षा-सचालक श्री देवीदीन त्रिवेदी के साथ मुझे आगरा जिले के अधिकाश गाँवो मे जाने, ठहरने और रहने के अवसर मिले। भारत सेवक समाज का क्षेत्रीय मन्त्री होने के नाते मैं जिले के विभिन्न गाँवो मे ग्रामीण युवक शिविरो, ग्रामीण महिला शिविरो, छात्र-छात्रा शिविरो तथा अध्यापक-अध्यापिका शिविरो का आयोजन कर सका। ये शिविर जिले के अनेक प्रमुख खण्ड विकास क्षेत्रो (ब्लाक्स) मे लगाए गये। इनमे बिचपुरी, खेरागढ, सैंया, जगनेर, फतिहाबाद, बाह, ऐतमादपुर, पचोखरा, सन्दौली, फिरोजाबाद और फतहपुर सीकरी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये शिविर १५ दिन या २१ दिन के होते थे। इनमे नित्य सायकाल सास्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत लोकगीत और भजन हुआ करते थे। इन आयोजनो मे मुझे अनेक लोकगीतो की प्राप्ति हुई। विकास मेलो मे गाँवो की टोलिया लोकगीतो की प्रतियोगिताओ मे

१. हैण्डबुक ऑफ फोकलोर पृष्ठ ८—सोफिया बर्न।

भाग लेने आती है। इनकी प्रतियोगिताओ से भी मुझे पर्याप्त लाभ हुआ। बटेश्वर का विशाल पशु-मेला तो आगरा जिले का सबसे बड़ा मेला है। यहाँ हजारो की सख्या मे ग्रामीण आते हैं। यहाँ नित्य नवीन खेल-तमाशो तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो का भी आयोजन होता है। स्कूलो के बच्चो की अन्त्याक्षरी-प्रतियोगिताये, ग्रामीणो के लोकगीत और कवि-सम्मेलन आदि यहाँ के निर्धारित कार्यक्रम है। इस मेले मे मुझे अनेक लोकगीत सुनने को मिले। आगरा जिले की चारो दिशाओं के गाँवो के रहन-सहन, जाति-विरादरी, रीति-रिवाज और तीज-त्यौहार आदि का ज्ञान प्राप्त करने की ऐसी सुविधा से मुझे लोकगीतो के सग्रह के तो अवसर मिले ही साथ ही वहाँ की पारिवारिक तथा घरेलू समस्याओ से भी परिचय प्राप्त हुआ। ग्रामीणो के साथ रहने, उनमे घुलने-मिलने और उठने-बैठने से मुझे महिलाओ के गीत भी सुनने के अवसर मिले। गाँवो की बरातो मे लड़की वाले तथा लडके वाले के यहाँ जैसे गीत गाये जाते है उनका भी परिचय मिला। प्रस्तुत प्रबन्ध मे सस्कारो के कुछ छँटे हुए विशिष्ट गीत ही लिये है। यहाँ के अधिकाश गीत भद्दी गालियो और अश्लील कटाक्षो से युक्त सुनायी देते है। पुत्र-जन्म पर जच्चा को माध्यम बना कर जो अश्लीलता गीतो मे उँडेल दी जाती है उसे लिपि-बद्ध करना न तो आवश्यक है और न उचित। विवाहो के अवसरो पर भी गालियाँ बड़ी कुरुचिपूर्ण और असभ्यतायुक्त हो जाती है। कभी-कभी मन मे अत्यधिक ग्लानि और क्षोभ होने से भाग जाने को जी किया किन्तु अपने कार्य मे असफलता मिलने की आशका से सब कुछ सहन करना पडा। कही-कही लोक-गीतो के नाम पर अनर्गल प्रलाप ही मिला। कही आधुनिक चित्र-पट सगीत की धुनो पर तथाकथित लोकगीत सुनने को मिले। कही फिल्मो मे गाये जाने वाले लोक-धुनो के गीत मिले। इनमे अनेक गीतोकी पुनरावृत्ति ही होती थी। जिन एक से गीतो मे कुछ कडियाँ बदली हुई अथवा शब्द भिन्न-भिन्न मिले उन्हे मैंने लिख लिया। अधिकाश गीत मुझे बिचपुरी, अँगूठी, लडामदा, किरावली, सैया, खेरागढ, बाह, रुनकुता, कैलास, खाँडा, फतिहाबाद और चुल्हावली आदि गाँवो मे मिले है। इन गाँवों मे जिन-जिन लोगो ने मुझे लोकगीतो के सग्रह मे सहयोग दिया है उनमे सर्वश्री प्यारेलाल, लाखनसिह (अँगूठी), लाला रमेश चन्द (सैया), ब्रज किशोर (खेरागढ), श्री भगवान (किरावली), बुद्धासिह (बिहड़ का नगला, बाह), गिरीश चन्द (फतिहाबाद), रमेश बाबू (खाँडा), भगवान प्रसाद (चुल्हावली), शिव मन्दिर के पुजारी (कैलास), बनवारी लाल (रुनकता) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[1]

लोकगीतो के सग्रह के लिये डा० सत्येन्द्र का कथन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—"लोक-साहित्य के सग्रहकर्त्ता को लोकगीत से तो भेट बाद को होती है, पहले तो लोक-गायक से होती है। लोकगीतो के लिए लोकगायक तो एक पुस्तक की

---

१. अन्य नामो का उल्लेख इस प्रबन्ध के अन्य पृष्ठो पर भी किया गया है।

भाँति है, पर पुस्तक से वही कठिन। पुस्तक को हम जब चाहे पढ सकते है, पर लोकगायक से लोकगीत पाना बहुत कठिन कार्य है। पर गीत की दृष्टि से ही नही लोकवार्त्ता, नृविज्ञान और मानव-शास्त्र तथा समाज-विज्ञान की दृष्टि से भी लोकगायक का अपना महत्व है।[1]

उपर्युक्त कथन सत्य ही है। लोकगायको से लोकगीत प्राप्त करना सरल कार्य नही। सामूहिक रूप से गाये जाने वाले लोकगीतो को प्राप्त करना इतना कठिन नही किन्तु व्यक्तिगत रूप से गाने वालो से ये गीत प्राप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। इसके लिये वडे धैर्य और समय की आवश्यकता होती है। लोकगीत-गायक को 'मूड' मे लाना भी बहुत आवश्यक होता है। उसका यह मूड भी किसी विशेष स्थिति मे ही आता है। या तो वह किसी अन्य को गाते हुए सुने, या अकेला स्वय गुनगुनाये या किसी चुनौती के उत्तर मे गाने लगे। भिन्न-भिन्न लोकगायको से गीत गवाने के भिन्न-भिन्न ढग होते है जो स्थिति देखकर ही काम मे लाने चाहिए। लोकगायक भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ तो सामान्य गायक होते है अव्यवसायी और व्यवसायी की श्रेणियो मे रखे जा सकते हैं। भगत, नौटकी, ख्याल, रसिया, होली, जिकढी-भजन, तथा टेसू-झाँझी के गायक अव्यवसायी होते है। व्यवसायी गायको मे ढुलैया, अल्हैत, भोपा, सरमन, हिजडे, नर, कठपुतली वाले, वेडिन, रासधारी आदि आते है। कुछ गायक आनुष्ठानिक गीतो को गाने वाले भी होते है। ये भी व्यवसायिक और अव्यवसायिक होते है। व्यवसायिक गायको मे वायगी, जोगी और भगत आदि होते है। अव्यवसायिक गायको मे सस्कारो-वृतो आदि मे गाने वाली महिलाये होती है। फिर स्त्री वर्ग के गीत अलग होते है और पुरुष वर्ग के अलग। व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से गाने वाले भी होते है। सामूहिक रूप से गाने वालो की ही सख्या अधिक होती है। इनके गाये जाने वाले लोकगीतो मे रसिया, ख्याल, जिकड़ी के भजन, ढाँक के गीत, देवी के गीत, भगत, नौटकी आदि प्रमुख है। कुछ लोक-गायक ऐसे भी होते हैं जो नृत्यो और नाटको मे सहयोग देने के लिए भी गाते है। ऐसे गीत होली, विवाह (खोइये) रास आदि में भी होते है जो नाटको की श्रेणी मे आते है। वेटिनियो, हिजडो और नटो के नृत्यो मे भी कुछ लोकगीत गाये जाते है।

लोक-गायक अपने गीतो को अपनी अलग-अलग तर्जों मे गाते है। इनके वाद्य भी अलग-अलग होते है। भगत के गायक नगाडे, ढोलक, तवले, मजीरे, सारगी, वेला और हारमोनियम का प्रयोग करते हैं। ख्याल-गायक 'ढफ' का प्रयोग करते है। रसिया होली के गायक नगाडे, ढोलक, तवला, मजीरे, सारंगी, वेला और हारमोनियम का प्रयोग करते है। जिकडी भजन के गायक नगाडा, ढोलक, मजीरा, वेला, हारमोनियम

---

१ लोकगायक (लेखक-डा० सत्येन्द्र)—भारतीय साहित्य (भटनागर अभिनन्दन)

और खडताल का प्रयोग करते है। ढुलैया ढोलक-मजीरा वजाते है। अल्हैत ढोलक पर गाते है। भोपा मशकवीन, रावणहत्था (चिकाडा) या तम्बूरे को प्रयोग मे लाता है। हिजडे ढोलक-मजीरे पर नाचते-गाते है। नट, कठपुतली के खेल मे ढोलक बजती है। बेडिने ढोलक, मजीरे और हारमोनियम बजानी है या वजवाती है। रास-धारी नगाडा, ढोलक, तवला, मजीरा, सारगी, बेला, हारमोनियम उपयोग मे लाते है। नाथ जोगी सारगी और डमरू वजाकर गाते है। देवी के भगत सारगी, डमरू और बेला वजाते है। सँपेरे वीन या डमरू या दोनो वजाते है। घरेलू स्त्रियाँ ढोलक मजीरे और हारमोनियम पर गाती है। तथा जोगी केवल इकतारा वजाता है।

ऐसे विभिन्न प्रकार के गायको को आगरा जिले मे खोज निकालना सरल कार्य नही। इसके लिए तो पण्डित राम नरेश त्रिपाठी का रूप धारण करना पडेगा।[1] फिर भी जहाँ तक मुझसे सम्भव हो सका है मैने लगभग सभी प्रकार के लोकगायको के सम्पर्क मे आने का प्रयास किया है। उनसे समग्र पर जो लोकगीत मुझे मिले हैं उनमे फिर छँटनी करनी पडी और कुछ प्रतिनिधि गीतो को प्रस्तुत प्रबन्ध के लिये चुन लिया।

इन लोकगीतो के समय के विषय मे पूर्व पृष्ठो पर विचार किया जा चुका है।[2] यदि परिश्रम कर इन लोकगीतो के समय और उनके विकास का इतिहास खोजा जाये तो भी पूर्ण सफलता नही मिल सकती। लोकगीत मौखिक ही रहे है अत' इनका काल-निर्णय करना बडा कठिन कार्य है। फिर भी गीतो के स्वभाव, उनके शब्दो और उनमे छिपे ऐतिहासिक तत्वो का सूक्ष्म निरीक्षण कर काल-निर्णय का कार्य कुछ सीमा तक पूर्ण हो सकता है।

लोकगीतो को अतीत की प्रतिध्वनि कहा जा सकता है। ये लोकगीत "जीवित अतीत" तो है ही किन्तु वर्तमान मे भी इनके महत्वपूर्ण कार्य और सामाजिक देन को स्वीकार करना पडेगा। लोकगीत वर्ग सघर्ष के अस्त्र रहे है। इनसे कलात्मक गीतो को भी प्रेरणा मिली है। इन गीतो को इसीलिए केवल किसानो के गीत या 'ग्राम्य-गीत'

---

१. मै विरही हूँ गीत का धर मजनूँ का भेस।
झोली डाले गीत की घूम रहा हूँ देस॥
अन्न-वस्त्र लेता नहीं, नहीं विभव की चाह।
मुझे चाहिये गीत वह, जिसमें हो कुछ आह॥

—राम नरेश त्रिपाठी

२. देखिये चतुर्थ अध्याय का खण्ड—१

नहीं कहा जा सकता ये गीत तो सम्पूर्ण लोक-जीवन के गीत हैं, अतीत से वर्तमान तक अजस्र रूप मे बहती हुई जीवन-धारायें है इनमे युग-युग के चित्र बनते, सुधरते, उभरते और निखरते चले आ रहे हैं।

आगरा जिले के लोकगीतो के समय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे पहिले आगरे की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना पडेगा जन-श्रुतियो के आधार पर आगरे का सम्बन्ध पान्डवो से रहा माना जाता है किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर आगरा का अस्तित्व मध्य युग से ही विदित होता है। आगरा के सम्बन्ध मे प्राचीन-तम उल्लेख फारसी कवि सलमान (मृ० ११३१ ई०) का है।[1] मुगल साम्राज्य से पूर्व भी मुसलमानो तथा राजपूतो के अनेक संघर्षो का केन्द्र आगरा रहा है। १४ वी शताब्दी के अन्त मे भदौरियो ने वाह से मेवो को खदेड दिया था और हत कान्त (वाह तथा ग्वालियर की सीमा पर) मे अपना शासन स्थापित कर लिया था। अकवर के ही समय मे यूरोपियन लोगो का आना आरम्भ हो गया था। पोर्चुगीज़ मिशनरी सबसे पहले आये। मार्च १५७८ ई० मे जूलियन पेरियरा के आगरा (फतहपुर सीकरी मे आने का पता चलता है।[2] बाद मे अंग्रेजो के शासन-काल मे भी आगरा का विशेष महत्व रहा। १८३६ ई० से १८५८ ई० तक आगरा उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त की राजधानी रहा।

उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि के आधार पर आगरा के लोकगीतो के समय का भी अनुमान लगाया जा सकता है। आगरा के लोकगीतों की भाषा ब्रजभाषा है। ब्रज-भाषा का प्राचीन रूप कुछ विद्वानो ने 'ब्रजबूलि' कुछ ने 'ग्वालियरी' और कुछ ने 'मारना' माना है। डा० सुकुमार सेन ने 'ब्रजबूलि' की प्राचीनता स्थिर करते हुए उसकी साहित्य-रचना १४९३ ई० मे १५१९ ई० तक मानी है तथा उसका प्रथम कवि यशोराज खाँ माना है।[3]

श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने कुछ विशेष प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मध्य देश की मध्यकालीन भाषा का नाम 'ग्वालियरी' था।[4] ग्वालियरी भाषा को ही उन्होने ब्रजभाषा के रूप मे परिवर्तित हुई माना है। १७ वी शताब्दी से पूर्व 'ब्रज-भाषा' शब्द का प्रयोग नही के बराबर था। मिर्जा खाँ

---

१. द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स—
एस० एम० इलियट, ४, ५२२
२. जर्नल ऑफ द बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, ६५, ३८–११२
३. ए हिस्ट्री ऑफ ब्रजबूलि लिट्रेचर, २—डा० सुकुमार सेन
४. मध्य देशीय भाषा (ग्वालियरी)—श्री हरिहर निवास द्विवेदी।

(१६७६ ई०) ने अपनी पुस्तक 'तुफ़तुल हिंद' मे जिस भाषा का व्याकरण दिया है उसे उन्होने ब्रज-प्रदेश की भाषा कहा है। अस्तु हमे आगरा की बोलियो और भाषा के विषय मे इतना तो विदित हो ही जाता है कि यहाँ आरम्भ से ही वह भाषा बोली जाती थी जो आज ब्रजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित है। इस ब्रजभाषा मे समय-समय पर कुछ-कुछ परिवर्तन होते रहे है और आज नगर मे इसने खड़ी बोली का रूप ले लिया है।

आगरा के लोकगीतो का समय १२ वी शताब्दी से पूर्व का नही माना जा सकता। यहाँ के लोकगीतो मे सर्व प्रथम तो पौराणिक देवी-देवताओ और अवतारो के उल्लेख मिलते है बाद मे प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण आते हैं। राम-सीता, शिव-पार्वती और कृष्ण-राधा के गीत आगरा की धार्मिक और पौराणिक भावना के प्रतीक हैं। **'सीता ठाड़ी अजुध्या के बीच, लव-कुश बन में भये,' 'जसोदा जायौ ललना मैं जमुना पै सुन आई'** और **'मै जमुना कैसे जाऊँ कन्हैया मोरा रोवै'** जैसे गीत इसी धार्मिक भावना के प्रतिरूप है। यवनो के आक्रमण और उनके शासन ने जब लोक-जीवन पर प्रभाव डाला तो उसकी झलक लोकगीतो मे भी आने लगी। 'चन्द्रावली का भूला' आल्हा-ऊदल के समय की घटनाओ को लोकगीतो के माध्यम मे प्रकट करता है। 'चँदना की मल्हार' मे सामाजिक जीवन की कुत्सित मनोवृत्तियों का चित्रण मिलता है। 'सस्कारो' के लोकगीतो मे यहाँ के रीति-रिवाजो, यहाँ की परम्पराओ और यहाँ की सामाजिक मान्यताओ के चित्र मिलते हैं। मेलो, पर्वो और त्यौहारो के लोकगीत यहाँ की सास्कृतिक परम्पराओ को प्रकट करते है। अग्रेजी शासन काल, स्वतत्रता-सग्राम, स्वतत्रता-प्राप्ति, राष्ट्रीय-विकास, सुविधाओ-असुविधाओ के चित्र भी यहाँ के लोकगीतो मे देखने को मिलते है। लोकगीत आगरा के सास्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और पारिवारिक इतिहास को बताते चले आये हैं। इनमे आगरा हर रूप मे बोलता सुनाई देता है।

# परिशिष्ट २

## संदर्भ-पुस्तकों की सूची

हिन्दी :


१. आर्चर, डब्ल्यू० जे० और संकटाप्रसाद : भोजपुरी ग्राम गीत।
२. कन्हैयालाल सहल : राजस्थानी कहावतें।
३. कैलाशचन्द भाटिया : ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन
४. डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्राम गीत (भाग २)।
५. डा० कृष्ण देव उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका।
६. कृष्णानन्द गुप्त : ईसुरी की फागें (भाग १), लोकवार्ता।
७. डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन।
८. किशोरीदास वाजपेयी : हिन्दी शब्दानुशासन।
९. खंग बहादुर मानन : सुधाबूँदा, बाँकीपुर।
१०. खेताराम माली : मारवाड़ी लोकगीत।
११. जगदीश सिंह गहलोत : मारवाड़ी ग्रामगीत।
१२. ताराचन्द ओझा : मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह।
१३. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह : भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस।
१४. देवेन्द्र सत्यार्थी : धरती गाती है।
१५. देवेन्द्र सत्यार्थी : धीरे बहो गंगा।
१६. देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात।
१७. देवेन्द्र सत्यार्थी : बाजत आवे ढोल।
१८. देवेन्द्र सत्यार्थी : क्या गोरी क्या साँवरी।
१९. देवेन्द्र सत्यार्थी : दीवा बले सारी रात।
२०. देवेन्द्र सत्यार्थी : मैं हूँ खानाबदोश।
२१. देवेन्द्र सत्यार्थी : गाये जा हिन्दुस्तान।
२२. देवेन्द्र सत्यार्थी : चट्टान से पूछलो।
२३. धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा।
२४. नरोत्तम स्वामी : राजस्थान रा दूहा।
२५. नन्दलाल चट्टा : काश्मीर की लोक-कथाएँ।
२६. निहालचन्द वर्मा : मारवाड़ी गीत।

२७. पृथ्वीपाल चतुर्वेदी और हीरालाल सन्त : हमारे लोकगीत ।
२८. मदनलाल वैद्य . मारवाड़ी लोकगीत ।
२९. मन्मथराय : हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव ।
३०. मेनारिया : राजस्थानी भीलो की कहावते ।
३१. रतनलाल मेहता . मालवी कहावते ।
३२ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत ।
३३. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत) ।
३४. रामनरेश त्रिपाठी . हमारा ग्राम-साहित्य ।
३५. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम-साहित्य, भाग १ ।
३६. रामनरेश त्रिपाठी · ग्राम-साहित्य, भाग २ ।
३७. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम-साहित्य, भाग ३ ।
३८. रामनरेश त्रिपाठी : सोहर।
३९. रामनरेश त्रिपाठी : मारवाड़ के मनोहर गीत ।
४०. रामनरेश त्रिपाठी . अवधी लोकगीत ।
४१ रामनारायण उपाध्याय : निमाड़ी लोकगीत ।
४२. रामस्वरूप चतुर्वेदी : आगरा जिले की बोली ।
४३. रामसिंह पारीक, नरोत्तम स्वामी : ढोलामारू रा देहा (काशी नागरी प्रचारिणी सभा । )
४४. राहुल सांस्कृत्यायन : आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत।
४५. राहुल सांस्कृत्यायन . किन्नर देश मे ।
४६. राहुल साँस्कृत्यायन : हिमालय परिचय ।
४७. रामकिशोरी श्रीवास्तव : हिन्दी लोकगीत ।
४८. लखनप्रताप 'उरगेश' · बघेली लोकगीत ।
४९. ल० जोशी : मेवाड की कहावते ।
५०. वासुदेवशरण अग्रवाल . पृथिवी पुत्र ।
५१. वासुदेवशरण अग्रवाल : माता भूमि ।
५२. विद्यावती 'कोकिल' : सोहाग गीत ।
५३. शिवसहाय चतुर्वेदी : बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ ।
५४. शिवसहाय चतुर्वेदी · पाषाण नगरी ।
५५. शिवसहाय चतुर्वेदी : गौने की विदा ।
५६. श्यामाचरण दुवे : छत्तीसगढी लोकगीतो का परिचय ।
५७. श्याम परमार : मालवी लोकगीत ।
५८. श्याम परमार : मालवी और उसका साहित्य ।
५९. श्याम परमार : मालवा की लोक कथाऐ ।

६० श्याम परमार . भारतीय लोक-साहित्य ।
६१. सन्तराम बी० ए० : पजाबी गीत ।
६२ सत्येन्द्र : व्रज की लोक-कहानियाँ ।
६३. सत्येन्द्र व्रजलोक-साहित्य का अध्ययन ।
६४. सत्येन्द्र : व्रज-लोक-संस्कृति ।
६५. सुकुमार पगारे : सन्त सिंगा जी ।
६६ सूर्यकरण पारीक एव गणपति स्वामी . राजस्थानी लोकगीत (प्रयाग) ।
६७ सूर्यकरण पारीक एवं गणपति स्वामी . राजस्थान के लोकगीत (भाग १-२) कलकत्ता ।
६८ सूर्यकरण पारीक एव गणपति स्वामी राजस्थान के ग्रामगीत (भाग १) दिल्ली ।
६९ सूर्यकरण पारीक एव गणपति स्वामी : राजस्थानी वाता, कलकत्ता ।
७०. हरप्रसाद शर्मा बुन्देलखण्डी लोकगीत ।
७१ हरिहर निवास द्विवेदी : मध्यदेशीय भाषा ।
७२ हजारीप्रसाद द्विवेदी ' हिन्दी साहित्य का आदिकाल ।
७३. हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य की भूमिका ।
७४ हजारी प्रसाद द्विवेदी . कबीर ।
७५ ज्ञानचन्द्र जैन : विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत ।
७६ ज्ञानचन्द्र जैन . विन्ध्यप्रदेश की लोक-कथाएं ।

**मारवाड़ी :**

१. खेताराम माली : मारवाडी गीत सग्रह ।
२ मदनलाल वैश्य मारवाड़ी गीतमाला ।
३ निहालचन्द वर्मा : मारवाडी गीत ।
४. ताराचन्द ओझा . मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह ।
५. जगदीशसिंह गहलौत : मारवाड़ के लोक-गीत ।

**राजस्थानी :**

१. नरोत्तम स्वामी ' राजस्थान री दूहा ।
२. सूर्यकरण पारीक, ठाकुर रामसिंह ' राजस्थान के लोक-गीत ।
३. नरोतम स्वामी : राजस्थान के ग्राम-गीत ।

**भोजपुरी :**

१ कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्राम-गीत ।

२. दुर्गाशकर प्रसाद सिंह . भोजपुरी लोक-गीतो मे करुण-रस ।
३. आर्चर भोजपुरी ग्राम-गीत ।
४. श्यामचरण दुबे : छत्तीस गढी—छत्तीस गढी लोक-गीत ।
५. रामनारायण उपाध्याय निमाड़ी—निमाडी ग्राम-गीत ।
६. कृष्णानन्द गुप्त बुन्देलखण्डी-इसुरी की फागे ।
७. श्याम परमार . मालवी—मालवी लोक-गीत ।
८. राहुल : कौरवी-आदि हिन्दी की कहानियां और गीत ।

## हिन्दीतर प्रादेशिक भाषाओं में लोक-साहित्य की विशिष्ट पुस्तकें

### गुजराती :

१. स० झवेरचन्द मेघाणी ' रढियाली रात (३ भाग) ।
२ स० झवेरचन्द मेघाणी . चुन्दडी (२ भाग) ।
३. स० झवेरचन्द मेघाणी लोक-साहित्य ।
४. रणजीतराय मेहता लोक-गीत ।
५. निर्मदाशकर लालशकर ' नागर स्त्रियो गावता गीत ।

### बंगला

१. योगीन्द्रनाथ सरकार खूकूमणीर छडा ।
२. अवनीद्र नाथ ठाकुर बगला व्रत (१९१९) ।
३. महम्मद मनसूरुद्दीन हारामणी ।
४ जासीमुद्दीन वगलार वाउल ।

### पंजाबी :

१. प० रामशरणदास . पजाव दे गीत ।
२ देवेन्द्र सत्यार्थी ' गिद्धा ।
३. अमृता प्रीतम पंजाव दी आवाज ।
४. किसनचन्द मोगा : असली रग-बिरगे गीत ।
५ दीन मोहोम्मद कुश्ता ' पजाब दे हीरे ।
६. हरभजन गियानी पजाब दे गीत ।

मराठी .

१. साने गुरुजी · स्त्री जीवन ।
२. वामण चोरघड़े : साहित्याचें मूलघन ।
३. कमला वाई देश पाडे . अपौरुषेय वाड-मय (अर्थात् स्त्री गीतें)
४. गोरे . वऱ्हाड़ी लोक गीते ।
५ वि० वा० जोशी लोकगीतें व लोककथा ।
६ मालती दाण्डेकर : लोक साहित्या चे लेणें ।
७ का० न० केलकर . ऐतिहासिक पोवाडे ।
८. अनुसूया भागवत · जनपद गीते ।
९. नारायण मोरेश्वर खरे · लोक सगीत ।

अग्रेजी .

१. आर्चर, डब्लू० जी० . द ब्लू ग्रोब्ज ।
२ आवालोन, ए० . सर्पेण्ट पावर १९१९ ।
३. इलियट, एच० एम० मेमोयर्स आन द हिस्ट्री, फ़ोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आव द रेसस आव द नार्थ-वैस्ट प्राविन्मज आव इण्डिया ।
४. इन्थौवेन, आर० ई० फ़ोकलोर आव वाम्वे ।
५ इन्थोवेन, आर० ई० . फोकलोर नोट्स, ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आव वाम्वे ।
६ एवट, जे० : ए स्टडी आव इण्डियन रियूअल्स एण्ड विलीफ, १९३३ ।
७. एलविन एण्ड हिवाले गौड फोक सोग्ज ।
८. एलविन एण्ड हिवाले . फोक सोग्ज़ आव छत्तीसगढ, भाग ४ ।
९ एलविन हिवाले · स्पेसीमेन्स आव औरल लिटरेचर आव मिडिल इण्डिया, भाग १, २, ५ ।
१०. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ।
११. ऐयाप्पन० ए० : एन्थ्रापालाजी आव द नयादीस, मद्रास १९३७ ।
१२ काक्स, एम० आर० . इन्ट्रोडक्शन टू फोकलोर ।
१३ किटरिज, जी० एल० . इंगलिश एण्ड स्काटिश वैलड्स ।
१४. कुंजविहारीदास · ए स्टडी आव ओरीसन फ़ोकलोर ।
१५. क्रुक, डब्ल्यू ० एन इन्ट्रोडक्शन टु पापुलर फ़ोकलोर आफ़ नार्दर्न इण्डिया ।
१६. काक्स, एम० आर० इन्ट्रोडक्शन टु फोकलोर ।
१७. गोमे, जी० एल० : एन्थालोजी इन फोकलोर, १८९९ ।
१८. गोमे, जी० एल० हैण्ड वुक आव फोकलोर, १८९० ।
१९ गोवर, सी० ई० फोक सोंग्स आव सदर्न इण्डिया ।
२० ग्रियर्सन, जी० ए० विहारी फ़ोक सोंग्स ।

२१. ग्रियर्सन, जी० ए० लिंग्युस्टिक सर्वे आफ इण्डिया।
२२. चटर्जी, एन० यात्रा।
२३ टाड . अनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान।
२४ डासन, जे० ए क्लासिकल डिक्शनरी आव हिन्दू माइथोलोजी
एन्ड रिलीजन (चतुर्थ सस्करण, १६०३)।
२५ डाल्टन . डिस्क्रिप्टिव स्थालाजी आव बंगाल।
२६ डायर, थिसेण्टन : फोकलोर प्लान्ट्स।
२७. डिक्शनरी आव फोकलोर, भाग २, १६५२।
२८ तोरु दत्त . एन्शिएन्ट बैलड्स एण्ड लीजैण्ड्स आव हिन्दुस्तान, १८८२।
२९ दिनेशचन्द्र ईस्ट बंगाल बैलड्स।
३०. नरेश शास्त्री : फोकलोर इन सदर्न इण्डिया।
३१. फ्रेजर, जे० जी० . द गोल्डन बो, दस भाग, तीसरा सस्करण (लन्दन १६२२)।
३२ फ्रेजर, जे० जी० . फोकलोर इन द ओल्ड टैस्टामेन्ट, भाग ३ (लन्दन १६१८)।
३३. फ्रेयर, मिस · ओल्ड डेक्कन डेज।
३४ विनोय कुमार सरकार . फोक एलीमेण्ट्स इन हिन्दू कल्चर।
३५ बर्न, सी० एस० · द हैन्ड बुक आव फ़ोकलोर, १६१४।
३६. मुकर्जी, आर० सी० इण्डियन फोकलोर।
३७ रजेटी, डी० जी० : बैलेड्स आव फेयर लेडीज।
३८ लालबिहारी दे : फोक सौंग्स आव बंगाल।
३९. लुआर्ड, सी० ई० : एथनोलोजिकल सर्वे आव सेण्ट्रल इण्डिया एजेंसी,
लखनऊ, १६०६।
४० लाग वर्थ, डी० एम० : पौपुलर पोइट्री आव द बलोचीज
(द फोकलोर सोसाइटी, लन्दन १६०७)।
४१ वस्क फोक सोंग्स आव इटेली।
४२. वेंकट स्वामी, एम० एन० : फोक टेल्स आव सेन्ट्रल प्राविन्सिज
इन द इण्डियन एण्टीक्वेरीज २४, २५, २६, २८, ३०, ३१, ३२।
४३. शेरिफ, ए० जी० : हिन्दी फ़ोक सोंग्स।
४४. शोकोलोव, वाई० एम० : रशन फोकलोर।
४५ सैन, डी० सी० : फौक लिटरेचर आव बंगाल, १६२०।
: ग्लिम्प्सेज आव बंगाल लाइफ, १६२५।
. हिस्ट्री आव बंगाली लैंग्युएज, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६११
४६ हटकिसन, एच० एन० · मैरिज कस्टम्स इन मैनी लैण्ड्स।
४७ हिबाले, एस० और इलविन, वी० : सोंग्स आव द फारेस्ट (लन्दन १६०६)।
४८. हैलीवैल, जे० सी० : पापुलर र्‌हाइम्स एण्ड नर्सरी टेल्स, १८४६।

## विश्वविद्यालय स्तर के हमारे नये प्रकाशन

- **लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन :** आगरा विश्वविद्यालय को पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत डा० कुलदीप का शोध-ग्रन्थ। एक महत्वपूर्ण कृति। मूल्य : 30 00
- **साहित्य के सिद्धान्त विश्लेषण एवं समीक्षा :** गिरिजादत्त त्रिपाठी। एम० ए० के छात्रो के लिए विशेषतः पठनीय ग्रन्थ। मूल्य : 25 00
- **आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :** डा० भोलानाथ। प्रयाग विश्वविद्यालय को डा० लिट० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-ग्रन्थ। राजस्थान सरकार द्वारा स्वीकृत। मूल्य 40 00
- **हिन्दी काव्यशास्त्र का विकासात्मक अध्ययन :** डा० शान्तिगोपाल। लेखक की शोध कृति। एम० ए० के छात्रो के लिये विशेष। राजस्थान सरकार द्वारा स्वीकृत। मूल्य : 20·00
- **दिव्यावदान में संस्कृति का स्वरूप :** डा० श्यामप्रकाश। सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-ग्रन्थ। सस्कृति साहित्य मे एक विशिष्ट ग्रन्थ। मूल्य : 20 00
- **हिन्दी और तेलुगु के स्वातन्त्र्यपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन :** डा० चलिसानि सुब्बाराव। सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-ग्रन्थ। मूल्य : 30.00
- **तुलनात्मक शोध और समीक्षा .** डा० पी० आदेश्वरराव की अत्यन्त पठनीय कृति। बी० ए०, एम० ए० के छात्रो के लिये विशेष उपयोगी। मूल्य : 7-50
- **भारतीय लेखक कोश ·** रामगोपाल परदेसी। समस्त भारतीय भाषाओ के प्रमुख लेखको के सचित्र परिचय और पतो सहित महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ। मूल्य : 60 00
- **द्वीप समूह का सांस्कृतिक अध्ययन :** राजेन्द्र प्रताप सिंह। द्वीप समूह के सम्बन्ध में सचित्र सास्कृतिक झलकियो की एक उत्कृष्ट कृति। मूल्य : 10.00
- **स्वच्छंदतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन :** डा० पी० आदेश्वर राव। श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-ग्रंथ। मूल्य : 30-00
- **कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ :** डा० पी० आदेश्वर राव। बी० ए०, एम० ए० के छात्रों के लिए पठनीय कृति। मूल्य : 12.50
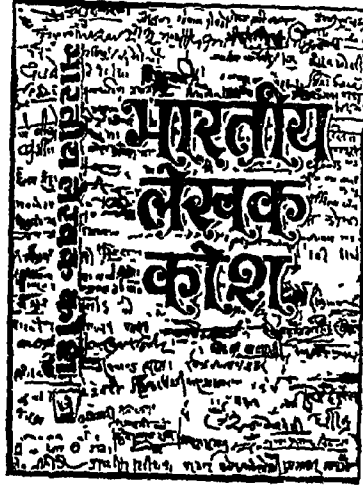
**सं० रामगोपाल परदेसी**

[हिन्दी मे प्रथम बार अपने ढग का अनूठा सन्दर्भ ग्रन्थ। तीन हजार भारतीय लेखक-लेखिकाओ के सचित्र परिचय। अनुपम रूप-सज्जा से युक्त। रखने के लिए आकर्षक बॉक्स ]

**मूल्य : साठ रुपये**

**कुछ सम्मत्तियाँ—**

- यह ग्रन्थ हिन्दी का सन्दर्भ गन्थ है। प्रत्येक स्कूल कालेज, सस्था और लेखक के पुस्तकालय मे इसे रहना ही चाहिए। —**डा० हरिवंशराय बच्चन**
- हिन्दी मे अभी तक इस ढग का कोई ग्रन्थ नही है। —**डा० गोपालराय**
- यह कोश हिन्दी के इतिहासकारो के काम को आसान कर देगा। —**डा० नेमीचन्द**
- अध्ययन, सन्दर्भ और शोध के लिए यह कोश अत्यन्त उपादेय है। —**डा० भगीरथ मिश्र**
- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको के लिए यह कोश वरदान स्वरूप है। —**डा० त्रिभुवनसिंह**
- भारतीय लेखक कोश, प्रकाशित कर आपने जो हिन्दी की सेवा की है, वह अमर रहेगी। —**डा० उपेन्द्र**
- सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप मे इस कोश की उपयोगिता असदिग्ध है। —**डा० व्रजेश्वर वर्मा**
- लेखकों के चित्र देने से यह ग्रन्थ और भी अधिक आकर्षक वन गया है। —**डा० टीकमसिंह तोमर**